नागार्जुन के उपन्यासों में आंचलिकता एवं व्यापकता के तत्वों का मूल्यांकन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, की डी० फिल० उपाधिं हेतु

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध
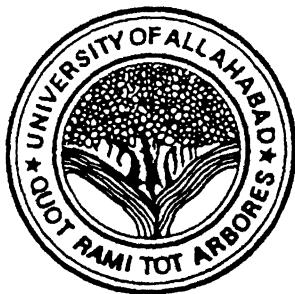
पर्यवेक्षक :

डा० रुद्र देव

रीडर, हिन्दी–विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

अनुसंधित्सु :

अरुण कुमार मिश्र

हिन्दी–विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

हिन्दी–विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

दिसम्बर, 2002

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

दिनांक 12.12.2002

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि हिन्दी विषय में डी०फिल० की उपाधि हेतु **अरुण कुमार मिश्र** ने मेरे निर्देशन में यह **''नागार्जुन के उपन्यासों में आंचलिकता एवं व्यापकता के तत्त्वों का मूल्यांकन''** विषयक शोध कार्य सम्पन्न किया है। इन्होंने पूरी निष्ठा एवं लगन के साथ यह शोध-प्रबन्ध विधिवत् पूर्ण किया है। इनका यह कार्य सर्वथा मौलिक है। मैं इसे प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

(डॉ० रुद्रदेव)

उपाचार्य, हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

पुरोवाक्

उपन्यास साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। बर्तमान जन–तांत्रिक युग में हिन्दी साहित्य जगत् में यह विधा शीर्ष स्थान पर है। इसमें जीवन की बहुमुखी विविधता, जटिलता तथा विशदता का समावेश उसके जन–तांत्रिक रूप का द्योतक है। संसार के समस्त क्रिया–कलाप और मनुष्य की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, नैतिक तथा धार्मिक समस्याओं का व्यापक प्रतिविम्ब उपन्यास में परिलक्षित होता है। वास्तविकता तो यह है कि मानव–जीवन की ब्यापकता ही उपन्यास की ब्यापकता बन गयी है। गद्यात्मक–साहित्य–विधा होने के कारण उसकी अभिब्यक्ति का क्षेत्र असीम एवं अनंत है।

अनेक प्रविधियों को यथा, समय बिकसित करता हुआ मानव, और समाज की गहनतम् समस्याओं एवं निराकरण के साथ चलता हुआ उपन्यास निरन्तर प्रगतिशील है। यह जीवन की ब्याख्या का सबल माध्यम है। इसका उद्देश्य केवल जीवन के वास्तविक स्वरूप का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करना ही नहीं अपितु, वह जीवन को परिवर्तित कर मानव की उन्नतम् संस्कृति का दिग्दर्शन कराता है। जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में प्रतिक्रियात्मक संभावना का उद्घाटन तथा वैयक्तिक एवं सामाजिक स्वरूप की ब्याख्या उपन्यास का मूल इष्ट है।

उपन्यास की विविध विधाओं में ऑचलिकता भी एक विधा है जिसने छोटे–छोटे अपरिचित अँचलों की खोज शुरू की। जैसा कि रेणु कहते है– "सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतीक मानकर यह छोटे से गोल शीशे में पूरा ताजमहल दिखाने वाला आग्रह है।" इस अँचल के सम्पूर्ण अंतर्बाह्य ब्यक्तित्व को वे सम्पूर्ण निष्ठा के साथ उद्घाटित करने की बात करतें हैं। यही निष्ठा अपने लिए चुने गये अँचल से लेखक को एक रागात्मक और आत्मीय सूत्र से जोड़ती है। आँचलिक उपन्यासों में अँचल एक स्वतंत्र और सम्पूर्ण ब्यक्तित्व बनकर उपस्थित रहता है। उस अँचल के नृतत्व–शास्त्रीय,

वैशिष्ट्य से लेकर उसका भौगोलिक–परिवेश, सांस्कृतिक एवं लोकतात्विक, चरित्र, वेश–भूषा, राग–रंग, उत्सव–त्यौहार आदि सब कुछ अपनी समग्रता एवं जीवंतता में उपस्थित रहता है।

अँचल के जीवन की सारी परम्पराओं, ऐतिहासिक प्रगतियों, शक्तियों–अशक्तियों, छवियों–अछवियों की जितनी ही अधिक सच्चाई के साथ चित्रण होता है, वह उपन्यास उतना ही सफल होता है। "अँचल को देखना यानी उसके समग्र जीवन को देखना। जीवन बाहर भी है–भीतर भी है। दोनों एक दूसरे से संयुक्त हैं। मनोवैज्ञानिक–कथाकार जीवन को बाहर से काटकर भीतर की ओर देखने लगता है और सतही सामाजिक दृष्टि जीवन को ऊपर–ऊपर देखने लगती है।"[१] ऑचलिकता से आश्रय परंपरा से विद्रोह के लिए हो ऐसी बात नहीं है। पर उसमें एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण अवश्य है। इसी के फलस्वरूप 'भाषा' के परिनिष्ठित रूप से विद्रोह किया जा सकता था, जैसे कि महनीय 'साहित्य' की प्रत्येक रूढ़ि से। आँचलिकता से उपन्यासों की भाषा में 'अनगढ़ता' आयेगी, जिसमें बौद्धिक दचके लगेगें ही। राजेन्द्र अवस्थी के शब्दों में– "शब्दों में अनगढ़ता आँचलिक उपन्यासों को लेकर आयी।"[२]

हिंदी में जब आँचलिकता का शोरगुल हुआ तो इस आंदोलन को एक ब्यापक आधार देने के उद्देश्य से बहुत से लोगो को उसमें शामिल करने का आग्रह दिखाई दिया। नागार्जुन, रेणु से पहले लिख रहे थे। उनका 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास १९४८ ई० में ही आ गया, जबकि रेणु का 'मैला आँचल' १९५४ में आया। फिर भी, रेणु को आँचलिकता का पुरस्कर्त्ता मान लिया गया। विवाद जो भी हो, लेकिन नागार्जुन की आँचलिकता की दुनिया बड़ी ब्यापक थी। उनका साहित्य–संसार मिश्रित संस्कृति का प्रतीक है।" उनकी परंपरा लोक और शास्त्र की मिली–जुली सहकारिता का परिणाम है। इसलिए उसे यह कहकर संतोष नहीं किया जा सकता है कि यह मात्र आलोचनात्मक यथार्थवाद का परिणाम है। इसकी सही संज्ञा समाजवादी यथार्थवादी

ही होगी। जिसमें कि भारतीय समाज के रोगों ओर उसकी परिवर्तनकारी निर्णायक ताकतों की ओर एक गहरा और सार्थक इशारा है। नये मानव–भविष्य के प्रति आशा और आस्था का स्वर है। सामूहिक जीवन–शैली और राष्ट्रीय जीवन–दृष्टि की प्रधानता है।"[1]

नागार्जुन को बहुत कुछ कहना था, जो वे खुलकर कविता के माध्यम से नहीं कह सकते थे, और यहां वे अपने उपन्यासों के द्वारा अपने मन्तब्य को ब्यक्त करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मैथिल–समाज उनकी रग–रग में रचा बसा है, वहां के ग्राम–जीवन के प्रति उनकी गहरी रचनात्मक संपृक्ति है। वे ग्राम जीवन का एक–एक कोना झॉक आये थे। तथा सब में घुल–मिलकर, साथ–बैठकर, एक दूसरे की धडकनों को महसूस करते थे। इसीलिए उनके उपन्यासो का कथ्य 'ब्यक्ति' की निजी–जिंदगी का लेखा–जोखा बनकर नहीं आता है, वरन् ब्यक्ति वहॉ सामाजिक–जिंदगी का अंग बनकर आता है। समाज से दूर रहकर ब्यक्ति का जीवन अपनी सार्थकता नहीं पाता।

नागार्जुन ने आजादी के पहले के भारतीय ग्राम–समाज को देखा था, और आजादी के बाद भी भारतीय ग्राम–समाज को कई दशक तक देखा। इसीलिए सामाजिक निर्माण के सपनों की दुनियाँ से उनका नाता नजदीक का रहा है। और अब उन टूटते सपनों का संसार भी उनसे अनदेखा नहीं रहा। उनकी रचनात्मक संवेदनाएं, शोषित–पीड़ित तथा अभावग्रस्त ब्यक्ति के साथ रही है, और जाहिर है कि देश का बहुसंख्यक जन–समाज इसी वर्ग का है।

'नागार्जुन के उपन्यासों में आँचलिकता एवं ब्यापकता के तत्वों का मूल्यांकन' विषय ही शोध का विषय है। नागार्जुन को किसी एक विषय में बॉधा नहीं जा सकता है, क्योंकि उनकी प्रकृति अक्खड़ थी, इसी प्रवृत्ति के कारण एक ओर जहॉ वे कबीर की परम्परा से जुड़ते है, वहीं दूसरी ओर निराला और मुक्तिबोध की अगली कडी

बनते है। वे जन–सामान्य के ऐसे कुशल चितेरे है, जिनके पास दीर्घ–जीवन के शताधिक अनुभव प्रसंग हैं, जिनको आधार बनाकर उन्होंने समय–समय पर सर्जक–व्यक्तित्व की बानगी उपन्यासो में दिखाई है। यद्यपि अपनी साहित्य–साधना के दौरान वे बराबर एक जनवादी और क्रांतिकारी रचनाकार के रूप में ही सामने आते रहे। बावजूद इसके उनका कृति–व्यक्तित्व एक अक्खड और यथार्थवादी लेखन का रहा है।

नागार्जुन के हिन्दी के कुल दस उपन्यास हैं। यथा 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'बाबा बटेसरनाथ', 'नई पौध', 'दुखमोचन', 'वरूण के बेटे', 'कुंभीपाक', 'हीरक–जयंती', 'उग्रतारा', 'जमनिया के बाबा'। जिनकी अपनी अलग–अलग पहचान है, अलग–अलग विषय–वस्तु है।

नागार्जुन का जन–जीवन से गहरा लगाव था, यह लगाव उनके उपन्यासों में मित्र, पत्नी, किसान, मजदूर, छात्र, बच्चे, पशु–पक्षी सबके साथ एक आत्मीयता का स्वर विकसित करता हुआ दिखाई पडता है। जिसे 'बाबा बटेसरनाथ' में देखें या 'रतिनाथ की चाची' में। यही कारण है कि नागार्जुन जब वस्तु–जगत की बातें करते हैं, तो उसके प्रति उनकी गहरी 'प्रतिबद्धता' या 'लगाव' ब्यक्त होता है। उनकी दृष्टि में बहुजन समाज की अनुपम प्रगति अभीष्ट है। उनकी यह 'प्रतिबद्धता' और 'लगाव' ही वह निजी रचनात्मक पूॅजी भी है, जिसके बल पर वे युवको, छात्रों, बौद्धिकों और सर्वहारा वर्ग के बीच खड़े होते हैं। तथा उनकी आस्था और सहानुभूति प्राप्त करते हैं। आम आदमी से जुडने का एक ही जरिया है कि वह आदमी हमारे लेखन के बीच हो, 'बलचनमा' उपन्यास में ऐसा ही उदाहरण है। लगता है कि नागार्जुन का 'बलचनमा' उनके पास ही खडा है। या फिर 'रतिनाथ की चाची' नागार्जुन बन कर खड़े हों।

उनके उपन्यासों में जो दूसरी बात दिखलाई पडती है, वह यह कि ऐसा कोई भी स्थल नहीं है जहॉ अस्पष्टता का अभाव हो, उनकी आस्था में विरक्ति का अंश लेश–मात्र भी नहीं है। उनकी ललकार नई पीढी की युवा–शक्ति को ही निवेदित होती है, जो देश की मिट्‌टी और सही जमीन से जुड़ी है। 'बलचनमा', 'नई पौध', 'दुखमोचन', 'वरूण के बेटे' में नई पीढ़ी की चेतनावादी स्वर ही है। इसीलिए हम कह सकते हैं कि उनके उपन्यास न केवल सामाजिक चेतना को ब्यक्त करते है अपितु वे राजनीतिक शिक्षण का कार्य भी करते है।

उनके उपन्यासों में जहॉ एक तरफ अधिकांश लोगों के दुबले–पतले और धॅसी ऑखों वाले होने के पीछे यहॉ की ब्यवस्था को जिम्मेदार बताया गया है। वहीं दूसरी तरफ सामंतशाही के गढ़ों–पोखरों को भी दर्शाया गया है। एक ओर महगाई, दमन, उत्पीड़न, जूठन खाने पर विवश, बेरोजगार लोग हैं, तो दूसरी ओर सनातन–भाग्यवादी और काहिल हैं। जो 'जमनियाके मठ' को अनाचार और दुराचार का अड्‌डा बनाये हैं। नागार्जुन वैसे लोगों के राजनैतिक खेल का मकसद बखूबी समझते थे जो 'हीरक जयन्ती' के अवसर पर उपस्थित होकर स्वार्थ सिद्धि करते है। वे उनके सिद्धांत और धार्मिक मतवाद में निहित सम्प्रदायवादी चेहरे को भी पहचानते थे।

नागार्जुन की भाषा जन–भाषा के निकट थी, उनके उपन्यासों को समझने के लिए किसी को भाषिक कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। उनकी भाषिक संरचना में अद्‌भुत क्लासिक बानगी देखने को मिलती है। उनके चित्र इतने दमदार है कि उनकी विघात्री प्रतिभा की दाद देनी पड़ती है। बारीक से बारीक और मोटी से मोटी कलम उनके पास है। नाजुक से नाजुक, अंदाजे–बयॉं और मुॅहफट अनगढ अभिब्यक्ति की नागार्जुनी भंगिमा भी हमें एक साथ देखने को मिलती है। उनका कृतिकार सचमुच आत्मदीप्त और लोक की ऊर्जा से ऊर्जस्वित है। लोक की सरस्वती उनके साहित्य कंठ में बैठकर अपने को आह्‌लादित कर रही है। उनके भाषा की

बानगी उन्हीं के शब्दों मे देखें–"भाषा की तराश या बुनावट के लिए इलाहाबाद की भाषा को हम प्रमाण मानते है। घुमंतू जीवन रहा तो जगह–जगह के मुहावरे भी ले लिए है। जो मजदूरों को सुनानी है, उसमे शब्दों की कसावट को ढीला कर दिया है। इधर बीस–पच्चीस साल की रचनाओं मे कसावट ज्यादा आयी है। प्रयोग भी हमने खूब साहसिक किये है। परंपरागत और आधुनिक दोनों डरते हैं। संस्कृत और अंग्रेजी दोनो भाषाओ के जानकार हिन्दी–लेखक का आत्मविकास खत्म हो गया है। पर मैं तो धडल्ले से प्रयोग करता हूँ और यह मानता हूँ कि हर भाषा का जादू अपना होता है।"[1]

इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यास–साहित्य की जॉच–पड़ताल करके उनमें उपलब्ध तत्वों की विवेचना करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध–विषय 'नागार्जुन के उपन्यासों में ऑचलिकता एवं ब्यापकता के तत्त्वों का मूल्यांकन' में कुल सात अध्याय है, जिसमें पहला अध्याय, 'हिन्दी उपन्यास मे नागार्जुन का स्थान' को रेखांकित किया गया है। नागार्जुन की उपस्थिति हिन्दी कथा–साहित्य को किस तरह एक नया आयाम प्रदान करती है। उनकी औपन्यासिक दृष्टि का भी विवेचन है।

दूसरे अध्याय में, नागार्जुन के उपन्यासों का सामान्य परिचय है। इसमें उनके उपन्यासों के रचना का समय, परिवेश, समाज तथा मुख्य–कथानक, पात्र–परिचय आदि विषयक तत्वों का विवेचन किया गया है।

तीसरे अध्याय में, 'नागार्जुन के उपन्यासों का शिल्पगत (शिल्पविधि का) विकास' है। इसमें नागार्जुन की प्रेरणा व शिल्प–कौशल, कुशलचितेरा के विविध सोपानों का विवेचन किया गया है।

चौथे अध्याय में, 'नागार्जुन के उपन्यासों में उपलब्ध आँचलिक तत्त्वों का विवेचन' किया गया है, कि मिथिलांचल की मिट्टी व उसकी सोंधी महक, वहॉ के

जन–जीवन, पेड–पौधे से लेकर घर में चूल्हे पर तरकारी बनाने वाली तक के चित्र को किस प्रकार उपन्यास में स्थान मिला है। इसका विवेचन है।

पॉचवे अध्याय में, 'नागार्जुन के उपन्यासो मे उपलब्ध ब्यापकता के तत्त्वो का अन्वेषण' किया गया है। इस अध्याय में गद्य–साहित्य का ब्यापक फलक है। गरीबी, बेरोजगारी, सामंती–शोषण, महिलाओ विशेषकर विधवाओं, परित्यक्ताओं, अनाथ–प्रताडित और परिवार–वचित युवतियों के साथ–साथ, गरीबी वश बूढ़े–खूसटों के हवाले 'बकरो की भॉति हलाल कर दी जाने वाली किशोरियों की पीडा' का वर्णन है। इतना ही नहीं इन पीडाओं के पीछे काम करने वाली सामाजिक रूढियों की ओर इशारा भी है।

छठे अध्याय में, दोनों विधाओं का तुलनात्मक अध्ययन (आंचलिकता एवं ब्यापकता) है। इसमें ॲचल के तत्व कहॉ पर ब्यापक के तत्त्वों से समता–बिषमता रखते है। इन दृष्टिकोणो का भी अन्वेषण है।

सातवॉ अध्याय, मूल्यांकन और निष्कर्ष है, जो सम्पूर्ण अध्यायों का निष्कर्ष या यों कहें 'सार' है। तदुपरान्त अनुक्रमणिका दी गयी है, जिसमें पुस्तकों, प्रकाशकों, संस्करणों व उनके लेखकों की सूची है, जिनसे मुझे इस शोध प्रबंध को पूर्ण करने में सहायता मिली।

तत्पश्चात् हम इस 'शोध–प्रबंध' को पूर्ण करने में उन महानुभावों के प्रति आभार प्रकट करना चाहेंगे जिनसे, मुझे आशीर्वाद व स्नेह प्राप्त हुआ।

'नागार्जुन के उपन्यासों में ऑचलिकता एवं ब्यापकता के तत्त्वों का मूल्यांकन' विषय पर शोध करने हेतु मुझे यह विषय इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी–विभाग, के प्रोफेसर एवं हिन्दी–साहित्याकाश के प्रखर भास्कर, **पूजनीय प्रो० सत्यप्रकाश मिश्र** के आशीर्वाद से मिला। आप समय–समय पर पुत्रवत् स्नेह प्रदान करके, मेरे

अज्ञानतिमिर को सदैव दूर करते रहे। इसके लिए किसी भी प्रकार का कृतज्ञता प्रकाशन निश्चय ही सहज स्नेह के गौरव का विघातक होगा।

प्रस्तुत 'शोध–प्रबंध' मे बहुमूल्य निर्देशन प्रदान करने वाले '**पूजनीय, गुरूदेव डा० रूद्रदेव जी** उपाचार्य, हिन्दी–विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, का ऋणी हूँ, जिनसे पग–पग पर मार्ग–दर्शन प्राप्त कर इस गहन–शोध कार्य को सम्पन्न करने में समर्थ हो सका। गुरु–कृपा नें एक विलक्षण शक्ति का कार्य किया है। मेरी प्रत्येक विकास कार्य में गुरुदेव का आशीर्वाद रूप प्रकाश सूर्य एवम् चन्द्र के समान मुझे समय–समय पर प्रकाशित करता रहा है। मैं उनकी असीम देववृत्ति का वर्णन करने मे असमर्थ हूँ। सम्प्रति मैं जो कुछ भी हूँ वह सब परमादरणीय गुरुदेव का ही कृपा–प्रसाद है, मै गुरुदेव को शतशः नमन करता हूँ। गुरूजी के इस ऋण पर आभार प्रकट करना मेरी मूढ़ता ही होगी, क्योंकि कबीर के शब्दों में 'क्या लै गुरू संतोखिये, हौंस रही मन माहि'।

आदरणीय **डा० कृपाशंकर पान्डेय जी** रीडर, हिन्दी–विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, के प्रति मै कृतज्ञ हूँ, जिनसे मै समय–समय पर ज्ञान रूपी आशीर्वाद प्राप्त कर सका। तथा **डा० गोरखनाथ पान्डेय** जी के प्रति भी कृतज्ञ हूँ। गुरु–कृपा और उनके आशीर्वाद से मैने इस शोध–बिषय को समझने और यथावत् निबद्ध करने का प्रयास किया है। यह प्रयास कितना सफल है ? इसका नीर–क्षीर–विवेक स्वयं वही सुधीजन करेंगे, जिनके समक्ष यह शोध–प्रबंध सादर प्रस्तुत है।

'शोध–प्रबंध' पूर्ण करना बड़ा ही दुष्कर कार्य होता है, फिर भी मै अपने माता–पिता व परिवार के बड़ों के प्यार व निराशा के क्षणों में मुझे सम्बल देने वाले तथा कर्मक्षेत्र में डटे रहने की प्रेरणा देने वाले प्रिय मामा जी श्री कमला शंकर मिश्र उपायुक्त (उत्पाद–शुल्क एवं सीमा–शुल्क) तथा मित्रों का भी मैं आभार प्रकट करना चाहूँगा। मित्रों राहुल द्विवेदी, बृजेश कुमार उपाध्याय, अमिताभ कुमार श्रीवास्तव,

राकेश त्रिपाठी, चक्रपाणि पाठक, ज्ञान प्रकाश तिवारी, अरविन्द कुमार तिवारी, चुन्नी लाल त्रिपाठी, उमाकान्त तिवारी के स्नेह तथा गुलाब चन्द्र मिश्र के सहयोग से यह कार्य सफल हो सका।

मैं आभार प्रकट करना चाहूंगा, 'संग्रहालय', 'हिन्दी–साहित्य–सम्मेलन' इलाहाबाद, एवं इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति तथा हिन्दी परिषद के सदस्य, अग्रज श्री देवराज सिंह जी के प्रति भी, जिन्होने औपचारिक–अनौपचारिक सहायता करने की कृपा की।

'शोध–प्रबन्ध' निर्माण मधु–छत्ते के निर्माण से उपमेय है, जिसमें परिश्रम एवं कला दोनो का संगम होता है। परिश्रम है यत्र–तत्र बिखरे हुए विविध कुसुमों से पराग का संचयन ! कला है, हृदयावर्जक छत्ते का निर्माण एवं अमृतमय रसों का उस छत्ते में सन्निवेंशन ! 'शोध–प्रबन्ध' में विविध विद्वानों की कालजयी कृतियों से विषय तथ्यों का संग्रहण किया गया है। यह कितना हृदयावर्जक एवं रसपरिपूरित है इसका निर्णय रसपारखी सुधीजनो पर ....

अरुण कुमार मिश्र

दिनांक –दिसम्बर, २३, २००२

अरूण कुमार मिश्र

नागार्जुन के उपन्यासों में आंचलिकता एवं व्यापकता के तत्त्वों का मूल्यांकन

हिन्दी उपन्यास में नागार्जुन का स्थान

हिन्दी में उपन्यास एक आधुनिक विधा है। यह यथार्थ मानव–अनुभवों एवं सत्य का आकलन है। यह जीवन की अनेकता में एकता तथा अपूर्णता में समग्रता स्थापित करने का प्रयत्न करता है उपन्यास में व्यावहारिक जीवन तथा तात्कालिक परिस्थितियों के चित्रण पर मुख्य रूप से बल रहता है। यह जीवन का सूक्ष्म विश्लेषण कर, उसकी समस्याओं तथा तत्सम्बन्धी समाधानों को प्रस्तुत करता है। यहाँ जीवन की अभिव्यक्ति, प्रतीकात्मक नही प्रत्यक्ष होती है और पात्रों का व्यक्तिव नही, चरित्र प्रस्तुत किया जाता है। उपन्यास मानव का अन्वेषण विश्लेषणात्मक तथा अभिनयात्मक दोनों प्रकार की शौलियों द्वारा करता है। उपन्यासकार अपने अनुभव के आधार पर मानव हृदय के गूढ रहस्यों, उसके आवेगों, स्वकथनों का प्रत्यक्षीकरण करता है।

कालीदास, विद्यापति, कबीर, प्रेमचंद और निराला की अगली कड़ी कवि, कथाकार, 'बाबा नागार्जुन' थे। ये वास्तव में हिन्दी साहित्य के बुद्ध थे। नागार्जुन समाज और जन–जीवन के ऐसे कुशल चितेरे है, जिनके पास दीर्ध–जीवन के शताधिक अनुभव–प्रसंग है, जिनकों आधार बनाकर उन्होंने समय–समय पर कविताओं, कहानियों और उपन्यासों की रचना की है। नागार्जुन का कृती व्यक्तिव एक अक्खड़ और यथार्थवादी लेखक का रहा है। नागार्जुन का जन–जीवन से गहरा लगाव है। यह लगाव उनके उपन्यासों में मित्र, पत्नी, किसान, मजदूर, छात्र, बच्चे, पशु–पक्षी सबके साथ एक आत्मीय स्वर विकसित करता हुआ दिखाई पड़ता है। और

यही कारण है कि नागार्जुन जब भी वस्तु–जगत की बातें करते है तो उसके प्रति उनकी गहरी प्रतिबद्धता या लगाव व्यक्त होता है। ''व्यक्गित दुःख पर न रुक कर वे बार–बार व्यापक दुःख पर प्रकाश डालते है और यही सच्चे कवि, लेखक की पहचान है, अतः धरती, जनता और श्रम के गीत गानें वाले इस युग के

संवेदनशील कवियों में इनका नाम प्रमुखता से रहेगा।"[1] भारतीय अन्तर्दृष्टि के धनी होने के कारण उन्होंने दलितों और पीडितों के प्रति अपने कथा–साहित्य में जो करुणा और संवेदना प्रदान की, उससे पहली बार हिन्दी–साहित्य क्षेत्रीय संकीर्णता, साम्प्रदायिक, रूढिग्रस्त धार्मिकता तथा राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर मानवता के हित में अन्तर्राष्ट्रीय जगत में प्रविष्ट हुए। वे एक प्रतिबद्ध साहित्यकार थे, उनकी प्रतिवद्धता आयातित नही वरन् पूर्णरूपेण स्वदेशी थी। समूचे अपने लेखकीय जीवन में वे युगीन संवेदनाओं से जुड़े रहे। युग की नाड़ी की स्पन्दन गति के साथ निज की आत्मानुभूति को केवल जोडा ही नही वरन् उसका आत्मसाक्षात्कार भी किया। नेमिचन्द्र जैन लिखते है, "जिस जीवन के बारे में उन्होंने लिखा है, उसकी सच्ची अनुभूति उन्हें है। यह विशेषता उन्हें हिन्दी के बहुत से लेखको से अलग करती है। किन्तु उस जीवन को गहराई से समझने और उसको साहित्य में उतना ही गहराई से रख सकने लायक कलाकार की निर्मम दृष्टि की उनमें कमी है।"[2] अगर इस कथन को परखा जाय तो स्पष्ट होता है कि लेखक मिथिला समाज की या मिथिला प्रदेश को गहराई से समझे बिना मार्मिक अनुभूति का भोक्ता कैसे बन सकता है? हॉ यह हो सकता है कि उसे अभिव्यक्त देने में जितने कलात्मक रचना की अपेक्षा हो, वह उसमें न हो।

उनका और उनके आस–पास का भोगा हुआ सत्य ही कला और कल्पना के बल पर उनके साहित्य में अभिव्यक्त हुआ है। अपने अनुभव की विशालता और दूरगामी अन्तर्दृष्टि के कारण ही उन्होंने अपनी रचनाओं में विषयगत विविधता और जीवन्त दृष्टि प्रदान किया। कला, कला के लिए नही, मानवता के हित साधन के लिए है, नागार्जुन के उपन्यासों का यही मूल स्वर भी है। "अपनी रचनाओं में नागार्जुन ने शाप से अधिक वरदान को, ईर्ष्या से अधिक सद्भावना को, घृणा से

---

[1] डा० विश्वम्भर मानव– "नयी कावित: नये कवि"
[2] श्री नेमिचनद जैन–' अधूरे साक्षात्कार

अधिक स्नेह को और युद्ध से अधिक शांति को स्थान दिया है, कर्म की शक्ति में उनका अटूट व अगाध विश्वास है।"[1] नागार्जुन नें कभी बहुत गम्भीर या शास्त्रीय विषय पर गद्य रचना नही की। वे आम–फ़हम जिन्दगी से वस्तुओं, विचारो व तथ्यों को लेकर अपने व्यंग्यपूर्ण गद्य की रचना करते है। पं नन्ददुलारे वाजपेयी ने कहा है "उनकी कृतियाँ व्यंग्यात्मक है और उनमें गंदलापन भी है, जिसके कारण उनकी कृतियॉ प्रत्याशित ऊँचाई तक नही पहुँची।"[2]

नागार्जुन एक जनवादी और कान्तिकारी तेवर के उपन्यासकार हैं, उनके उपन्यासों में भारतीय समाज का जीवन्त और यथार्थ चित्र अंकित हुआ है। नागार्जुन ने समाज और देश में सम्प्रदायवाद के विषाल परिवेश के फैलाये जाने के पीछे धार्मिक ग्रन्थों की भूमिका को अपने उपन्यासों द्वारा उद्घाटित किया। उनका मानना था कि ये ग्रन्थ भारतीय समाज में रूढियों को प्रतिष्ठित करने और भाग्यवाद तथा वर्गीय यथास्थित को कायम रखने में विशिष्ट भूमिका निभाते हैं। डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में "उनके साहित्य में वर्ग–संघर्ष है। कविता में उनका जनकवि किसानों से मिलकर जमीदार के अमलों को मार भगाता है, उपन्यास में उनके निर्धन ग्रामीण और खेतिहर मजदूर अपने अधिकार के लिए सामन्त विरोधी संघर्ष करते है।"

जब हिन्दी का कथा साहित्य ऐयारी और तिलिस्म की भूल–भूलैयों की खोह में जा चुका था, यथार्थ के धरातल से उसका कोई सरोकार नही था, प्रेमचंन्द ने उसे उस खोह से निकालकर यथार्थ के धरातल पर प्रतिष्ठित किया। लोक जन–जीवन से उसका साक्षात्कार कराया आदर्श जन भावनाओं, अन्तर्मनों की सीख दी। यही वह मोड़ था जब प्रेमचन्द ने भारतीय समाज का यथार्थ चित्रण करके हिन्दी कथा–साहित्य को एक नयी जीवन्तता प्रदान की। नागार्जुन इन्ही प्रेमचंन्द के बाद की कड़ी थे, जो प्रेमचन्द से आगे बढ़कर व्यापकता के साथ–साथ स्थानीयता भी प्रदान

---

[1] डा० विश्वम्भर मानव– "नयी काविता: नये कवि"

[2] डा० नन्द दुलारे बाजपेयी– आलोचना

की। "प्रेमचन्द गोदान में जिस वास्तव का सृजन करते है, वह आलोचक की संवेदना में ढलकर एक नया रूप भी धारण करता है।"[1] प्रेमचन्द ने गॉव के जन–जीवन को अपने उपन्यासों का कथ्य बनाया है, और वह गॉव उत्तर–भारत का गॉव है, जबकि नागार्जुन ने उस गॉव को उसके जीवन को मिथिला–प्रदेश की प्रकृति–सुषमा से भरी आंचलिकता से जोड दिया है।

इस तरह हम कह सकते हैं कि यदि प्रेमचन्द के कथ्य एवं कथन में विस्तार है तो नागार्जुन में पर्याप्त गहराई एवं अनुभूति की सघनता है। एक ओर नागार्जुन जी अंचल विशेष का चित्रण समष्टि विकास–चेतना के स्तर पर करते हैं, तो दूसरी ओर अपने पात्रों के सहज विकास को किसी वैचारिकता एवं सिद्धान्त विशेष के आरोपण से बचाते चलते हैं। मिथिला की धरती के प्रति नागार्जुन की आत्मीयता रागात्मक स्तर पर है और लेखक को एक संवेदनशील कवि हदृय भी प्राप्त है। इसलिए चित्रण में अनुभूति एवं अभिव्यक्ति में तारतम्य के सूत्र सहज ही खोजे जा सकते हैं। प्रेमचन्द की भाववादी परम्पराओं को लेखक ने आधुनिकता के वस्तुवादी यथार्थ–बोधो से जोडा हैं "वास्तव में नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में समाज की यथार्थ ज़िन्दगी की तस्वीर पेश की है।"[2]

वास्तव में स्वतंत्रता के बाद के भारतीय ग्राम्य–जीवन को उसकी समग्रता, उसकी पूर्णता में यदि किसी एक उपन्यासकार की कृतियों में देखा जा सकता है तो वे एक मात्र नागार्जुन हैं, इनके परे हम नही जा पायेगें क्योकि हम इन्हें प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में ग्राम्य–कथाकार कह सकते हैं यद्यपि उनकी धरती दरभंगा के पास की धरती है जो उनकी रचना–प्रासाद की नीव है, फिर भी उन्होंने बिहार के अचीन्हे–अबूझे अंचलों को अपनी रचनात्मकता का संबल देकर उन्हें कलात्मक अभिव्यक्ति दी है।

---

[1] डा० इन्द्रनाथ मदान– 'आज का हिन्दी उपन्यास' पृ०–१३

[2] डा० शिव प्रसाद मिश्र– नागार्जुन के उपन्यासों में सामाजिक चूेतना।

नागार्जुन के उपन्यास उस समय प्रस्फुटित हुए, जब साहित्यिक हलकों में प्रयोगवाद 'नई कविता' का जोर बढ़ रहा था। 'नई कहानी' के नाम से शुरू हुए आंदोलन में भी मध्यवर्गीय–मानसिकता वाले रचनाकार नए गुल खिलाने के चक्कर में थे। इन नये आंदोलनों के बीच रचनाकारों का एक बड़ा तबका ऐसा भी था, जो शीत–युद्ध की राजनीति से प्रेरित था और साहित्य के बुनियादी सवालों से ध्यान हटाने के लिए अनेकानेक जुमलों का प्रयोग कर रहा था। नाना प्रकार के नारे प्रयोग में ला रहा था। कथा–साहित्य में भी प्रेमचन्द के बाद ऐसे कई मशहूर नाम उभरे जो उसकी परिधि को ब्यक्तिवाद की सीमाओं में कैद कर रहे थे। ऐसे में नागार्जुन ने अपने उपन्यासों को शोषित–पीड़ित वर्गो की धुरी पर टिकाने का साहस दिखाया, और इसीलिए इस बीच चले तमाम साहित्यान्दोलनों से अलग–अलग रहते हुए उन्होंने यह अलख जगाये रखी।

इस कारण उनका पारिवारिक जीवन–संघर्ष भी था। वे जिस परिवार में पले–बढ़े थे, जिस तरह का घरेलू वातावरण उन्हें अवदान में मिला, जिन विकट स्थितियों, सांसारिक परिस्थितियों का उन्हें सामना करना पड़ा, उनमें यह सब निश्चित था कि समाज के किन लोगों और वर्गों के बीच उनकी परिचित और गति है। उस अंचल की उसके सदियों सें सुख भोगते आये शोषित–पीड़ित लोगों की, उनके रीति–रिवाजों, क्रिया–कलापों, रहन–सहन की जो गहरी जानकारी उन्हें इस सहभागिता में उपलब्ध हुई, वह किसी भी रचनाकार के लिए एक बेजोड थाती है। जीवन की यही मजबूरियां रचनाकार नागार्जुन के लिए वरदान सिद्ध हुई। उनके घुमन्तू स्वभाव नें जीवन अनुभवों की इस बडी पूँजी में बेहद इज़ाफा किया।

घुमक्कड़ी का अणु जो नागार्जुन के वाल्यकाल में ही शरीर में प्रवेश पा गया वह रचना धर्मिता की तरह ही विकसित और पुष्ट होता गया। किसान, जनता के सघर्षो और उसी के समानान्तर विकसित हुए प्रगतिशील आन्दोलनों मे भागीदारी से प्राप्त नयी समझदारी नें धार पर शान चढ़ाने का कार्य किया। "कभी–कभी जो

क्रांतिकारी विचार–धारा के लोग हैं, वे नागार्जुन से शिकायत करते रहे है कि वे एक सीधी या पार्टीलाइन को नही स्वीकार करते हैं। अक्सर उनके भटकाव की चर्चा की गयी है।"[1] यही कारण है कि नागार्जुन को यथार्थ की खोज में वैसे नही भटकना पडा जैसे उस जमाने के कई अन्य प्रगतिशील कथाकार को। उन्होंने प्रेमचन्द के समय से चले आ रहे समस्याओं को बडी शिद्दत से उठाया और ग्रामीण समाज में उनके बाद आये परिवर्तनों की पुकार को अपने उपन्यासों में सुनाया। किसान की पूरी पीडा प्रेमचन्द ने भी उभारी, उनकी हताशा और अन्दर–अन्दर सुलगती आग उनके यहॉ भी है, रूढ़ियों की जकड़न और उनसे टकराहट वहां सहज ही देखी जा सकती है। "जो धार्मिक संकीर्णता है, धर्म के बनाये हुए यम–नियम है, पाप–पुण्य के दण्ड के और साथ ही पुरस्कार मिलेगा, स्वर्ग मिलेगा इन सारे के सारे जकड़े हुए पुराने विचारो के कारण बड़ी धुटन महसूस होती है।"[2] यहॉ घुंट–घुंट कर मरना नहीं, मर–मर कर जीने का संकल्प भी है। जमीन से बेदखल होता किसान ही नही, खोई जमीन को फिर से दखल करने के इरादे भी हैं। अलग–अलग सुलगती आत्माएँ ही नही संगठित होकर लड़ने का आह्वान भी है। रूढियों की जकड़न से मुक्त होने की छटपटाहट ही नही उन्हें एक बारगी तोडकर बाहर गयी नयी पीढी भी है।

प्रेमचन्दोत्तर भारतीय ग्रामीण–कृषकों की जीवन–गाथा के गायक नागार्जुन ही हैं इनके उपन्यासों में भी मध्य–वर्गीय पात्र हैं लेकिन यहां उनकी भूमिका दूसरी है उन्होंनें मध्य–वर्गीय पात्रों को इसलिए नहीं चुना कि उनके माध्यम से आत्म–प्रेम, आत्म–दया, आत्म–गौरव और अहंकार की गुत्थियों का सृजन करे बल्कि उनके यहाँ प्रायः ऐसे पात्र नई दिशा, नये ज्ञान, नई रोशनी और नये रास्ते से लैस हैं। उनकी गति कोल्हू के बैल की गति नहीं है जो अपनी ही जिन्दगी में धूमती है, बल्कि उनकी नियति समाज से जुड़कर बनी है। वह चाहे 'बलचनमा' के राधा बाबू हों या 'बरूण

---

[1] डा० नामवर सिंह–'द्वन्द्वात्मकता के विन्यास की कविता'
[2] डा० नामवर सिह–'द्वन्द्वात्मकता के विन्यास की कविता'

के बेटे' के मोहन मॉझी या 'उग्रतारा' का कामेश्वर या फिर 'कुंभीपाक' का महामहिम। नागार्जुन ने पूरी सहानुभूति से इन पात्रों को रचा है, लेकिन कितना भिन्न है इनका चरित्र, इन तथाकथित मध्यवर्गीय पात्रों से, जिनकी सृष्टि प्रयोगवाद और नई कहानी के दिग्गजों नें की। कई शेखरों का विद्रोह भी इन पात्रो की जीवट की बराबरी नही कर सकता। यह इसलिए कि नागार्जुन ने आज़ाद भारत में मध्यवर्ग को उसकी सही भूमिका में देखा और दिखाया। "नागार्जुन की सर्जना का पाट बहुत चौडा है, बहुआयामी है बहुत विशद है।"[1]

समाजवादी यथार्थवाद की दृष्टि से इनके उपन्यास आदर्श–रूप प्रस्तुत करते हैं। इस विचारधारा का प्रसारण अन्य उपन्यासकारों में लेखक की ओर वर्णित होने के कारण अप्रभावी हो गया है, जबकि नागार्जुन के उपन्यासों में, पात्रों द्वारा अभावग्रस्त जीवन को भोगकर, इसका बोध होने में, स्वाभाविकता वृद्धि में, सहायक हुआ है। डा० शांति भारद्वाज के अनुसार– "सहज जीवन के चितेरे नागार्जुन जीवन की अभिव्यक्ति में जितने सहज हैं, कलाकार के सामाजिक दायित्व के प्रति भी उतने ही सजग, उतने ही प्रगतिशील। उनकी रचनाओं में मार्क्सवाद की मान्यताएँ खोजी जा सकती है, लेकिन यह प्रभाव चेतना पर है, शिल्प पर नहीं। इसीलिए नागार्जुन के उपन्यास सही अर्थो मे भारतीय जीवन के चित्र हैं।"[2]

कई उपन्यासों मे तो चरित्रों को केन्द्र में रखकर चलने के बावजूद नागार्जुन उन्हें हीरो की ऊँचाइयों तक नही उठा पाते। जैसे 'बलचनमा' या 'रतिनाथ की चाची' शीर्षक से लगता है कि केन्द्र में ये चरित्र हैं पर पूरे कथा विन्यास में ये चरित्र इस तरह घुल–मिल जाते हैं कि उनकी कोई विशालमूर्ति खड़ी नही हो पाती है। आलोचक इसे शेखर के प्रतिमानो से तौलते हैं। नागार्जुन अपने पात्रों के इर्द–गिर्द ऐसा कोई इन्द्रजाल रचने के कतई कायल नहीं। जीवन में जब ऐसें हीरो नही मिलते

---

[1] डा० शिव कुमार मिश्र– व्यक्ति और सर्जना के कुछ विशिष्ट पहलू..., सं०–रामनिहाल गुंजन, पृ०–४

[2] डा० शांति भारद्वाज– हिन्दी उपन्यास– प्रेम और जीवन, पृ०–२३३

तो उपन्यास में वे क्यों आयें? उनके पात्र साधारण होकर भी असाधारण हैं, यथार्थ हैं। उन्हें लेकर वे विल्कुल मोहपाश में नहीं बॅधते।

अस्तु, नागार्जुन नारी–पात्रों की सृष्टि और विकास को लेकर अतिरिक्त सजग है, उनसे ज्यादा कौन इस बात को देख पाया होगा कि भारतीय समाज में नारी, दोहरे शोषण की शिकार हैं। उन्होंनें कुटिल नारियों की सृष्टि की ही नही अगर करनी पडी भी तो उनके विकास में जबर्दस्त उलटफेर उन्होंने कर दिखाया है। मसलन 'कुंभीपाक' में लड़कियों के व्यापार में शामिल जिस बुआ के चरित्र को उन्होंनें उठाया, अन्त तक जाते–जाते वही बुआ एक परिवर्तित नारी के रूप मे सामने आती है। जो स्त्रियों की दुर्दशा के प्रति पूर्ण सजग ही नहीं उनकी बेहतरी के लिए अपना जीवन अर्पित करना चाहती है। यदि 'बलचनमा' में सामन्ती व्यवस्था में कुचली जाती हुई सर्वहारा–वर्ग की नारी का सतीत्व अंकित है, तो 'कुंभीपाक' में वेश्यावृत्ति जैसी घिनौनी स्थिति का रेखांकन भी है तथा 'उग्रतारा' में नारी की विवशताओं का नाजायज उपयोग एवं 'इमरतिया' मे अंधविश्वास से पीड़ित नारी के दर्द अंकित है।

यह नारी 'रतिनाथ की चाची' में रतिनाथ की चाची हो या फिर उसकी मॉ, 'बरुण के बेटे' की मधुरी हो या उसकी माँ, 'कुम्भीपाक' की उम्मी की मॉ हो या फिर निर्मला, और रंजना सभी मानवीय गुणों से भरपूर है। ऐसा भी नहीं है कि नागार्जुन अफराएं वर्गो की इतराती–इठलाती स्त्रियों से परिचित नही हैं या फिर उन पर फब्तियाँ नहीं कसतें लेकिन विशाल जनता के फलक को उसके जन–जीवन को उन्होंने अपनी रचना के केन्द्र में रखा है वहॉ उनका साक्षात्कार ऐसी ही स्त्रियों से हुआ है जो अपनी प्रकृति से ही मनुष्यता के सर्वोच्च गुणों से विभूषित है, और दिलेर 'धनिया' की परम्परा को आगे बढ़ा रही है। उनके अधिकतर उपन्यासों में नारी के इसी रूप से हमारा साक्षात्कार होता है। उसी तरह स्त्रियों की समस्या को नागार्जुन नें मानव मुक्ति के बड़े सन्दर्भ में उठाया है।

इन सबके बावजूद नागार्जुन अपने उपन्यासों में प्रेम और रोमांस की कोई बेल नही बढाते ।आंशिक चर्चा भले ही फुटकल मिल जाय। जैसे 'रतिनाथ की चाची' में रत्ती और बागों का प्रेम और 'बरूण के बेटे' में मंगल और माधुरी का प्रेम, पर इतना ही कि कहीं आते-जाते ऑख लड़ गई, एकान्त में पेड़ तले कुछ मान-मनुहार हो गई इससे ज्यादा कुछ नही। गॉव से परिचित कोई भी व्यक्ति इस बात को जानता है कि एक ही गॉव से लडके-लड़की का प्रेम किस सीमा तक जा सकता है। यहाँ शहरी मध्य-वर्ग के प्रेम-रोमांस की अनंत संभावनाए नहीं। वह प्रेम जो माँ और बच्चे में होता है। नागार्जुन ने इन संबन्धों कों जतन से रचा है। और ऐसे प्रसंगो की सृष्टि पूरी मानसिकता से करते हैं। उन्होंने प्रेम की मर्यादाओं को निभाते हुए उसे इंडलजैंस में नही बदलने दिया।

नागार्जुन के प्रत्येक उपन्यास की कहानी बहुत ही साधारण तरीके से शुरू हो जाती है। 'बलचनमा' में बलचनमा आया और अपनी कहानी कहनी शुरू कर दी। न कोई ताम-झाम, न नौटंकी, न दिल हिला देने वाले ट्रेलर। पर यह सहजता बड़े जतन से व्युत्पन्न की गई है। बाप मरा, दो किसुनभोग तोड़ लाने की सजा के जुर्म में, जिसने मारा उसी से फिर ले देकर किरिया करम हुआ और फिर उन्ही ने बलचनमा को भैस चराने का काम देकर धन्य किया। सहजता की आड़ में नागार्जुन कितना चोट कर रहे हैं? कैसी चोट कर रहे है? इसे जानने के लिए अर्थ के मर्म को समझना होगा। जीवन के किन पक्षों को कितना गहरा रंग देना है, इसे जानने के लिए 'बलचनमा' में धान की रोपाई का वर्णन देखना होगा। 'कुंभीपाक' में महाजाल से मछली पकड़ने का सामूहिक कर्म देखिए, भोला द्वारा मगरमच्छ मारना, काका द्वारा भैसो की देखभाल का विज्ञान, ऐसे न जाने कितने ही प्रसंग आते हैं। यह नागार्जुन की सूक्ष्म दृष्टि का ही पैनापन है जो अपनी सम्पूर्ण जीवंतता से हमारे सामने उपस्थित होता है।

उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द नें सर्वप्रथम अपने उपन्यासों में किसान और मध्यवर्ग के जीवन को बडी ईमानदारी और तत्परता पूर्वक चित्रित किया था। नागार्जुन ने प्रेमचन्द द्वारा उठायी गयी समस्याओं की आर्थिक राजनीतिक तथा सामाजिक व्याख्या को नवीन परिपेक्ष्य में देखा है। "प्रेमचन्द के युग की समस्यायें नागार्जुन के काल में भी उतनी ही ज्वलन्त रही हैं, इसमें सन्देह नही किन्तु प्रेमचन्द में जहाँ उनके निदान के लिए छटपटाहट दिखाई पड़ती है; प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में उन समस्याओं के निदान के लिए सशक्त स्वर में आवाज बुलन्द करने का प्रयास किया गया है। प्रेमचन्द अपनी परम्परा के जनक स्वयं ही थे, फलतः उनमें प्रारम्भिक पथ–निर्माण की कठिनाईयों के साथ अपनी पूर्व की परम्परागत लीक को त्यागने में कुछ भावात्मक विवशता भी थी, जिससे वे अपने आपको मुक्त नही कर सके थे। पर उसी परम्परा की लीक पर चलते हुए प्रेमचन्दोत्तर कतिपय उपन्यासकारों में तत्कालीन सामाजिक भाव–बोध की नयी चेष्टा और उसकी समस्याओं को नये निदान से संयुक्त करने का सफल प्रयत्न किया है। नागार्जुन इस पथ में प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों के बीच सर्वाधिक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में है।

नागार्जुन प्रेमचंद की ग्रामीण संस्कृति परंपरा को अपना कर चले है। लगता है, मानो प्रेमचंद ने ही अपना प्रतिनिधित्व इन्हें सौंप दिया हैं। प्रेमचंद ने 'गोदान' में जिस निरीह किसान 'होरी' के शोषण का चित्रण किया है, जो आधा खेतिहर मजदूर है, और आधा किसान। अगर नागार्जुन के 'बलचनमा' की पृष्ठ–भूमि से उनकी पृष्ठ–भूमि को देखा जाय तो उपन्यास की सम्पूर्णता स्पष्ट हो जाती है।"[1] नागार्जुन की इन पात्रों के प्रति व्यक्त संवेदना हृदय की गहराई से निकली हुई प्रतीत होती हैं।"[2] अगर नागार्जुन खेतिहर मजदूर ग्वाले या मछुओं का चित्रण करते है तो यह कोई अस्वाभाविक नहीं है, अपितु कटु सत्य है। जिन परिस्थितियों में वे रह रहे है, वे

---

[1] डा० प्रकाश चंद्र भट्ट नागार्जुनःजीवन और साहित्य

[2] डा० प्रकाश चंद्र भट्ट नागार्जुनःजीवन और साहित्य

उन्हे इस बात के लिए प्रेरित कर रही है कि यह अन्याय हमारे ही साथ क्यों? भाग्य और ईश्वर के अधीन हाथ रखकर बैठने से अब काम चलने वाला नही है। सारे दिन एड़ी चोटी का पसीना बहाकर मजदूर भूखा क्यों, प्रेमचंद के होरी और नागार्जुन के 'बलचनमा' में अन्तर दो विभिन्न परिस्थितियों तथा दो विभिन्न विचारधाराओं के अन्तर का सूचक है। प्रेमचंद मध्यवर्गीय समाज के आदर्शवादी दृष्टिकोण से मुक्ति गोदान में पूरी तरह नही पा सकें। इसलिए उनके होरी पर भी आदर्शवाद का रंग चढ़ा हुआ है, चाहे वह रंग कितना ही फीका पडा गयाहै। 'बलचनमा' का चरित्र यथार्थ के आधर पर खडा किया गया हैं। उसमें आशा और प्रगति के लक्षण मिलते हैं। प्रेमचंद का दृष्टिकोण सामाजिक यथार्थवाद की देन है, नागार्जुन की जीवन दृष्टि समाजवादी यथार्थ पर आधारित है।"[1]

समाजवादी यथार्थवाद की दृष्टि से इनके उपन्यास आदर्श रूप प्रस्तुत करते है। इस विचारधारा का प्रसारण अन्य उपन्यासकारों में लेखक की ओर पात्रों द्वारा अभावग्रस्त जीवन को भोगकर इसका बोध होने में स्वाभाविकता वृद्धि में सहायक हुआ हैं। सहज जीवन के चितेरे नागार्जुन जीवन की अभिव्यक्ति में जितने सहज हैं कलाकार के समाजिक–दायित्व के प्रति भी उतने सजग उतने ही प्रगतिशील। उनकी रचनाओं मे मॉर्क्सवाद की मान्यताएं खोजी जा सकती है। लेकिन यह चेतना पर है, शिल्प पर नही। इसीलिए नागार्जुन के उपन्यास सही अर्थो में भारतीय जीवन के चित्र है।[2]

यदि हम नागार्जुन और रेंणु के उपन्यासों की विवेचना करें, तो नागार्जुन का स्थान अप्रतिम है। नागार्जुन और रेणु के उपन्यासों में ग्राम बोलियों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। जहॉ रेणु ने लोक–जीवन को चित्रित करने के लिए लोक–गीतों का सहारा लिया है, वहीं नागार्जुन उससे अधिकांशतः दूर रहकर लोक–शब्दों एवं ध्वनियों का आश्रय लेते हैं। उनके आंचलिक शब्द ध्वन्ययार्थ व्यंजना से पूर्ण है। इन्ही

---

[1] डा० सुषमा धवन –हिन्दी उपन्यास–शोध प्रबंध।

[2] डा० शांति भरद्वाज –हिन्दी उपन्यास–प्रेम और जीवन, पृष्ठ–२३३।

आंचलिक शब्दों के प्रयोग में लेखक ने अपनी रचना का सही मुहावरा भी पा लिया है। इन दोनो ने आंचलिक–रचना को नई दिशाएँ दी तथा उसमें आंचलिक तत्वों के प्रयोग से पूर्णता का उन्मेष किया।

इन दोनों आधार स्तंभ आंचलिककारों के बाद हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में आंचलिक उपन्यासकारों की एक लम्बी श्रृंखला दिखाई पड़ती है। यथा– उदय शंकर भट्ट, अमृतलालनागर, शिवप्रसाद मिश्र 'रूद्र', भैरवप्रसाद गुप्त, देवेन्द्र सत्यार्थी, राजेन्द्र अवस्थी, शिव प्रसाद सिंह और शैलेश मटियानी, श्रीलाल शुक्ल, राही मासूम रजा, उदय राज सिंह, विवेकी रय, सच्चिदा नन्द 'धूमकेतु', हिमांशु जोशी, रामदरशमिश्र, आदि इस प्रकार आंचलिकता का जो बीज नागार्जुन ने डाली वह अनवरत पल्लवित और पुष्पित हो रहा है, जिसकी छांह में अन्य उपन्यासकार आह्लादित होकर सृजन कर रहे हैं।

नागार्जुन हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों के जनक हैं। उनका 'रतिनाथ की चाची' १९४८ ई० में प्रकाशित हुआ था, और दूसरा उपन्यास 'बलचनमा' १९५२ में प्रकाशित हुआ, जो हिन्दी का प्रथम आंचलिक उपन्यास है। इन दोनो को आलोचको नें सफल, आंचलिक उपन्यासों की कोटि में रखा है। कुछ विद्वानों ने रेणु कृत 'मैलाआंचल' को हिन्दी का प्रथम आंचलिक उपन्यास माना है। किन्तु 'मैलाआँचल', 'बलचनमा' के बाद की कृति है। 'मैलाआँचल' को प्रथम आंचलिक उपन्यास मानने का एक ही तर्क इनके पास है, और वह है, इसके लेखक द्वारा उपन्यास की भूमिका में इसे ऑचलिक उपन्यास की संज्ञा से सम्बोधित करना। किन्तु केवल इससे 'मैलाआँचल' को प्रथम आंचलिक उपन्यास और रेणु को प्रथम आँचलिक उपन्यासकार नही माना जा सकता।

इस प्रकार हम कह सकते है कि राष्ट्र के विभन्न क्षेत्रीय वासी अपनी बहुआयामी संस्कृति, जीवन प्रणली, राग–द्वेष, दुःख–सुख, आशा–निराशा,

सुविधा–असुविधा, अभाव–कष्ट आदि को अपने साहित्य मे समाहित करना 'नागार्जुन सरीखे व्यक्ति हिन्दी उपन्यास जगत् में दुर्लभ है'। क्योंकि उन्होने आम जनता के जमीन को स्वयं भोगा ही नही बल्कि उसके प्रत्यक्षदर्शी भी रहे हैं। इसीलिए उनकी अभिव्यक्ति में किसान और उसका धरती से मोह, जमींदारों की तानाशाही, उनका अन्याय, शोषण की प्रवृत्ति और उसके लिए अपनाये जाने वाले विभिन्न तरीकं, घृणित व्यवहार आदि मुखरित हुए हैं।

उन्होंने अन्यायी व्यवस्था के सशक्त स्वरूप और उससे प्रशस्त बहुसंख्यक करुण जीवन–गाथा को मूर्त रूप ही नही दिया बल्कि अन्याय के विरूद्ध आवेश उत्पन्न कर उससे मुक्ति के लिए व्यवहारिक साधनों को भी अपनाया है। प्रो० प्रकाश चन्द्र गुप्त के शब्दों मे "जिस शक्ति और वेग से आज नागार्जुन हिन्दी उपन्यास को समृद्ध बना रहे है, वह पाठक और आलोचक का मन भविष्य के प्रति आश्वस्त करता है।"[१] इस प्रकार "नागार्जुन आज हिन्दी साहित्य में मूलतः लघु उपन्यासकार के रूप मे ही स्थापित हैं। हिन्दी साहित्य को उनसे अभी भी काफी अपेक्षा है।"[२] हिन्दी उपन्यास को नई दिशा देने में नागार्जुन उल्लेखनीय व्यक्ति हैं।

नागार्जुन के उपन्यास निम्न है।

१. रतिनाथ की चाची (१९४८)
२. बलचनमा (१९५२)
३. बाबा बटेसरनाथ (१९५४)
४. दुखमोचन (१९५७)
५. बरूण के बेटे (१९५७)
६. नई पौध (१९५७)
७. कुम्भीपाक (१९६०)
८. हीरक जयन्ती (१९६१)
९. उग्रतारा (१९६३)
१०. इमरतिया या जमनियाँ के बाबा (१९६९)

---

[1] प्रो० प्रकाश चन्द्र गुप्त– 'आज का हिन्दी साहित्य, पृ०– १६७।
[2] प्रो० घनश्याम 'मधुप'– 'हिन्दी लघु उपन्यास', पृ०– १६०।

नागार्जुन के उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय

नार्गाजुन के रचना संसार में व्यापकता और स्थानीयता का अद्‌भुत संगम है। उनके उपन्यास–साहित्य में आंचलिकता की जमींन पर भारतीयता खड़ी दिखाई देती हैं। व्यापकता और स्थानीयता के इस संगम में कोई अंतर्विरोध नहीं है। कोई भी रचनाकार एक विशेष देश–काल, समाज और संस्कृत से गहरे रूप से जुड़कर ही प्रभाव की व्यापकता पैदा कर पाता है। नागार्जुन के रचना–संसार की एक विशेषता यह भी है, कि उसमें समाज, संस्कृति, इतिहास और समकालीन जिदगी को देखने वाली दृष्टि और रचने वाली प्रतिभा भाषा की सीमाएं तोड़ती है। इसीलिए वह मैथिल को हिन्दी से जोड़ती है। उनके उपन्यासों में रचना की जमीन मिथिलांचल है। लेकिन उसके भीतर यथार्थ का चित्रण और रचनात्मक अभिप्राय की अभिव्यक्ति इस रूप में हुई है कि, वह व्यापक भारतीय–समाज के जन–जीवन का चित्र बन जाता है। इसीलिए उनके उपन्यासों में प्रेमचंद से अधिक स्थानीयता है, लेकिन फणीश्वरनाथ रेणु जैसी नही।

हिन्दी क्षेत्र सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से सामन्ती–रूढियों का गढ़ रहा है, और अब भी है। इस सामन्ती रूढ़िवाद और मानसिकता का सबसे अधिक शिकार स्त्रियाँ होती है और दलित भी। जैसे– प्रेमचन्द्र के कथा–साहित्य के केन्द्र में किसानों का शोषण, स्त्रियों की पराधीनता और दलितों का दमन है, वैसे ही नागार्जुन के कथा–साहित्य में भी इन तीनों की चिन्ता सबसे अधिक है। उनके प्रमुख उपन्यासों 'रतिनाथ की चाची', 'उग्रतारा', 'कुंभीपाक' आदि में सामन्ती व्यवस्था और उसकी रूढ़ियों के भीतर स्त्री के तरह–तरह के शोषण, दमन और उत्पीड़न की त्रासद्–स्थितियों का चित्रण है। नागार्जुन नें अपने कथा–साहित्य में स्त्रियों और दलितों के सवाल पर तब ध्यान दिया था, जब प्रायः इस देश के वामपन्थी आन्दोलन और उससे जुड़े हुए रचनाकार स्त्रायों और दलितो के सवालों को गैर–जरूरी मानते

थे। इस देश में सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक रूपान्तरण की किसी भी प्रक्रिया में स्त्रियों और दलितों के सवाल को अपनी रचनाओं में उठाते समय नागार्जुन ने वामपन्थी दलों और विचराधराओं के निधि–निषेध से मुक्त होकर वही काम किया है जिसकी माँग प्रेमचन्द्र ने की थी। प्रेमचन्द्र ने कहा था– ''साहित्यकार राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नही है। बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।''

नागार्जुन सामाजिक जड़ता, शोषण दमन और राजनैतिक दुर्व्यवस्था की गंभीर आलोचना के लिए व्यंग्य का प्रयोग करते हैं। बाबा बटेसरनाथ, बलचनमा, इमरतिया, बरूण के बेटे; नई पौध, दुःखमोचन 'हीरक जयंती'! सरीखे उपन्यासों में धर्म की जड़ता, उसके रूढिवाद, उसके पाषाण, उसके शोषण के स्वरूप और उसे संस्थापक रूप में स्त्रियों तथा दलितों के निर्मम शोषण का चत्रिाण है।

रतिनाथ की चाची

'रतिनाथ की चाची' (१९४८) नागार्जुन का पहला उपन्यास है, जिसमे एक विधवा गौरी (रतिनाथ की चाची) को केन्द्र बिंदु बनाकर लिखा गया है, उसे समाज के अपमान, अत्याचार और संघर्ष का सामना करना पड़ता है।

मुख्य कथा गौरी देवी के इर्द–गिर्द घूमती है। इसके आस–पास की छोटी–बड़ी घटनाओं की यथा– किसान संघर्ष, निष्क्रिय जयनाथ के इधर–उधर घूमने, रतिनाथ का छात्र जीवन, आदि बागो से उसका प्रणय, उसके ननिहाल जाने, चाची की ग्राम सेवा, उमानाथ का कलकत्ता का जीवन आदि पर प्रकाश डालती है। लेखक ने इस उपन्यास के कथानक का आधार बचपन की स्मृति को बनाया है। रतिनाथ के जीवन में घटित घटनाएं नागार्जुन की अपनी है। जिसमें उन्होंने कुछ कल्पना का मिश्रण अपनी ओर से कर दिया है। जैसा कि नागार्जुन 'आइने के सामने' पुस्तक में दिए गए इंटरव्यू में बताते है। नागार्जुन के पिता बड़े उग्र स्वभाव के थे।

बच्चों के शिक्षण आदि के प्रति उन्होंने बडी उपेक्षा बरती थी। जयनाथ भी पुत्र की पढ़ाई से लापरवाह दिखाया गया है। अपनी भाभी को उनसे और उपन्यास में गौरी को जयनाथ से गर्भ रह जाता है। फिर चमाइन द्वारा भ्रूण हत्या उसी प्रकार की जाती है जिस प्रकार उपन्यास में। बाल्यावस्था मे नागार्जुन ने अपने पिता को माँ की छाती पर चढकर गर्दन रेतते हुए देखा था, "पिता के रूद्रस्वभाव के प्रति इस बालक के हृदय में प्रति हिंसा की आग कभी–कभी सुलग उठती। जैसा के बाबा लिखते थी है "मगर मै पिता को अन्त तक खुली क्षमा कहॉ दे पाया"।[1] इस प्रकार के हम देखते है कि कथानक का आधार लेखक के जीवन की सत्य घटना है।

यद्यपि उपन्यास के कथानक में जिज्ञासा प्रमुख होना चाहिए तथापि यहाँ जिज्ञसा का अभाव है। चरम–सीमा–विहीन कथानक भ्रूण हत्या के बाद ठेला गया लगता है। निरर्थक विस्तृत ब्यौरे, जैसे तकली कातने की आवाज, सूत की आवाज, सुपारी कतरने का ढंग, ट्राम वर्षन आदि के द्वारा पाठकों को पकड़े रखने का प्रयास किया गया लगता है। कथानक से 'मैथिल विधवा निवास' की विधवा सुशीला की कथा को यदि हटा भी दिया जाय तो कथानक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। 'रतिनाथ और बागो' के प्रणय प्रसंगसे ऐसा दिखता है कि इनका स्नेह परिपक्व होकर दाम्पत्य सूत्र में बंधेगा। लेखक ने बचपन में स्मृतियों को उपन्यास के कथानक को आधार बनाया है। रतिनाथ के जीवन में घटित घटनायें नागार्जुन की अपनी है जिसमें उन्होंने कुछ कल्पना का मिश्रण अपनी ओर से कर दिया है। उपन्यास का आरम्भ और अन्त तथा रतिनाथ के शिक्षण आदि की बातें वास्तविक और शेष काल्पनिक हैं। नागार्जुन नें गौरी का चरित्र बड़ी कोमलता और संजीदगी से गढ़ा हैं। ग्राम में इतना विरोध होने के बावजूद भी वह शांत और गम्भीर बनी रहती है। अखिल भारतीय सूत्र प्रतियोगिता में वह प्रथम आती है। वह रूढ़िवादी समाज की नारी होने पर भी सामाजिक विचारों में प्रगतिशील है तथा राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित है। धार्मिक कार्यों

---

[1] आइने के सामने इण्टरव्यू में।

में वह विशेष रूचि लेती है। कोई भी उसके द्वार से भूखा नहीं लौटता है। रतिनाथ को अत्यन्त प्यार करती है। रतिनाथ मोतिहारी में जाकर कुसंगति में फँस जाता है। वैसे वह बडी भावुक प्रकृति का बालक है। वह पढ़ने में तेज, सुशील और आज्ञाकारी बालक है।

जबकि जयनाथ सामन्त–युगीन परम्परा एवं रूढ़िवादी मैथिल ब्राह्मण समाज का प्रतिनिधि पात्र है जो निठल्ला तथा ब्राह्मण वृत्ति पर निर्भर रहता है। वह गौरी देवी को चरित्र भ्रष्ट करता है, मैथली विधवा आश्रम की सुशीला पर आसक्त हो जाता है। मछली–मांस युक्त भोजन और भांग उसे बड़े प्रिय हैं। जयनाथ कही–कहीं भावुक हृदय भी दिखाया गया है। तीन–चार बार उपन्यास में उसके आसूं भी छलक पड़ते है।

नागार्जुन के पात्र जहॉ–कही अपनी स्थिति से उच्च स्तर की बातें करते है वहाँ उनके चरित्र में अस्वाभाविकता देखी जा सकती है। ग्राम शुभंकरपुर की गौरी राजनीति की बाते और रूस की प्रशंसा करती है। नारी जाति के युगों से चले आते त्याग के प्रति उसका दार्शनिक विवेचन उसे ग्रामीण नारी की स्थिति से ऊँचा उठा हुआ सिद्ध करता है।

नागार्जुन ने बचपन में देखी गयी अपनी पारिवारिक स्थिति अर्थात् कहानी को ही उपन्यास का रूप दिया है। बालक नागार्जुन को उनकी विधवा चाची भी इसी प्रकार प्यार करती रही होगी, जैसा रतिनाथ की गौरी देवी करती थी। यही प्यार की स्मृतियाँ और चाची की करूण मृत्यु नागार्जुन के हृदय को वयस्क होने के बाद सालती रही होगी। चाची के प्यार भरे हाथ की गर्मी का अहसास, पिता की क्रोधी मुखाकृति और उनका व्यवहार लेखक को कुछ लिखने के लिए विवश करते रहे होगे। मात्र चाची के चरित्र का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण करना ही लेखक को अभिप्रेत रहा है अन्यथा जयनाथ और गौरी का विवाह होना तो वे भी आवश्यक मानते है।

जैसा कि नागार्जुन स्वयं लिखते है–"मेरा वश चलता तो उस अधेड़ उम्र मे भी आप दोनों की नई शादी वैदिक विधि से करवा देता। पर मैं तो उन दिनों दस–ग्यारह साल का बालक था–मातृहीन रोगी और डरपोक"।

इस उपन्यास में नागार्जुन ने समाजवादी यथार्थवाद को चित्रित करने का प्रयत्न किया है जिससे उन्हें सफलता प्राप्त हुई है। इस प्रकार लेखक ने शुभंकरपुर और आसपास के कृषकों की गाथा व्यक्त किया है। उपन्यास में प्रमुख पात्र गौरी देवी और अन्य सहायक पात्रो में जयनाथ, रतिनाथ, उमानाथ, जयकिशोर और उसकी माँ आदि है। उपन्यास की प्रमुख–नारी पात्र गौरी ही रतिनाथ की चाची है, उासकी चरित्रगत महत्ता और गरिमा के कारण ही लेखक नें उपन्यास का नाम रतिनाथ की चाची रखा है। उसने ऐसी रूढ़िग्रस्त विधवाओं का प्रतिनिधित्व किया है जो समाज के निर्मम अत्याचारों से त्रस्त और दमित है। संपूर्ण उपन्यास में गौरी के दुख दर्द का मार्मिक चित्रण हुआ है।

बलचनमा– बलचनमा (१९५२) नागार्जुन की उपन्यास कला का कीर्ति स्तंभ है। यह आंचलिक उपन्यास है। जिसमें बलचनमा ही इस उपन्यास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पात्र है। जिसके इर्द–गिर्द मूलकथा के सारे तन्तु फैले है। किंतु वह चरित्र ही नही है। वह मूलतः एक प्रतिनिधि चरित्र भी है। सारी कथा उसी के मुख से कहलायी गयी है।

नागार्जुन ने इस उपन्यास में कथा को बलचनमा की कई स्मृतियों से सजाया है, जैसे मालिक–मालिकाइन की अत्यन्त निम्नस्तरीय कृपणता और अत्याचार, बलचनमा द्वारा राधे बाबू के ससुराल जाने, सबूरी मंडल का भैस पालन, सुखिया का भूत भगाना, उसका धान रोपना, बीमार बैल के प्रति सहानुभूति, उसकी प्रथम रेल–यात्रा एवं आश्रम की दिन–चर्चा इत्यादि।

इस उपन्यास में बलचनमा के जीवन का खण्ड चित्र है। उपन्यास का आरम्भ आत्मवृत्तात्मक विधि से हुआ है। कथानक का पूर्ण विकास चाहे न हुआ हो पर उसमें रोचकता तो पर्याप्त है। कहा तो जाता है कि यह उपन्यास अधूरा है। नायक के बेहोश होकर गिर जाने तक इसका प्रथम भाग है। दूसरा भाग शेष अलिखित है। अपने कथानक में नागार्जुन ने दैनिक जीवन के एक–एक क्रिया व्यापार–सोना–उठना, शौच स्नान आदि–का भी वर्णन किया है। डा० प्रकाशचन्द्र भट्ट के अनुसार "नागार्जुन द्वारा साम्यवादी सिद्धान्तो की स्थापना, पात्रों के निम्नस्तरीय जीवन के प्रकाश में स्थापित हुई है, इसलिए वह ऐसा नही खटकता कि कथानक की रोचकता को आघात पहुँचे। पाठक, पात्रों के जीवन की घटनाओं के बराबर सहमत होता चलता है। बलचनमा की पीड़ाएँ उसकी स्वयं की भोगी हुई है।"

इस उपन्यास में बहुसंख्यक पात्रों की क्षणिक झाँकियाँ मिलती है बलचनमा में लेखक ने अपने इसी उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए अनेक पात्रों की सृष्टि की है। इसलिए यहाँ गौण पात्रों की भरमार हो गयी है, जैसे–मालकिन, गुनमन्ती, सुखिया नौकरानी, सबूरी मंडल, माँ, दादी रेबनी, छोटे मालिक दामोठाकुर, धनवन्ती चाची, मनियार चाचा, मित्र चुन्नी विधवा जानकी, महेन्द्र बाबू, फूलबाबू, अनीता, लवंगलता, शुभंकर ठाकुर, सुगनी, डा० रहमान, लतीफ कामेन्द्र प्रसाद नारायण सिंह स्वामी जी, रामखेलावन जमींदार सादुल्लाखान इत्यादि।

बलचनमा ग्राम्यांचल पर आधारित उपन्यास हैं। बलचनमा जिसके नाम पर 'उपन्यास' का नामकरण हुआ है, वही उपन्यास का प्रमुख पात्र है। वह मूलतः एक प्रतिनिधि चरित्र है। उसने देश के ऐसे किसानों का प्रतिनिधित्व किया है, जिनका भरपूर शोषण किया गया है, उन्हें दमित किया गया है। उनके घर परिवार बहू–बेटी को वासना का शिकार बनाने का प्रयत्न किया गया है। इन विभिन्न प्रासंगिक स्थितियों का सजीव और स्वाभाविक चित्रण नागार्जुन ने इस उपन्यास की कथावस्तु में किया है।

'बलचनमा' जिसने दीन–हीन कृषको का प्रतिनिधित्व किया है। सदैव से दुर्दिन के दुःखो को सहते हुए अंत में अपने को उन सभी से टक्कर लेने के लिए तैयार करता है जिन्होंने दीन–हीन किसानो का, श्रमिकों का शोषण किया है, उन पर अत्याचार किया है और उनके साथ अन्याय किया है। उपन्यास की सम्पूर्ण कथा मे किसानों के दुःख दर्द की मार्मिक कहानी चित्रित है। "पूरे उपन्यास में किसान का दुःख दर्द और संघर्ष व्याप्त है तथा मानवीय अधिकारों को जकड़ने वाली शोषक जर्जर मान्यताओं, वर्ग व्यवस्थाओं और परम्पराओं पर कलात्मक प्रहार है"।[१]

लेखक ने बलचनमा के एक पात्र के रूप में कथा के मंच पर प्रस्तुत किया है, लेकिन वास्तविकता यह है कि केवल एक किसान ही नही, अपितु अपनी गरीबी में किसी प्रकार गुजर बसर करने वाले समष्टिगत रूप में किसानों का एक सशक्त प्रतीक है। उसका पिता जमींदार के द्वारा मारा जाता है, एक साधारण सी भूल पर। महज दो किसुन भोग ही तो उसने चुराये थे। मझले मालिक के द्वारा इतनी सी गलती पर मारा गया। जमीदारों द्वारा दी गयी गालियों इन दीन–हीन खेतिहारों को बराबर ही सुननी पड़ती है। इसका सही और स्पष्ट परिचय बलचनमा की निज की स्थिति में मिल जाता है, जमींदार द्वारा गदहा, सुअर, कुत्ता और उल्लू आदि के निकृष्ट संबोधनों को सुनते–सुनते बलचनमा के कान जैसे बहरे हो गये थे। गरीबी का शिकार बलचनमा, स्त्रियों पर होने वाले अन्याय, अत्याचार और निर्भय व्यवहार से बहुत ही क्षुब्ध है।

नागार्जुन ने इस उपन्यास में अंचल विशेष के यथार्थ को चित्रित करने के लिए यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाया है। वहाँ के रीतिरिवाज रहन–सहन, लोकविश्वास, मान्यताओं प्रथाओं तथा परम्पराओं को यथा संभव स्वाभाविक रूप से चित्रित करने के लिए पात्रो के संवादों को उस अंचल विशेष में बोले जाने वाले प्रचलित तथा सामान्य व्यवहार में प्रयुक्त होने वाले शब्दो का प्रयोग किया है।

---

[1] राम दरश मिश्र : हिन्दी उपन्यास... एक अन्तर्यात्रा

अनैतिक संबंधो की चर्चा भी स्वाभाविकता की भूमि पर हुई है। "श्री नागार्जुन के आंचलिक उपन्यासों को पढते समय हमारे सामने यथार्थ से सम्बन्धित एक और समस्या उठ खडी होती है। वर्ण वस्तु के स्तर पर भी नागार्जुन के उपन्यासों में यथार्थवादी चित्रण तो हमें प्राप्त होता है, किन्तु जहाँ कही समसामयिक वास्तविकताओं के तटस्थ निरूपण का अवसर आता है वहॉ वे अपना संतुलन खो बैठते है...नीर–क्षीर से न्याय मिल जाय,"[१] बलचनमा द्वारा फूलबाबू के साथ पटना जाने तक की घटना को कथानक का प्रस्तावना समझना चाहिए। उसके लौटकर आने और गौना करने तक की घटनाएँ उपन्यास का मध्य है। परिच्छेद सात से उपन्यास का कथानक अन्त की ओर अग्रसर होने लगता है। बलचनमा पर जाल डालने और मारने की घटनाएँ उपन्यास की चरम सीमा कही जानी चाहिए, जिसे पढ़ते–पढ़ते पाठक बड़ी बेचैनी महसूस करता है। बलचनमा की विवशता, उसका जाल में फॅस जाना, उसे अपनी विवशता लगने लगती है। 'गोदान' में प्रेमचन्द्र ने जिस प्रकार ग्रामीण कथा का सम्बन्ध शहर से जोड़ता है, उसी प्रकार बलचनमा की कथा फूल बाबू, मोहन बाबू और पटना शहर से जोड़ी हुई है। बलचनमा के ये जोड़ स्वाभाविक बन पड़े हैं; खटकते नही। इसका कारण है बलचनमा का स्वयं वक्ता होना।

डा० चुध का मत है कि "नागार्जुन का लक्ष्य किसी सुगठित कथावस्तु के निर्माण का नहीं था। वस्तुतः यह बलचनमा के जीवन खण्ड चित्र के साथ–साथ उसकी अनुभवगाथा भी है। यदि इस उपन्यास के कुछ अनुभव प्रसंग निकाल दिये जायँ तो बलचनमा की व्यक्तिगत जीवन कहानी में कोई अन्तर नही आएगा जैसे सुखिया का भूत भगाने का प्रसंग आदि।"

---

[1] श्री हीरा प्रसाद त्रिपाठी : उपन्यास कला

बलचनमा जो अत्यन्त सरल प्रकृति का, परिश्रमी और दृढचरित्र बालक है। भैंस को सम्हालने में वह अपनी ओर से कोई कसर नहीं रखता। वह सबूरी मंडल से पशु–पालन की अच्छी विधि सीखता है। कम उम्र में ही वह अढ़ाई कोस दूर रेलवे स्टेशन तक मालिक का वजनदार बेडिंग और सूटकेस उठाकर ले जाता है। श्रम ही उसका जीवन है, चरित्र का वह इतना दृढ़ है कि जब मुखिया उसके चरित्र का अनुचित लाभ उठाना चाहता है तब वह उसे फटकार देता है। काम करते समय उसे खेत में बस फसल दिखाई देती है और हाथ में हॅसिया। गजब का फुर्तीला है वह। जिस लगन से अपने खेत में वह काम करता है, उसी मेहनत और ईमानदारी से मजदूरी पर बुलाने वालों के खेत में भी। उसकी ईमानदारी सबको ज्ञात है। उसका उत्साह खेती की उन्नति करने में और गन्ने बोने में दिखाई देता है।

उसमें बचपन से ही उच्च्च वर्ग की नीचता के प्रति आक्रोश है। रेबनी प्रकरण में वह फांसी पर भी चढ़ने के लिए तैयार था लेकिन सिर नही झुकाया। फूल बाबू का जो चरित्र रेबनी प्रकरण के बाद उद्घाटित हुआ है, पूर्व में उसके जरा भी संकेत नहीं है। अचानक ऐसा शानदार युवक भ्रष्टाचारी कैसे बन गया? क्या लेखक अप्रत्यक्ष रूप से यही कहना चाहता है कि खादी पहनते ही उसमें भी परिधान का भाव इस रूप में प्रकट हुआ? पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए डा० लक्ष्मीकांत सिन्हा लिखते है– 'न मलिकाइन न मालिक, न फूलबाबू, न बलचनमा की माँ, न रेबनी किसी के भी शील में कोई चारित्रिक विरलता या विशेषता नही है।"[1] पात्रों का चरित्र नागार्जुन ने इस कदर गढ़ा है कि हम जमीदारों की कुटिलता, मलिकाइन की नीचता क्षुद्रता सबसे परिचित हो जाते है।

बाबा बटेसर नाथ

बाबा बटेसरनाथ नागार्जुन का तृतीय उपन्यास है। इसका रचनाकाल १९५४ ई० है।

---

[1] डा० लक्ष्मीकांत सिन्हा–हिन्दी उपन्यास साहित्य का उद्भव और विकास पृष्ठ–६१

इस आंचलिक उपन्यास में राजनीतिक–विचार, प्रकाशन की तीव्रता अधिक है। आचलिक उपन्यास रचना के क्षेत्र में यह एक नया प्रयोग है। उपन्यास की कथा–वस्तु के लिए चुना गया परिवेश तथा वातावरण उत्तर विहार के रूपउली गॉव का हैं। वह रूपउली जो "बड़ी वस्ती नही थी। तीन सौ परिवार थे। खाने वाले मुहों की तादात थी ढाई हजार–अलावा–पशु–पक्षियों और कुत्तों बिल्लियों के; ब्राह्मण थे, राजपूत थे, भूमिहार थे। बाकी आबादी ग्वालों–अहीरों, धानुको और मोमिनो की थी। दो घर चमारों के थे, एक परिवार था पासियों का।

लेखक ने उपन्यास की कथावस्तु में वटवृक्ष के माध्यम से १०० वर्षों के लोक जीवन को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। कथानक के आरंभ में ही लेखक ने भावी वर्ग–संघर्ष के संकेत दे दिये है। आगे बरगद बाबा की सुनायी गयी कथा का सूत्र लेखक द्वारा वर्णित कथावस्तु से जोड़ दिया गया है किन्तु इस जोड–तोड़ के बाद भी पाठक का मन लगा रहे, ऐसा कोई आकर्षण उपन्यास में नही है। यदि नागार्जुन संघर्षरत जनता के भावी जीवन की झलक प्रस्तुत करते तो कथानक में जान आ जाती। कथानक के द्वारा ग्रामीण समाज की पृष्ठभूमि व संघर्षरत जीवन का परिचय अवश्य मिला है, परन्तु घटनाएं पात्र आदि लेखक की जकड़ से प्रभावित दिखाई देते है। लेखक इस उपन्यास में आंचलिक परिवेश और वातावरण की स्वाभाविक निर्मित के लिए वहॉ के प्राकृतिक दृश्यों की अवतारणा की है। लहलहाते हुए खेतों, वहाँ के पोखरों, झीलों, वहाँ ग्राम्यांचलो में लगे वृक्षों, पौधो आदि का स्वाभाविक उल्लेख के साथ ही लोक जीवन में व्याप्त अन्ध विश्वास की भावना, पूजा–पाठ की विधि, पशु–बलि का विधान तथा ग्राम पंचायतों की कार्य पद्धति का स्वाभाविक चित्रण हुआ है। लेखन ने उपन्यास की कथा वस्तु कें यदि एक ओर रूपउली गाँव के आंचलिक लोक जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है, तो दूसरी ओर समूचे देश में फैले हुए स्वाधीनता आन्दोलन का भी वर्णन किया है।

लेखक की अपनी विचारधारा का वेग इतना तीव्र है कि विरोधियों की हरकतें हास्यास्पद बन जाती है। फन्नी का सार्वजनिक भूमि पर हल चलाना और दयानाथ का वहॉ पहुँचना – इस घटना में विरोध तो है, पर दयानाथ का अत्यधिक पक्ष ग्रहण करने के प्रयास में नागार्जुन के हल चलाने वालों से ही फन्नी को डॅटवा दिया है। सारे लोग उसके विरोधी बना दिये गये है। कथानक का आकर्षण वही स्थिर रह पाता है जब सत् असत् दोनो प्रकार के पात्रों में जमकर सैद्धांतिक संघर्ष प्रस्तुत किया जाय, पाठक दोनों की दलीले सुनकर या गतिविधि देखकर प्रसन्न हो, और अन्त में परिस्थितियाँ जिसके गले में जयमाला डाल दे, जीत उसी की हो। लेकिन नागार्जुन का दोष यही है क्योंकि वे सब कुछ पूर्व नियोजित करके चले है। कथा कुछ इस प्रकार है। एक जेठ की पूनम रात को जैकिसुन अपने दो मित्र जीव नाथ और सरजुग के साथ बटदादा के पास खुले आसमान के नीचे कच्चे ईटों की तकिया बनाकर सोया था। उसी रात उनके सो जाने पर बट दादा मानव रूप में आकर जैकिसुन से दो बातें करता है। इसके पूर्व लेखक ने वट वृक्ष के रूपो का वर्णन किया है। 'थके हारे वटोहियों के, श्रम से थके किसानों मजदूरों के, खेलने वाले बच्चों तथा वे सभी जो सघन छाया की खोज में उनके पास आते है।' कोई वृद्ध विराट काया जैकिसुन के पास आकर बैठ जाती है। विशाल शरीर, पके बाल, लम्बे हाथ, मटमैली सोंधी गन्धवाली धोती तथा उदार मना व्यक्तित्व, यही बट दादा का परिचय था। जैकिसुन तो पहले उस विराट् मानव काया को देखकर भयभीत हुआ। परन्तु वट दादा ने उसे आश्वस्त किया फिर बोलना शुरू किया। रूपउली के टुनाई पाठक और जैनारायन ने राजाबहादुर के पुराने दीवान टुनटुना मल्लिक को राजी कराकर सवा दो सौ रूपयें पर बदगद और आस–पास की जमीन रजिस्ट्री करा ली थी। पाठक और जै नारायण यह अफवाह लोगों की मानसिक प्रतिक्रिया जानने के लिए उड़ा दिया करते थे, कि बरगद काटा जायेगा। इस भय से मुक्ति दिलाने के लिए वट दादा मनुष्य रूप में आकर बाईस–वर्षीय जैकिसुन को आश्वस्त करते है कि

उनका कुछ भी नही होगा और यह भी संकेत करते है कि वे स्वेच्छेतया मृत्युवरण करेगे।

अब पहले बरगदादा अपने जन्म की कथा कहते है। रूपउली से दो कोस दक्षिण की ओर जो शिवजी मंदिर है वही से अपनी उत्पत्ति को जोड़ते है, कि मन्दिर के जीर्णोद्धार के समय मजदूरो ने मन्दिर के पीछे छोटे से गड्ढे में उस बरगद के पौधे को लगा दिया है। जैकिसुन के परदादा ने उस बिरवे को लाकर उस जगह पर अच्छे मुहूर्त में वही लगा दिया, जहॉ आज यह विशाल, वट वृक्ष बनकर खड़ा है। बिरवे को स्थापित करने के लिए नब्बे–वर्षीय पं० तर्क पंचानन को खटोले पर लाया गया था। उन्होंने विधिवत् पूजन करके उस बिरवे की स्थापना की थी। बिरवे की स्थापना खुले स्थान पर रजबाँध के पास की गई थी। बिरवे के चारो ओर सुरक्षा के लिए बॉसों के फल्ले का बाड़ बनाया गया था। वह रास्ता जिसके पास बट दादा रोपे गए थे, काफी लम्बा चौडा था। यह लम्बा–चौड़ा रास्ता राजा की सवारी के लिए कभी बनाया गया था, इसलिए इसका नाम पड़ गया रजबाँध।

वृद्ध–वृक्ष मानव रूप में रूपउली के अतीत को एक–एक करके उजागर करते है– टी० वी० सीरियल की तरह उनकी कहानी एक–एक घटनाक्रम से बताते है। किस प्रकार उनकी प्रौढ़ता प्राप्त हुई। अल्हड़ चरवाहिनों द्वारा उसके पत्ते सहलाए जाते, तो मन में असीम आन्तरिक सुख की सिहरने होती। फिर जैकिसुन से उसके परिवार की विशेषताओं को बताते है–सेरस परदादा शिवजी का भारी भक्त था। वह हर सोमवार को यहाँ से चलकर उस मन्दिर पर पहुँचता .....सुना है, छब्बीस वर्ष की आयु के पश्चात् उसने यह संकल्प लिया था और जीवन पर्यन्त इस पर डटा रहा...।[1] फिर कहते है कि "बहुत दिनों से बरगद का एक बिरवा खोज रहा था। मुझ पर उसकी दृष्टि पड़ी.........[2] बटदादा ने लोक गीतों की मधुरता का भी बखान किया जो

[1] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ पृष्ठ–२६
[2] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ पृष्ठ–२७

कभी वे सुने थे। साथ ही वह और बहुत सी बातों का वर्णन किया जो कभी वह सुना था। वे बाते जिसमें तख्तपोश पर बैठकर रंडी नाचती थी–यथा दृष्टव्य है– "अगले बैशाख में राजा के मझले कुमार की शादी हुई। शुक्लपक्ष की दशमी थी। बारात इसी रास्त से गुजरी थी। नौकर–चाकर मिलाकर सौ आदमी रहे होंगे। कन्धों पर बाँस रखकर सोलह बेगार भारी–सा एक तख्तपोश ढोये जा रहे थे, उस पार दरी और जाजिम बिछी थी। मय साज–वाज के एक रंडी उस तख्तपोश पर नाच रही थी– तबला–डुग्गी, सारंगी, मजीरा सब साथ दे रहे थे।.. वैसा अद्‌भुत दुश्य मैंने फिर कभी नही देखा बेटा न, कभी नही![१]

फिर १८६० ई० के अकाल की चर्चा करते है जब विहार में मैदानों में लाश पडी रहती थी,' लेकिन यह अकाल थोड़ी दूर में सीमित नही था। अपने इस देश का समूचा पूर्वी हिस्सा भुखमरी की चपेट में आ गया था। हजारों परिवार बरबाद हो गये और लाखों की जान चली गई...लाशों का बुरा हाल था, जब तक लोगों में ताकत थी और काल जब तक सुलभ थे, तब तक मुर्दे जलाये जाते रहे। बाद में नन्हे बच्चों की लाशों की तरह सयानो की भी लाशे मैदानों में गाड़ दी जाती थी। आगे चलकर यह भी असम्भव हो, गया तो मुर्दो को यो ही मैदान के हवाले करने लगे... ।"[२]

अपने हित में सरकार का रेल चलाना, सन् १६३० का नमक आन्दोलन तथा गोल–मेज सम्मेलन, जैकिसुन के बाप की मृत्यु चम्पान, चौरी–चौरा आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन तथा खेती–बारी आदि। बट वृक्ष सन् १६४२ के आंदोलन के आते–आते चुप हो गये और जैकिसुन को आश्वस्त कर गये कि विजय गरीब के तबके लोगो की होगी।

गाँव की पोखर पर जैनारायन कब्जा जमाना चाहते थे। दयानाथ गरीबो का हम दर्द था। उसने इसका विरोध किया, गाँव वाले भी उसका साथ दिये। फिर

---

[1] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ पृष्ठ–४६।
[2] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ पृष्ठ–६२।

दयानाथ को बौडम चमार की हत्या करवाकर जै नारायण अन्दर करवा देता है। दयानाथ और हाजी करीम बख्श ग्राम कमेटी के अधिकारी बने। ये नौजवान चन्दा लगाकर संगठन को मजबूत करने लगे। पुरानी पोखर वाली जमीन का मुकदमा शुरू हो गया। गाँव में नयी चेतना के बीज अंकुरित हो चुके थे। अब वे प्रौढ़ता की ओर उन्मुख थे। इसी समय एक रात वटदादा फिर जैकिसुन के सामने प्रकट हुए। उन्होंने जैकिसुन को आशीर्वाद दिया और यह भी बताया कि वे स्वेच्छा से मृत्यु का वरण करेगे। वे यह भी बताते है कि उनके बीज का नया बिरवा हाजी करीम बख्श की बाग में पीपल के कन्धे पर उठ आया है। और अब उनके गिरने के बाद वे युवक इस बिरवे को उसकी जगह पर लगा दे। वटदादा ने यह भी निर्देश दिया कि उनकी सूखी लकडियों से ईट पका लेगा। उन ईटों से ग्राम कमेटी का मकान तैयार कर लेना। युवको ने ऐसा ही किया। नया विरवा नई चेतना एवं जागृति का प्रतीक बनकर स्वाधीनता, शान्ति एवं प्रगति की प्रेरणा देने लगा।

इस प्रकार नागार्जुन ने 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास में एक नया कथा–प्रयोग किया है। जिसमें कई पीढ़ियों का ऐतिहासिक दस्तावेज प्रस्तुत है। 'बरगद बाबा' उपन्यास का प्रमुख पात्र है। अन्य पात्रों में जैकिसुन, जीवनाथ, दयानाथ, उग्रमोहनदास एम०एल०ए०, जै नरायन, दुनाईपाठक, श्यामसुन्दर दास, एडवोकेट, दारोगा रामफल सिंह इत्यादि है। जै नारायन, टुनाई पाठक, नीलाम्बर जमींदार दास जी आदि शोषक और ग्राम–विरोधी पात्र के रूप में चित्रित किये गये है। टुनाई और जै नरायन लालची किसान है। बरगद बाबा उपग्रह की तरह १०० वर्ष पहले तक की जानकारी रखता है। उसे सारी बात ज्ञात हैं। वह क्या नही जानता। वह ग्राम की छोटी सी वस्तु से लेकर देश की विशाल आबादी, भूमि व समाज पर नजर रखता है।

दुखमोचन

यह उपन्यास ग्राम सेवा की भावना से युक्त है। 'दुखमोचन' ही इसका प्रधान

'दुखमोचन' का आसिन के जल सा उज्जवल व्यक्तित्व राम सागर की मॉ के निधन पर प्रथम बार प्रकाश में आता है। रात का समय और वह भी बरसात की रात, दुखमोचन थके मादे सोये है, पर मट्टू के आने पर अपने भाई सुखदेव को शव दाह–संस्कार में नही जाने देते बल्कि स्वयं जाकर सम्मिलित होते है। शव दाहसंस्कार के लिए किसी की सहायता की अपेक्षा लिए बिना तख्ते के लिए रखी हुई अपनी लकड़ी दालान से निकलवा देते है।

गाँव में अकाल के समय सरकार की तरफ से कई सौ मन गेहूँ लोगों में वितरित करने के लिए आये, दुखमोचन ने अपने मित्रो की सहायता से उसको वितरित किया। उसे लालच देने के लिए नित्यानन्द ओर टेकनाथ ने अपने लिए कुछ मन हथिया लेने और उसे बेच देने के लिए कहा था। वह ईमानदारी से अपना कार्य करता रहा। गॉव की राजनीति में अध्यापक और सम्पन्न व्यक्तियों का किस तरह से गठबंधन होता है, यह बाबू नित्यानन्द तथा मास्टर टेकनाथ के दृष्टान्तों से स्पष्ट हो जाता है। गाँव की लडकी माया ब्राह्मण परिवार की विधवा लडकी का उद्धार भी दुखमोचन द्वारा ही होता है। गाँव का भूमिहार कपिल जो माया से विवाह करना चाहता था, माया भी राजी थी परन्तु, अन्तर्जातीय विवाह की स्थिति आड़े आ रहा था, लेकिन दुखमोचन ने यह भी कार्य संभव करा दिया।

उसकी लोकप्रियता मास्टर टेकनाथ तथा नित्याबाबू को खल रही थी, परन्तु कोई चारा नही था। और दुखमोचन थे कि शत्रुओं के प्रति भी सद्भाव रखते थे। यही दुखमोचन थे जिसके सामने आग लगने पर नित्या बाबू घिघिया रहे थे। और कागजों की सन्दूक निकलवाने के लिए प्रार्थना कर रहे थे। जिस पं० ललित नारायण ने उनके सिर पर लाठी मारी थी, उसी को दुखमोचन ने टेकनाथ को गोहत्या के निवारणार्थ, सत्यानारायण की कथा बाँचने के लिए नियुक्त किया था और उनका सम्मान के साथ धनोर्पाजन की भी व्यवस्था की।

गॉव में आग लगी तो दुखमोचन ने चोटी एड़ी का पसीना एक करके सबके जान माल की रक्षा की थी। इतना ही नही बस्ती का पुर्ननिर्माण भी आधुनिक तरीके से कराया। कम से कम एक कमरा खपरैलों का बनवाया, ताकि आग लगने पर जरूरी चीजों की रक्षा हो सके। गाँव में उन्होंने सडक तथा नालियाँ बनवाने के काम मे श्रमदान का आयोजन किया था। सरकारी सहायता भी जहाँ जरूरी हुआ, उन्होंने अवश्य ली। बची हुई फूसो को एक बडे चौपाल बनाने के काम में लाने का निर्णय लिया ताकि चमारों की बस्ती में किसी रैदासी भगत के आने पर भजन–कीर्तन के लिए बड़ी जगह मयस्कर हो सके। अंत में सरकारी अधिकारी तथा विधान सभा सदस्यों के बीच ध्वजोत्तोलन का कार्य गॉव के एक ब्योह साधारण व्यक्ति द्वारा सम्पन्न किया गया। इस प्रकार दुखमोचन ने गाँव की जिन्दगी को नए सिरे से प्रगति एवं उत्कर्ष के नए आयाम प्रदान किया।

उपन्यास में दुखमोचन प्रमुख पात्र हैं उसके साथ ही वेणीमाधव, जयमाधव, कपिल, रामसागर, मधु–कांत, सुखदेव, लीलाधर, टेकनाथ नित्याबाबू, मुंशी पुलकित दास सरीखे अन्य पात्र भी है। नारी पात्रों में शशिकला, छोटी बहू, चमकी, माया, अर्पण आदि है जो अपने चरित्रों के द्वारा, कार्य–कलाप, वार्तालाप के द्वारा दुखमोचन को सफल बनाने की भरपूर चेष्टा की है। प्रधान नायक दुखमोचन का चरित्र गुणो की खान है।

दुखमोचन का जीवन समाज–सेवा की बेजोड़ मिसाल है। वह निःस्वार्थ भावना के समाज–सेवा के लिए काम करता है। वह रूढ़िवादिता का हर जगह खण्डन करता है। उसके हृदय में अपने विरोधियों के लिए भी अच्छा स्थान है। आदर्श पात्र होते हुए भी वह कही–कही उसका चरित्र मानवीय कमजोरियो से ग्रस्त दिखाई देता हैं। परंतु इस उपन्यास में विरोधी पात्रों की अशक्तता देख उन पर रहम ही आता हैं। वे नाम मात्र के ही विरोधी हैं उनके विरोधी की पंगुता उनकी व्यर्थता सिद्ध करती है। उपन्यास के समापन तक सारे के सारे पात्र दुखमोचन के सामने आत्मसमर्पण करते

दिखाई पडते है। नित्या बाबू फूट–फूट कर रोते है, टेकनाथ भी अपने कष्टमोचन के लिए दुखमोचन की गुहार लगाता है। इस प्रकार दुखमोचन को मारने वाले ललित पंडित तो उसे आम काट–काट कर खिलाने लगते है। और इनका हृदय परिवर्तन आग लगने की घटना से दिखाया गया है।

बरूण के बेटे

यह समाजवादी यथार्थवादी धारा से युक्त एक लघु उपन्यास है। इस उपन्यास में नागार्जुन ने 'मछुओं के संघर्षपूर्ण जीवन' की कहानी को व्यक्त किया है।

हिन्दी में मछुओ के जीवन से संबंधित उपन्यास आंशिक ही है। नागार्जुन ने इस उपन्यास में मछुओं के यथार्थ जीवन का चित्रण किया है। इसमें छोटी–छोटी घटनाओं का समावेश है। यथा– बाढ–पीड़ितों द्वारा मालगाड़ी के डिब्बे खाली न करने से उत्पन्न रेलवे अधिकारियों से संघर्ष, मंगल–मधुरी प्रणयदृश्य, माधुरी का ससुराल जाना, खुन–खुन का शराब पीना, दरभंगा जाकर मछली बेंचना, मगर मच्छ का शिकार करना, मोहनमांझी और मधुरी द्वारा बाढ़ पीड़ितों के लिए सहायता शिविर चलाना इत्यादि। कथानक की घटनाओं को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। मछुओं के निम्नस्तरीय जीवन और उनमें उभरती हुई चेतना को ही कथानक का रूप दिया गया है। परन्तु कथानक और पात्रों के चरित्र विकास में तालमेल नही बैठ पाया है।

'बरूण के बेटे' में उपन्यासकार ने विरोधी तो रखे है, पर उनका सक्रिय विरोध कही नहीं दिखाई देता है। जन शक्ति को अधिक शक्तिशाली चित्रित करने के आग्रह से लेखक ने ऐसा किया है। जमींदार घर बैठे–बैठे ही विरोध करते है। उनमे विरोध और संघर्ष का संकेत दारोगा, आंचलाधिकारी और मजिस्ट्रेट के आने से ज्ञात होता है। वस्तुतः जमींदारो के संघर्ष को इन्ही अधिकारियों ने चलाया है। घटनाएं और पात्र आरोपित प्रतीत होते है। कांग्रेसियों पर छींटाकशी करते हुए उन्हें भ्रष्टाचारी बताने का

प्रयास किया गया है। साम्यवाद के प्रति प्रबल आग्रह, विरोधियों को कमजोर बताने और गरीब वर्ग में एकदम राजनीतिक चेतना का सूत्रापात कर देने के कथानक विश्रृंखलित हो गया है। कथानक के गठन में लेखक द्वारा यह मानकर चलना कि 'कांग्रेसी अन्याय और भ्रष्टाचार के पुतले हैं', और गरीब मजदूरों की भलाई 'हंसिया हथौडा' वाले ही कर सकते है—कुछ अतिवादी और राजनैतिक मताग्रह की गिरफ्त से ग्रस्त है इसीलिए उखड़ा उखड़ा सा लगता है।

उपन्यास का आरम्भ उस इलाके के जलाशय गढ़पोखर की महत्वपूर्ण दृश्यावली के द्वारा हुआ है। वही गढपोखर जो कालांतर में गरोखर कहा जाने लगा। उसी जलाशय से प्राप्त मछलियों पर आधारित अंचल के लोकजीवन की झांकी, उपन्यास की कथावस्तु में स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत हुई है। मात्र गढ़पोखर ही मछुओं के जीवन निर्वाह का साधन है। परन्तु गढ़पोखर पर जमींदारो का अधिकार है। इसीलिए उसके भिंडो पर लगे बागो के वृक्षों का अधिकांश में सफाया कर दिया जाता है।

उपन्यास के पात्र मूलतः अंचल के लोक वातावरण के प्रतिनिधि पात्र है उनका रहन—सहन, खान—पान, वेशभूषा, विचार व्यवहार, आदतों आदि के चित्रण द्वारा लेखक ने आंचलिक लोकजीवन की सजीव अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। उपन्यास के पात्र भोला सहनी की १४ और १० वर्ष की लड़कियों के क्रमशः जलेबी और सिलेबी नामकरण द्वारा लेखक ने आंचलिक यथार्थ को प्रभावी ढंग से निरूपित किया है। उपन्यास में नारी—पात्र माधुरी के चरित्र का अंकन सजीव और स्वाभाविक है। उसमें मानवता की भावना है। यद्यपि मछेरो में ताड़ी जैसी वस्तुओं के सेवन की प्रवृत्ति प्रथम है। मधुरी का ससुर भी ताड़ी पीता है, नशे में धुत्त रहता है। खुराफात करता है। मधुरी को इससे आत्मकष्ट होता है। तंग आकर वह भाग पड़ती है।

खुरखुन निम्न वर्गीय मछुआ परिवार का मुखिया है। वह कठोर परिश्रमी और साहसी है। उसके साहस, धैर्य एवं शीघ्र निर्णय की क्षमता से पाठक तब चमत्कृत होते

है जब वह पानी में घुसकर एक खतरनाक मगर को जीवित काबू में करके बाहर से ले आता है। उसे गरीबों और अपने जैसे निम्नवर्गीय लोगो से बड़ी हमदर्दी है। यह भावुक हृदय भी है। पुत्री विछोह के दुःख को वह ताडी पीकर भुलाने का प्रयास करता है। मोहन माँझी पर उसे अपार श्रद्धा है। मोहन माझी एक जागरूक कार्यकर्त्ता है। उसका सादा लिबास उसके सच्चे जनसेवक का बाना है। बाढ–पीडितों को मालगाड़ी के डिब्बे में सात दिन आश्रय मिले इसके लिए उसकी योजना धरना देना, पिकेटिंग करना, फिर सामान की व्यवस्था करने में उसकी तत्परता और सूझ–बूझ तथा रामदहिन और खुरखुन को मोर्चे पर डटे रखने में उसकी कार्य–विभाजन की कुशलता का परिचय मिलता है। इसी सब का परिणाम था कि जीत जनता की हुई।

कहने का आशय यह है कि इस 'बरूण' के बेटे' उपन्यास में समाज वादी यथार्थवाद के माध्यम से निम्नवर्गीय जनता के संघर्ष को उभारा गया है। देश का कल्याण वर्ग विहीन समाज की रचना करने से ही होगा। इसके लिए गरीब वर्ग को विभाजित होकर नही, झंडे के नीचे संगठित होकर उच्च्य वर्ग से लोहा लेना होगा। वह सच है कि उच्चवर्ग शक्तिशाली है, धन और शासकीय अधिकारियों का समर्थन उसे प्राप्त है। पर किसान सभा जैसी शक्तिशाली संस्था के पास संगठित होकर यदि संघर्ष किया जाय तो जीत जनता की होगी।

इस प्रकार निम्नवर्गीय जनता की पीड़ा, अपने अधिकारों के प्रति उसकी सतर्कता और उसका ताकतवर शक्तियों के सम्मुख न झुकना उपन्यास का कथानक है।

नई पौध

नागार्जुन द्वारा लिखी गयी 'नई पौध' मिथिला के ग्रामीण जीवन की आंचलिक भूमिका पर आधारित एक आंचलिक उपन्यास है। इसका रचनाकाल १९५७ ई० है। कालक्रम की दृष्टि से यह छठा उपन्यास है। लेखक नें इसमें 'अनमेल–विवाह की

समस्या' को उठाकर उसका समाधान समाज की नई पौध–युवक वर्ग के माध्यम से दिलाया है।

'नई पौध' वस्तुतः नई पीढ़ी के लिए एक सशक्त प्रतीक है। लेखक ने इसे आंचलिक होकर जीवन के यथार्थ चित्रंण के द्वारा स्वातंत्रयोत्तर भारत में व्याप्त प्रगतिशीलता के नयी लहर के अर्थ और औचित्य को चित्रित किया है। आंचलिक रंगों के चित्रण और कलात्मक शैली ने इस उपन्यास को सजीव बना दिया है। यही वह उपन्यास है जो हिन्दी में प्रकाशित होने से पूर्व मैथिली में 'नवतुरिया' के नाम से प्रकाशित हुआ था।

कथानक में उपन्यासकार नागार्जुन ने समस्या अवश्य ही पुरानी उठायी है पर तरूण शक्ति के प्रति आश्वस्त रहना उनका एक दम नया विचार है। नये खून को प्रोत्साहन देने की चर्चा आजकल बडी सुनायी देती है। वही बात यहाँ रचनात्मक रूप ले रही है। जिस प्रकार से नवयुवको की पीढी ग्राम्यांचल में नये जीवन के विकास की भूमिका को व्यवहारिक रूप में सार्थकता देने के लिए लोगों का नेतृत्व करती है, अपनी शक्ति कार्यक्षमता और समर्थता को प्रकट करती है, परिवर्तन की नयी दिशा की ओर लोगो को आगे बढ़ाने का प्रयास करती है। उसी प्रकार देश के समूचे वातावरण में भी विकास और नवीन चेतना के विकास के लिए नवयुवकों का नेतृत्व आवश्यक है। इन नवयुवकों के द्वारा ही पुरानी मान्यताओं में परिवर्तन संभव है। एवं नयी मान्यताओं एवं स्वस्थ परम्पराओं की स्थापना भी की जा सकती है।

चतुरा चौधरी के बिन ब्याहे लौट जाने के बाद पृष्ठ ६२ से ११६ तक लेखक ने कही सहुआइन–अमृत की कथा, कहीं टुनाई पर खेती का भार आ जाने की चर्चा, कही मुंशी दुर्गानन्दन बाबू के अदालती दाँव–पेंच का जिक्र किया है। पृष्ठ १०६ से बिन्देश्वरी के विवाह की मूल समस्या से भावी घटनाओं का सूत्र फिर जोड़ दिया गया है। वाचस्पति का परिचय और दिगम्बर की उससे मित्रता बताये जाते समय की पाठक को

पृष्ठ ११५ से वाचस्पति के दूल्हा बनने का अनुमान हो जाता है। लेखक ने सहुआइन–अमृत की कथा परिच्छेद ११ में आरम्भ कर यों ही छोड़ दी है। उपन्यास की इसकी कोई जरूरत नही लगती।

उपन्यास में अंचल तथा उसके लोक वातावरण का चित्रण स्वाभाविकता की भाव भूमि पर स्थित है। उपन्यास के पात्र अंचल के लोक जीवन का स्वाभाविक रूप में प्रतिनिधित्व करते दिखाई पडते है। "इस उपन्यास के पात्र भी प्रतिनिधिक है। उनकी बोली बानी उनकी वेशभूषा, उनकी सौराठ मेला जैसी परम्पराओं, उनकी धन लोलुपता आदि का वर्णन लोकजीवन को मुखर एवं सजीव बना देती है। नवीन मानवीय मूल्यों पर आधारित नवीन सामाजिक चेतना को आवाज देने का सफल प्रयत्न प्रतिष्ठा आदि के चित्रण में आंचलिक वातावरण को निर्मित होने में सहायता पहुंचती है।"[1] अंचल के लोकजीवन को रूपायित करने के लिए लेखन ने पात्रो के संवादों में मिथिला की स्वाभाविक बोली बानी के शब्दों का अवसर के अनुसार पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया है।

उपन्यास में मुख्य पात्र विश्वेश्वरी है, इसी के विवाह की समस्या है। वह अत्यन्त सुशील और रूपवती बाला है। उसकी उम्र १५ साल है। दूसरा पात्र दिगम्बर मल्लिक हैं, जो बामपार्टी का नेता है गणित में कमजोर होने से वह ६वीं कक्षा तक ही पढ़ा है। इसके सहपाठी वाचस्पति और दिगम्बर है। खोडा पंडित एक अन्य प्रमुख पात्र है। यह धार्मिक पंडित जो अपनी पुत्रियों और नतिनी के यौवन का मूल्य लेने में भी नही चूकता है। वाचस्पति सोशलिस्ट है। समाजवाद में उसकी गहरी आस्था है। दुर्गानंदन अपने मुंशीपने में चतुरता के कारण प्रसिद्ध है। कही–कही पात्रों को अन्तर्द्वन्द्व से भी ग्रस्त दिखाया गया है। घटकराज और खोखा पंडित तारसराय स्टेशन आते समय बामपार्टी द्वारा इनके इरादे मिटा देने से उत्पन्न स्थिति पर चिन्तित है।

---

[1] डा० कडवे– हिन्दी उपन्यासो मे आंचलिकता की प्रवृत्ति

मुखिया का अन्तर्द्वन्द्व लेखक ने बड़ी सफलता से चित्रित किया है। बिसेसरी का विवाह सोंचते–सोचते उसे अपनी बेटी कान्ता का चेहरा उभर आता है। और मुखिया भावों के भवर में फँसा हुआ दिखाई देता है।

कुम्भीपाक

साहित्य के क्षेत्र में 'कुम्भीपाक' उपन्यास १९६० में प्रकाशित हुआ था। बाबा नागार्जुन इस उपन्यास में रूढ़िग्रस्त बाह्यआडम्बर और चारित्रिक भ्रष्टता के कारणो को दर्शाते है। हिन्दुओं के माने हुए नर्को में से एक कुम्भीपाक भी है, जहाँ पापी मृत्यु के बाद जाता है। समाज के भ्रष्ट भेडियों ने अपने मनोरंजन के लिए जिन युवतियों को जीते–जी कुम्भीपाक में डाल रखा है उसी की यहॉ चर्चा है। इसे पहले 'चम्पा' के नाम से जाना जाता था, क्योंकि इसी नाम से यह डायमण्ड पाकेट्स बुक ने छापा था।

कुम्भीपाक में मानव–जीवन की ऐसी समस्या को उठाया गया है जिसे समाज मान्यता नही देता है। यदि विधवा निराश्रित महिलाओं का विवाह हो जाय तो वह कुम्भीपाक में न घसीटी जा सकें। समाज का वास्तविक चित्र 'कुम्भीपाक' में विशाल झलक लेता दिखाई पड़ता है। इसमें चम्पा की जीवन–परिवर्तन की घटना, प्रकाशकों के शोषण आदि की कई घटनाओं के सगुम्फन में लेखक ने बड़ी कुशलता का परिचय दिया है। घटनाओं की जानकारी क्रमशः दी गयी है। चम्पा का रहस्य, उसके मन में उभरते विचारो से, कथा–यात्रा के मध्य से व्यक्त हुआ है। रोचकता अंत तक बनी रहती है। महिमा भाभी की घटना, दिवाकर शास्त्राी से सम्बन्धित बातें, मुख्य घटना से सम्बन्ध नही रखती, किन्तु समाज का यथार्थ रूप हमारे सामने रखने के लिए उन्हें लाया गया है। विधवाओं की स्थिति व दीनता पर समाज का ध्यान क्यों नही जाता है? यदि विधवाओं का विवाह समाज स्वीकारने लगे तो कितनो का भला होगा। विधवा चम्पा से भी उसके विधुर जीजा यदि विवाह कर लेते तो उसे भटकना नहीं पड़ता।

भुवन का फिर क्या हुआ? क्या वह सदानन्द के यहॉ ही अकर्मण्य बनी बैठी रही? कुछ भी लेखक ने स्पष्ट नही किया है। नीरू ने अपने परिवार की बात करते हुए, 'अच्छी लिखावट वाले नागेसर' का जिक्र किया था; "पढ़ा लिखा है, लेकिन गाँव नहीं छूटता है उससे पार्टी का काम करता है, घर में एक पैसा भी नहीं दिया है आज तक! आदमी लेकिन हीरा है। इन्दिरा। मैं तुझे उससे जरूर मिलाऊँगी–जरूर।" लेकिन नागार्जुन ने निर्मला द्वारा भुवन–नागेसर की भेंट नही करवाई है। वह यह प्रसंग लाकर उनका विवाह करा सकते थे, यह आकस्मिक भी नही लगता; क्योंकि इसकी चर्चा पहले ही कर चुके हैं, लेकिन नागार्जुन नीरू के वादे को भूल गये।

'कुम्भीपाक' में बाबा–नागार्जुन ने जो पात्र लिए है, उनका चयन उन्होंने अपने जाने–बूझे समाज से किया है, पाठक उनसे बड़ी जल्दी परिचित हो जाते है। तिलकधारी दास जैसे भ्रष्ट और स्वार्थी प्रकाशक, जानकी बाबू जैसे मंत्री महोदय, जो साहित्यकारों के निबंधो को अपने नाम से प्रकाशित कराते है, महिम जैसा शराबी, नीरू जैसी चुलबुली नारी, चम्पा और शर्मा जैसी स्त्रियों के यौवन के सौदागर, राय साहब जैसे समाज सुधारक–सब 'कुम्भीपाक' में देखे जा सकते है। पात्रों को समाज के वास्तविक धरातल में लेखन ने उठाया है।

इस उपन्यास में नागार्जुन मुख्य नायक और नायिका का दर्जा किसी को नही देते है। नायिका की प्रतियोगिता में यदि भुवन और चम्पा दोनो खड़ी होगी तो दोनो को बराबर मत मिलेगे। दोनो का जीवन इस उपन्यास में सुधरा है। दोनो कुम्भीपाक से निकल गयी है।

भुवन का वास्तविक नाम इन्दिरा है। सम्पन्न परिवार में जनमी इस बालिका का विवाह पन्द्रह वर्ष की आयु में हो गया था। पति की अगले ही वर्ष मृत्यु नें उसे कुम्भीपाक में धकेल दिया। शर्माजी और चम्पा के साथ वह मुँशी मनबोधन लाल के मकान में रहने लगी। वह बड़ी सरल हृदया है। निर्मला का प्यार पाकर बुआ के द्वारा

अपने अनुचित उपयोग की बात वह बता देती है। नीरू पर वह पूरा भरोसा रखती है, तभी बाथरूम में नहाते समय वह अपना गला कटने का संकेत नीरू को देती है।

नीरू के द्वारा कुम्भीपाक से मुक्ति पा वह काशी चली जाती है। नीरू के भाई सदानन्द और भाभी रंजना के परिवार में वह घुल–मिल जाती है। बैडमिन्टन खेलना और तैरना भी अब उसने सीख लिया है। समाज में सम्मान पाने वाली राह पर अब वह चल निकली है। उसके चरित्र का और विकास किया जा सकता था। उसका चरित्र अधूरा लगता है। इन पात्रों को साहित्यिक सिद्ध करने के लिए लेख–लिखकर देते है। आज साहित्यकारों का एक वर्ग आर्थिक अभाव का शिकार होकर अपने स्तर से गिरने के लिए किस प्रकार विवश है, इसका चित्रण इस पात्र के द्वारा लेखक ने किया है। प्रकाशक भी लेखक की विवशता का अनुचित लाभ उठाते हैं।

एक अन्य पात्र तिलक धारीदास बड़ा छँटा किस्म का व्यक्ति है। अपने तिकडमों से वह हर काम करवा लेता है। मंत्रियों और अधिकारियों तक हर तरफ उसकी पहुँच है। पुस्तकें चलवाना, ग्रामोंद्योगी माल के आर्डर से लेना और घटिया माल सप्लाई कर देना उसके बायें हाथ के खेल है। अनैतिकता की पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ वह धूर्त लडकियों को सप्लाई, अपनी स्वार्थ–सिद्ध के लिए भी करता है। जबकि महिम शराबी और क्रोधी चित्रकार है। उम्मी की माँ विवश नारी है। मुंशीमनबोध लाल पैसे को प्रभु समझने वाला धनप्रेमी है। समय पर किराया देने वाला उसकी नजरों में शरीफ और एडवांस देने वाला मसीहा है। उसका नागार्जुन ने परिचय दिया है; "मकान मालिक किराया दोहन कला का आचार्य तो था ही, अपने को एक्जीक्यूटिव इंजीनियरों का नाना समझता था।"[1]

पात्रों के चरित्र–चित्रण में लेखन ने पर्याप्त कुशलता का परिचय दिया है। पात्रों के चरित्र परिवर्तन शील है। उम्मी, माँ द्वारा अपने सुहाग–अपहरण के अपराध को भूल

---

[1] नागार्जुन– कुम्भीपाक, पृ० ६।

कर उसे ले जाती है। महिम स्वास्थ्य लाभ हेतु गाँव चला जाता है। चम्पा बदल जाती है। भुवन वचा ली जाती है। इस प्रकार पात्रों का चरित्र प्रगतिशील है। भ्रष्ट लोगो का चरित्र लेखक ने यथार्थता से चित्रित किया है। ऐसे पात्रों की चपलता को नागार्जुन के उपन्यासकार ने पूरी तरह पकड़ा है। "ऐसे लोगो का भोंडा चित्रण तो होना ही चाहिए था, पर साथ ही नागार्जुन ने कांग्रेसी मंत्रियों को भी बहुत काले रंग में चित्रित किया है, मंत्री के नाम से जो लेख अखबारों में छपते हैं, उन्हें 'अधभूंखा' लेखक लिखता है और मंत्री जी उन्हे पढ़कर शीर्षक के नीचे अपना नाम बैठा देते हैं।"[२]

पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व नागार्जुन ने चित्रित किया है। उम्मी की माँ एवं चम्पा के पूर्ण जीवन की घटनाएँ उसके मन में उभरी स्मृतियों से ही हमें ज्ञात होगी है। रंजना स्वप्न में एक प्यासी हरिणी को शिकारियों से घबराया हुआ देखती है। भागकर वह हरिणी उसके पास आती है। इस हरिण का चेहरा भुवन का हो जाता है। इस प्रकार अन्तर्द्वन्द्व का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। मन की गहरी घाटियों में लेखक की पहुँच का ज्ञान झलकता है।

नागार्जुन का ध्येय नारियों में आत्मविश्वास जागृत करना रहा है। राय साहब के कथन से यही बात स्पष्ट हो रही है, "हम बड़ी जात वालों ने महिलाओं को पंगु बना रखा है। जीवन का सारा रस निचोड़ कर सीठी बनाकर छोड़ दिया है। श्रम, प्रज्ञा, सहयोग, विवेक और सुरूचि सभी आवश्यक है– चम्पा! जीवन में इन पाँचो का समन्वय करना होगा। पुरूषों की ही बपौती नही है स्त्रियों का ही साझा है इनमें। इस प्रकार नारी चेतना का प्रमुख उद्घोषक बनकर कुम्भीपाक हमारे सामने आता है।"[१]

इसके अलावा मंत्रा–तंत्रा एवं अंधविश्वासों का खण्डन, भ्रष्टाचार का चित्राण, अनैतिकता का पर्दाफाश, देश के नेताओं का विदेशों में हाथ फैलाना, अेवसरवादी

---

[2] मम्मथ नाथ गुप्त, सरिता, जनवरी १९६१ ई० का अंक।
[1] डा० प्रकाश चन्द्र भट्ट– नागार्जन जीवन और साहित्य

राजनीति की स्वार्थपरता आदि विभिन्न विषयों पर चुटकी लेते हुए उनका यथार्थ चित्राण लेखक ने किया है। और यह उसका लक्ष्य भी रहा।

हीरक जयन्ती

'हीरक जयन्ती' उपन्यास नागार्जुन की सशक्त व्यंग्य कथाकृति है। इसमें भ्रष्ट नेतृत्व पर चुटीले व्यंग्य और हास्य का छिड़काव किया गया है। यह सन् १९६२ में प्रकाशित हुआ था।

इस उपन्यास में एक भ्रष्ट कांग्रेसी मंत्राी नरपत नारायण सिंह 'बाबू जी' की हीरक जयन्ती का आयोजन उनके द्वारा लाभान्वित भक्तों द्वारा किया जाता है। इस समारोह की योजना चाटुकार कवि मृगांक के मस्तिष्क की उपज है, क्योंकि समर्पित किये जाने वाले अभिनन्दन ग्रन्थ की तैयार में उनके लिए ६००० रूपये कूट लेने का सुअवसर था। यह योजना बाबूजी के सभी प्रशंसको द्वारा अनुमोदित तो की ही जाती है, पर बाबूजी की अनन्य हितचिन्तिका मंजुमुखी देवी तो इसे सुन खुशी के मारे दुहरी हो जाती है।

पन्द्रह सदस्यों की "श्रीनरपत हीरक जयन्ती समारोह समिति" गठित की जाती है। अर्थ उपसमिति डेढ़ लाख रूपया कलकत्ता और आस–पास के खान क्षेत्राों से वसूल करती है। समारोह की तारीख तय कर ली जाती है, अध्यक्षता के लिए केन्द्रीय मंत्राी घासीराम जी पधारते है। बाबूजी को अभिनन्दन ग्रंथ समर्पित करने के बाद वे उनकी जन–सेवा और त्याग का उल्लेख अपने भाषण में करते है। बाबूजी कृतज्ञता ज्ञापन करते है, और राजा रेवती रंजन प्रसाद सिंह अपना फुलझड़ी भाषण देते है। कार्यक्रम के अंत में कवि–गोष्ठी के अतिरिक्त दो तरूणियों का नृत्य भी रखा जाता है। नृत्य की भाव–भंगिमा और षोडशियों के अंग–प्रत्यंगों का उठाव–कसाव देख केन्द्रीय मंत्राी घासीरामजी के नेत्रा न्योछावर हो जाते है।

डुमरिया के कुमार प्रद्युम्न नारायण सिंह द्वारा आयोजित प्रीतिभोज के बाद ही फोन से ज्ञात होता है कि बाबूजी के सुपुत्रा नगेन्द्र को अवैध रूप से ट्रक में गॉजा भरकर लाने के अभियोग में पुलिस कस्टडी में रखा गया है किन्तु, एम०पी० श्री राय अपनी पूर्व अर्जित राजनीतिक कुशलता से नगेन्द्र को उसी समय छुड़वा लेते है। दूसरे ही दिन बाबू जी की पुत्राी मृदुला अपनी स्वर्गीया माँ के गहने और ५,००० रूपया लेकर अपने युवक प्रेमी के साथ बम्बई भाग जाती है। इस समाचार को दो पैसे वाला अखबार 'बिगुल' पिता की 'हीरक जयन्ती' और पुत्राी की 'ताम्र जयन्ती' शीर्षक से छापता है। यही इस कथानक का परिचय है।

'हीरक जयन्ती' में औपन्यासिक दृष्टि से कथानक–संगठन की अत्यल्पता दिखाई देती है। नरपति बाबू और समिति के सदस्यों की करतूते चित्रित करने का ढंग औपन्यासिक कम और नाटकीयता अधिक है। 'परिचय–पत्रिाका' खण्ड में अलग–अलग एक–एक पात्र की करतूतो का परिचय दिया गया है। 'पिछला दिन : पिछली रात' शीर्षक में इसी प्रकार सब पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व, अभिनयात्मक विधि से व्यक्त हुआ है। आठ बजे दिन वाला अध्याय तो बिल्कुल एकांकी नाटक बनकर रह गया है। इसीलिए हम कह सकते है कि कथानक के संगठन और विकास पर लेखक का ध्यान कम रहा है। उपन्यास में समारोह का आयोजन तो लेखक प्रस्तावना के बाद भी करा सकता था पर आरम्भ से १२२ पृष्ठों तक लेखक ने कांग्रेसी नेताओं एवं साहित्यकारों की यथार्थता पाठकों के सम्मुख रखी है। पात्रों द्वारा प्रतिद्वन्द्वी पात्र से चेतनाहीन स्थिति में किये गये वार्तालाप में और कहीं कही स्पष्ट कथोपकथनों में अभिनयात्मकता सहज ही देखी जा सकती है। अन्तर्द्वन्द्वो के इस बाहुल्य को देख यदि इसे अन्तर्द्वन्द्व प्रधान उपन्यास भी कहा जाय तो अनुचित नही होगा। इसमें मुख्य रूप से भ्रष्ट नेतृत्व की समस्या है, जिसे लेखक ने चित्रित किया है।

हास्य और व्यंग्य के द्वारा उपन्यास में रोचकता का अन्त तक निर्वाह किया जाता है। नगेन्द्र के गाँजे के व्यापार में पकड़े जाने और मृदुला के भाग जाने की घटना ने कौतूहल को अचानक बढा दिया है।

हम कह सकते है कि 'हीरक जयन्ती' का संक्षिप्त कथानक, रोचकता एवं कौतूहल का सफल सामंजस्य लिए हुए, जन सेवा की आड़ में किये जा रहे अवसरवादी नेताओं के भ्रष्ट साधनों का लेखा—जोखा है।

इस उपन्यास में नायक—नायिका का अभाव है। इसके पात्रों के दो वर्ग किये जा सकते है—पुरूष—पात्र और स्त्री—पात्र। पुरूष पात्रों में कवि मृगांक, प्रचण्ड, विशाख, लल्लन जी, राजारेवती रंजन प्रसाद सिंह, गोपी बल्लभ ठाकुर, महन्त सीता शरणदास, बाबू रामसागर राय एम० पी०, पं० शिवदयाल पाठक, रामप्यारे प्रसाद, धर्मराज सिंह, लच्छोमल, सेठ राम निरंजन अग्रवाल, मालमंत्राी नरपति नारायण सिंह, घासीराम जी आदि है। स्त्री—पात्रों में मंजुमुखी देवी, वन्दना, माधवी आदि है। अंधिकांश पात्रों का परिचय लेखक ने परिचय पत्रिका में दे दिया है। परिचय की एक—एक पंक्ति व्यंग्य और कही—कही हास्य से युक्त है।

उपन्यासकार ने सभी पात्रों का चरित्र—चित्रण यथार्थता से किया है। सारे पात्र अत्यन्त भ्रष्ट, आडम्बर प्रिय, अनैतिक और चरित्रहीन है। अवसरवाद ही इनकी राजनीति का मूलमंत्र है, स्वार्थ—साधना ही इनकी देश—सेवा है। ऊपरी दिखावा कर जनता में पवित्र बने रहना ही इनका ध्येय है। ये अवसरवादी राजनीतिज्ञ और साहित्यकार अपने समय का अधिक भाग मंसूबे बाँधने और कब कैसी चाल फेंकने में कितना लाभ हैं सोंचने में ही बिता देते है। तंन्द्रा में डूबा हुआ इनका मस्तिष्क मानसिक असंतोष को उभारकर बाहर ला देता है। बेचारों को नींद में भी तिकड़मबाजी के पैंतरे ही सूझा करते हैं। वस्तुतः वासना पूर्ति ही इनका चिन्तन हैं, गरीबो का शोषण ही इनका व्यसन है और खद्दर ही इनका वसन है।

समिति के सब पात्र अनैतिक कार्यों में लिप्त है। अवसरवादी राजनीति में उनकी गहरी श्रद्धा है, और इसी के कारण समय–समय पर इन सदस्यों को आर्थिक लाभ हुआ है। सब के कई–कई मकान, कारखाने और मोटरें है। विधायक बुझावन राम कूप–निर्माण के लिए प्राप्त धनाराशि डकार जाते हैं। राजा साहब को राजनीति में कूट–कौशल अधिक भाता है, पानी में डूबा जमींन में वे बिनोवा को दान करते है, वे रंगीन तबियत के व्यक्ति है। महन्त सीता शरण दास गुरू भाई को मिठाई खिलाकर बैकुण्ठ लोक पहुँचाने के बाद गद्दी पर रोते हुए बैठते है। किसानों और खेतिहरों के पक्ष में जो भी दो बात बोला कि महन्त जी ने उसकी मरम्मत करवायी। वे गॉजा नही पीते लेकिन उसकी गंध अप्रिय नही है।

नरपत नारायण सिंह मालमंत्री है। अव्वल दर्जे के भ्रष्ट, भ्रष्टाचार और मातहतों की रिश्वतखोरी को शह देने वाले बाबू जी तबियत के बड़े ही तरल भी है। अलबम देखते हुए उनके कृत्यों का हमें परिचय मिलता है। रानी भुवन मोहनी की मानसिक व्यथा आपने ऐसी दूर की कि, उसने कई बंगले आपके लिए बनवा दिये। बाढ़ पीड़ितों के लिए आयी आर्थिक सहायता में से यदि कुछ ले लिया जाय तो उसे आप अनुचित नही मानते। मंजुमुखी पर आपकी विशेष कृपा है। माधवी को तृतीय श्रेणी होते हुए भी आप उन्हें विभागाध्यक्ष बनवा ही देते हैं। अब आप उसे प्रिन्सिपल बनवाएंगें।

'हीरक जयन्ती' समारोह में आप भाषण देते है। भाषण में गाँधी जी के साथ अपने सम्पर्क का जिक्र करना नही भूलते। बाबूजी का सारा जीवन जन–धन का शोषण करते और ऊपर से मिठास युक्त मुस्कान' बिखेरते हुए बीता है। लेकिन भाषण में बहते हैः "शासन व सत्ता की जरा भी लालसा हमारे अन्दर नही, है। इस बात की लालसा जरूर है कि उपयोग कर सकें।" चित्र में योरोपियनों के बीच खादी के लिबास में अपने को देख वे कहते हैं!" ऐसे ही अवसरों पर राष्ट्रीय संस्कृति खराद पर चढ़ती है।" कथनी और करनी का अन्तर उनके अपने चरित्र में देखा जा सकता है।

उग्रतारा

'उग्रतारा' नागार्जुन का बेजोड़ उपन्यास है। इसका प्रकाशत का वर्ष सन् १९६३ ई० है। इस उपन्यास में एक विवश स्त्री की करूण गाथा चित्रित है। लेखक नें एक युवक द्वारा इसमें (उपन्यास में) सामाजिक क्रांति की प्रेरणा दी है।

इस उपन्यास मे एक सामाजिक समस्या को उठाया गया है। और इस समस्या का स्वस्थ एवे सात्त्विक समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। कथा की नायिका 'उगनी' है तथा नायक 'कामेश्वर'! नागार्जुन ने उगनी के जीवन के दिशा–परिवर्तन को ही चित्रित करने का प्रयास किया है। लेखक कथा में एक सीरियल की भाँति क्रमबद्धता रखा है, यह कथा चाहे उपन्यास का हो अथवा लेखक के अन्तर्मन का। उपन्यास पढकर ऐसा नही लगता कि पात्र किसी अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त नहीं है। संघर्ष उनके मन में चला ही करता है। कामेश्वर होने वाले पुत्र या पुत्री का नाम चयन करता है, उगनी को भी उसे पूरी तरह सींथ में सिन्दूर भर कर अपना लिया है।

उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द कहते है कि "उपन्यासों के लिए पुस्तकों से मसाला न लेकर जीवन ही से लेना चाहिए"। नागार्जुन ने इसका अक्षरशः पालन किया है। उनके 'उग्रतारा' का कथानक जीवन से ही जुड़ा है। समाज में बलात्कार और व्यभिचार की चर्चा आये दिनों सुनी जाती है। इसी प्रकार की घटना को लेखक ने मौलिक और आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है।

लेखक ने घटनाओं के पर्दे क्रम से उठाये है, उसने एक–एक जिज्ञासा की तृप्ति धीरे–धीरे की है। कामेश्वर और उगनी के पकड़े जाने, उन पर पाकिस्तान पहुँचने का आरोप लगाने, और उंगनी को भंग की बर्फी खिलाकर भभीखन सिंह का बलात्कार करने, आदि विवरण क्रमवार दिया है। साथ ही साथ तिवारी जी, उनकी पत्नी गीता आदि की जानकारी भी लेखक ने दी है। उपन्यास में प्रवाह सतत बना रहता है। जेल की घटनाएं, मठिया में कामेश्वर–उगनी–पुनर्मिलन और अन्य घटनाएँ सजीव बन पड़ी है।

उपन्यास की नायिका उग्रतारा है। सारी कथा इसी के आस–पास घूमती आती है। कामेश्वर उपन्यास का नायक है। इसके अतिरिक्त भभीखन सिंह, नर्मदेश्वर, भाभी, तिवारी, उनकी पत्नी गीता, उगनी की मॉ, गीता की नौ वर्षीया बहन आदि सहायक पात्र है।

उगनी जो उपन्यास की मुख्य पात्र है। वह कामेश्वर से बहुत प्यार करती है, और इसीलिए उसके साथ भाग जाती है। गिरफ्तारी और जेल से छूटने के बाद निराश्रित हो अधेड़ भभीखन सिंह से विवाह कर लेती है, पर हृदय समर्पण नही कर पाती।

प्रारम्भ से ही उसके मन में उभयतः पाश है। वह बड़ी भावुक है कामेश्वर को एक गिलास पानी तक न दे सकने और कमीज के बटन टूटने पर न लगा सकने की विवशता पर रो पड़ती है। वह पढ़ाई के महत्व को समझती है। वह गीता से कहती है: "तीसरी आंख होती है विद्या समझी" कामेश्वर के साथ दूसरी बार भी चले जाने पर उसे अनेक अन्तर्द्वन्दों से ग्रस्त दिखाया जाता है। वह भभीखन सिंह को पत्र लिखती है, जिसमें बडा करके उन्हें सौंप देने का आश्वासन देती है। इसमें सही ढंग से उसके द्वारा काम करने और निष्कपट रहने का गुण दिखाई देता है। वह बोलती कम है पर उसके हृदय में उठते विचारों के द्वारा ही उसका परिचय हमें मिलता है। भावुकता और दृढता का मिश्रण ही उसका स्वभाव है।

विशाल हृदयी कामेश्वर जो एक जमींदार का पुत्र है ने प्रेम का ऐसा अभूतपूर्व आदर्श हमारे सामने रखा है कि प्राचीन परम्पराओं के समर्थक तो उसे सर्वथा काल्पनिक पात्र ही मानने लगेंगे। उगनी से उसे सच्चा प्रेम है, तभी वह भभीखन सिंह द्वारा गर्भवती उगनी को फिर से अपना लेता है, वह सुलझे विचारो वाला है। उगनी जब सिपाही जी को पत्र लिखती है तो वह प्रसन्न होता है, और कोई दूसरा पति होता तो नाराज हो जाता। आरम्भ में वह उगनी के लिए सोंचता है।

भभीखन सिंह एक सिपाही है। जो पचास वर्ष के मुच्छड़, नियमित दिनचर्या वाले सीधे–सपाट व्यक्ति है, पर भांग मिला पेड़ा खिलाकर उन्होंने उगनी के साथ बलात्कार किया। उसके सौंदर्य, भोलेपन और विवशता का उन्होंने अनुचित लाभ उठाया। बाद में वे उगनी से प्यार भी करने लगते है। स्थान–स्थान पर उसकी तारीफ करते हुए भी हम उन्हें देखते है। नित्यप्रातः स्नान और रामायण–पाठ उनकी दिनचर्या की महत्वपूर्ण कड़ी है। कैदियों से बातचीत और मनोविनोद करते भी उन्हें देखा जाता है।

इन पात्रों के अतिरिक्त गीता, जो उगनी का सहज विश्वास अर्जित कर लेती है, उससे सहानुभूति रखती है। भाभी, जो अपनी बातचीत के कारण विधायिका जी कहलाती है। अपने सुधरे विचारों से कामेश्वर उगनी के विवाह में सहयोग देती है। समाज में व्याप्त व्यभिचार को मिटाने के लिए बड़ा रचनात्मक सुझाव उनके पास है। गीता की मॉ बड़े चिड़चिड़े स्वभाव की स्त्री है। हनुमान मठ के बाबा अलमस्त प्राणी हैं।

पात्रों के चरित्र की अधिकांश रेखाएँ लेखक के उनके मन में उठने वाले विचारों से ही स्पष्ट हैं। इसे आत्म विश्लेषण विधि कहना चाहिए। पात्र अपने मन की एक–एक पर्त खोलकर रखते है, जिसमें उनके विरोधी भी आ जाते हैं। यह अन्तर्द्वन्द्व सभी पात्रों के हृदय मे चलता रहा है। आत्मविश्लेषण की यह नई तकनीकी नागार्जुन ने अपनायी है। अन्तर्मन का रहस्य व्यक्त करने में यह प्रणाली महत्वपूर्ण है। साथ ही इसमें कथोपकथन का आनंद भी मिल जाता है। उगनी की भावुकता, कामेश्वर की दृढ़ता भभीखन सिंह की सच्चाई, भाभी की बुद्धिमत्ता सब हमारे सामने दर्पण की तरह स्पष्ट है। सारे पात्र यथार्थवादी हैं, पर उन्यास का अन्त महान आदर्श की ओर प्रेरित करता है।

महान कलाकार का लक्ष्य हमेशा अपने समाज की गलित एवं हानिकारक रूढ़ियों का खण्डन करते हुए समाज को उन्हें त्यागकर, आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा

देना रहा है। इस उपन्यास में नागार्जुन का यही प्रयास यहाँ दिखाई देता है। नागार्जुन ने समाज में व्याप्त ब्याभिचार का यथार्थवादी चित्रण करते हुए ऐसी अबला नारी का हाथ पुरूष के सबल हाथो में थमवा कर एक श्रेष्ठ समाज की स्थापना की है।

समाज में बढ़ते हुए व्यभिचार को कैसे रोका जाय? क्या पिस्तौल से? नहीं। इसे रोकने का रचनात्मक सुझाव नागार्जुन ने दिया है– "छिछोर मन का इलाज कारतूस की पेटियों से नही होग, स्त्री–पुरुषों में समान रूप से समझदारी पैदा होगी और मनोरजंन के कई और साधन निकल आयेगें, तभी व्यभिचार घटेगा, देहात में खाते–पीते परिवारों के अधेड भारी मुसीबत पैदा करते है। उगनी जैसी लड़कियों, के लिए ज्यादा संकट उन्हीं की ओर से आता है। दूसरा संकट है, उसके नौजवानों की छिछली सहानुभूति। इन संकटों का मुकाबला हम पिस्तौल से नही कर सकते।"

यहाँ नागार्जुन ने युवको को विकसित मस्तिष्क वाला एवं प्रगतिशीलता का पोषक बनने की प्रेरणा दी है। उसके समान विस्तृत दृष्टिकोण एवं विशाल हृदय लेकर ही हम समाज की जर्जरित परम्पराओं से टकरा सकते है। डा० लक्ष्मीकांत सिन्हा के शब्दो में देखे तो यह समस्या साहित्यिक कृतियों के प्रेरक रूप में अपनी शक्ति खो चुकी है।" सिन्हा जी तो इसमें मात्र विधवा समस्या मानते है। जबकि डा० प्रकाशचंद्र भट्ट इसमें विधवा समस्या नही मानते। वे दूसरे के द्वारा गर्भवती अपनी प्रेमिका को पुनः अपनाने का महान देवोचित आदर्श और साहस तथा प्राचीन परम्पराओं को झटके से उखाड़ फेंकने का आवेश है। अपने इस उद्‌देश्य को नागार्जुन जी बखूबी व्यक्त करने में सफल रहे।

इमरतिया

इस उपन्यास के प्रकाशन के एक वर्ष बाद अर्थात १६६६ ई० में 'जमनिया के बाबा' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। चूंकि इमरतिया का प्रकाशन १६६८ ई० में हुआ था। और एक वर्ष वाद 'जमनिया के बाबा' के प्रकाशित होने के बाद कहानी का

शिल्प, कथ्य लगभग एक ही था। यद्यपि प्रकाशन अलग–अलग था। तो भी कहानी, कथा पूर्णतः अभेद थी। इस कथा में साधुओं और मठों के धार्मिक आडम्बरो का पर्दाफाश किया गया है।

मुशी प्रेमचन्द कथावस्तु में तीन बाते प्रमुख देखते है। कथा की सरसता एवं रोचकता २– घटनाओं का चयन ३– कथानक का कसाव एवं तत्सम्बद्ध तर्क–सम्मतता। प्रत्येक पात्र को नागार्जुन ने सामने लाया है और उसके द्वारा कथा कहलाने से प्रयुक्त कथोपकथनो से तथा वातावरण के सजीव चित्रण और जिज्ञासा की क्रमशः संतुष्टि से कथा मे सरसता और रोचकता पर्याप्त देखी जा सकती है।

'इमरतिया' उपन्यास के कथानक में पूर्व घटित एक–एक घटना को लेखक नें पात्रों के वर्तमान में घटित घटनाओं के साथ जोडकर प्रस्तुत किया है। बाबा मस्तराम की गिरफ्तारी का कारण, लक्ष्मी के बच्चे की बलि की घटना, स्त्रियों को बेंत लगवाकर आशीर्वाद लेना, भगौती का वकील से मिलना–सब लेखक नें पात्रों के मुख से ही स्पष्ट कराया है। इस उपन्यास में प्रत्येक पात्र अपनी–अपनी बात आकर सुनाता है। हमें इनसे भी ज्ञात होता है कि साधु के भेष में ये लुटेरे जनता को कैसे लूट रहे हैं।

घटनाओं के चयन और प्रस्तुतीकरण में लेखक की प्रतिभा दिखाई देती है। पहले परिच्छेद में बलि की घटना, दूसरे में मस्तराम द्वारा अभयानंद की पिटाई, गिरफ्तारी और जेल के कर्मचारियों को भी उसी अंधविश्वास में डूबे हुए दिखाये जाने, आगे बाबा की जटाएं उतरने, हरिजनों की समस्या, पूंजीपतियों का लाभ, बाबा की समाधि का रहस्य, बाबा और भगौती के क्रमशः आने और अपनी बात कहने से जमनिया मठ की स्थिति, वकील साहब द्वारा मुकदमे की गम्भीरता, और भगौती द्वारा अखबारों की कतरने देखने से सारी बातें समझ में आ जाती है।

शिल्प की दृष्टि से देखा जाय तो नागार्जुन का यह नया प्रयोग है। लेखक की असफलता या आलोचक की दूसरी आपत्ति तब मानी जा सकती थी जब नागार्जुन सारे

परिच्छेदों को एक सूत्र मे बॉधने में असफल दिखाई देते। परंतु कथा में कहीं भी विखराव आने नही दिया और सारी घटनाओं और परिच्छेदों के वर्णित ब्यौरो को अंत तक ठीक से निर्वाह करने का सफल प्रयास किया है। घटनाओं की विशृंखलता, शिथिलता, अस्वाभाविक कहीं दिखाई नही देती। कोई न कोई घटना या कारण उपस्थित करके पाठक को व्यस्त रखने का पूरा प्रयास नागार्जुन ने किया है।

वस्तुत· इस उपन्यास का कथानक नागार्जुन के जीवन को एक वास्तविक घटना पर आधारित है। उपन्यास में अभयानंद की जिस प्रकार पिटाई की गयी थी, और वह अपने स्वाभिमान पर दृढ़ रहा, वैसी ही घटना नागार्जुन के वास्तविक जीवन में घटित हुई है। जैसा कि 'आइने के सामने' में नागार्जुन स्वयं लिखते है' "तुमने मुझे पिटवाया था।

मैंने तुम्हे दो वर्ष जेल की सजा करवायी थी। तुम्हारी जटा तीस हाथ लम्बी थी। गोरखपुर के पारसी मजिस्ट्रेट ने तुम्हारी गिरफ्तारी के बाद पहला काम यही किया कि जटा मुड़वा दी इलाके में मुम्हारे ढोंग की तूती बोलती थी—नागा बाबा ने बुलहवा के बाबा की माया को पंक्चर कर दिया। गवाहों नें अदालत में कहा था वह व्यक्ति मूलतः तुमही का रहने वाला मुसलमान है और भागकर नेपाल चला गया था। वहाँ से साधु बनकर लौटा........काले चेहरे की लाल आँखे बार—बार मुझे घूर रही हैं।"

उपरोक्त आप बीती घटना से प्रेरित हो लेखक ने बाबा के मुसलमान होने, नेपाल भाग जाने, वहाँ से आकर साधु के रूप में मठ चलाने, मठ को व्यभिचार, अबोध जनता के शोषण और राष्ट्र विरोधी कार्यों का अड्डा बना लेने की घटनाओं के रहस्य से परिचित कराने हेतु 'इमरतिया' उपन्यास लिखा है। अगर बाबू श्याम सुंदर दास के कथनो को देखे तो 'इस ढंग के अनुसरण में उपन्यासकार को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।"

'इमरतिया' में घटनाओं के माध्यम से जिन पात्रों को हमारे सामने रखा गया है वे है– इमरतिया, बाबा, मस्तराम, भगौती, रसोइया महराज, जेल के कर्मचारी, वकील अष्ठाना एवं पी०के० दास और उनकी बहन, आदि इनमें मुख्य पात्र इमरतिया, मस्तराम, बाबा और भगौती है। जो क्रमशः सामने आकर अपने पक्ष को प्रस्तुत करते हैं।

मुख्य नायिका इस उपन्यास में 'इमरतिया' है जो ठगों, अपराधियों और साधु–संतों के जाल में फंसी एक बहादुर और भावुक नायिका है। अपराधियों के साथ रहकर उसमें भी अपराध वृत्ति के अंकुर दिखाई देते है। वह जेल काटना चाहती है। उसकी उम्र तीस–बत्तीस की है, पर तन्दुरूस्ती अच्छी होने से वह पच्चीस–छब्बीस की लगती है। वह विनोद प्रिय है। उसके मन में पुरूषों की प्यास दिखाई देती है। महाराज की बनी हुई दाढ़ी वाले मुख को वह ध्यान से देखती हैं महाराज की खुली जॉघ उसके हृदय के चकले पर बेलन के समान फिरती हैं। स्वप्न में अपना बदन किसी पुरूष के बदन से दबा हुआ उसे लगता है। इस प्रकार उसके मन से हम यौवन को अतृप्त और उभरता हुआ पाते है। मस्तराम के प्रति उसके मन में खूब आकर्षण है। लक्ष्मी के बच्चे को बलि दिये जाने की घटना सुनकर वह बाबा के लिए कहती है" यह बाबा बडा राक्षस है– भोले–भाले लोंगों पर अपना आतंक जमाने के लिए एक आदमी क्या इतना घिनौना काम करेगा?" हमें उसके इस कथन के पीछे उसकी संवेदनशीलता और नागार्जुन का स्पष्ट क्रोध दिखाई देता हे।

मस्तराम बाबा नाम ही नही व्यवहार से भी मस्तराम है। जाड़ा उसे नही सताता। उसे सताया है– चरस और गाँजे की तलब ने। हरिजन और निम्नवर्गीय लोगो के प्रति उसके मन में सहानुभूति है। वह धुनी आदमी है। स्वामी अभयानन्द द्वारा 'सच्चे दरबार की जय' न कहने पर उसने उसे जो पीटना शुरू किया तो अधमरा कर दिया। स्वयं के द्वारा इस निरपराध साधु को मारने और बाबा के हस्तक्षेप न करने की स्मृति में उसे बाबा के साधुत्व पर संदेह होने लगता है। जेल में भी उसने बेंत द्वारा आशीर्वाद देने की परिपाटी प्रारंभ कर दी है।

मानव सुलभ कमजोरियों से वह भी ग्रस्त है। कही–कहीं बड़ा यथार्थ और स्वाभाविक पात्र वह दिखाई देता है। जॉति–पाँति के भेद–भाव उसे नही भाते। वह बड़ा ही फक्कड और मस्त साधु है, और इस रूप में भारतीय संस्कृति, प्राचीन इतिहास, जातीय व्यवस्था, पूँजी का एक स्थान पर एकत्रीकरण, निम्नवर्गीय समाज की उपेक्षा, आदि गंभीर विषयों पर उसका आलोचनात्मक दृष्टिकोण हमारी समझ में उसे कुछ असामान्य, अस्वाभाविक और लेखक द्वारा अरोपित पात्र बना देता है। उसका स्वभाव भी परिवर्तनय है।

उपन्यास की सारी घटनाओं के केन्द्र में बाबा है। यही प्रमुख पात्र है। उसकी लम्बी जटाओं को पारसी हाकिम ने जेल में आते ही कटवा डाला। वह बड़ा आडम्बरी और प्रपंची है। जेल में भी उसने बड़े जमींदार की पतोहू के सीने की झाड़–फूंक शुरू कर दी। वह अपने फन में माहिर है। हिन्दू जाति की अंध श्रद्धा को उसने खूब परखा है, जमनियॉ में उसने मठ इसलिए बनाया कि नेपाल की सीमा के निकट होने से जब चाहे पुलिस की 'टेढ़ी ऑख' से बचने में सुविधा रहे। वस्तुतः वह एक मुसलमान था। एक लड़की के पीछे जवानी की दीवानगी ने उसे नेपाल भागने को विवश कर दिया। वह साधु बन गया और जमनिया का मठाधीश बनकर रहने लगा। वह समाधि भी लेता है, जिसमें उसे फलाहार, मिष्ठान आदि सब चलते है। उसके द्वारा विकसित जमनिया मठ तस्कर, व्यापार, अबोध शिशु की बलि जैसे जघन्य कृत्य एवं व्यभिचार, देशद्रोह आदि कारनामों का अड्डा बना हुआ है। इसीलिए वह भी पुलिस की गिरफ्त में फँस गया।

वहीं जमनिया मठ का अधिष्ठाता भगौती है। वह बाबा और मस्तराम को जमानत पर छुड़ाने की कोशिश खूब करता है। वकीलों से मिलता है। चन्दा इकट्ठा करते समय बाबा के सम्बन्ध की फबतियाँ सुनता है। भगौती के विचारा भी बाबा की ओर से परिवर्तित हो जाते है। वह घर पर लगा गेरुआ झंडा भी महाराज से उतरवा लेता है।

इस प्रकार 'जमनिया के बाबा' अर्थात् 'इमरतिया' उपन्यास में सारे पात्र परिवर्तनशील स्वभाव लिए हुए है। इमरतिया, भगौती, मस्तराम, सुकुल जी, जमादार, सब पहले-पहल बाबा पर श्रद्धा रखते है पर आगे-चलकर उसे कपटी, नीच और पाकिस्तान का एजेन्ट, राक्षस आदि समझने लगते है, और तो और शिवपुर की रानी जो कभी मठ पर बडी मेहरबान थी, किसी को भी सिफारिशी पत्र लिखने और इस सम्बन्ध में मिलने से इंकार कर देती है। मजदूर बाबा के विरूद्ध नारे लगाते हैं।

इमरतिया का चरित्र नागार्जुन ने बडी सह्रदयता से गढा है। पात्र बहक गये है और नागार्जुन के विचारों को व्यक्त करना उन्होंने शुरू कर दिया है। विश्लेषणात्मक विधि की अपेक्षा नागार्जुन ने अभिनयात्मक विधि का प्रयोग उपन्यास में किया है। जिसके अनुसार सारे पात्र कथावस्तु को अपने कथन से गति देते है और अन्य पात्रों का तथा अपना परिचय भी देते चलते हैं।

इस प्रकार बाबा नागार्जुन के इस अंतिम उपन्यास में एक सामाजिक समस्या को प्रमुखता प्रदान की गयी है। मनुष्य एक सामाजिक प्रांणी है, समाज में रहने के लिए उसे सामाजिक नियमों का पालन करना पडता है। समाज में व्याप्त अंधश्रद्धा जैसी बुराइयों का यथार्थ चित्रण करते हुए इन दुष्ट और भ्रष्ट साधुओं की निरर्थकता और व्यर्थता नागार्जुन ने सिद्ध कर दी है। उन्होंने दिखाया कि आज हमें समाज पर भार बनने वाले साधु नही चाहिए, हमें चाहिए जनता में देश प्रेम, एकता और राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार करने वाला ऐसा व्यक्ति, जो सैनिक प्रशिक्षण देकर हमें राष्ट्र विरोधी खतरे का सामना करने के लिए तैयार कर दे।

नगार्जुन के उपन्यासों का शिल्पगत विकास

हिन्दी में शिल्प का अर्थ है 'कारीगरी' तथा विधि का अर्थ है 'प्रणाली' इस प्रकार शिल्पविधि (शिल्पगत) का अर्थ हुआ 'उपन्यास को प्रस्तुत करने की प्रणाली। अतएव इसके अन्तर्गत वे समस्त तत्व आ जाते है। जो उपन्यास का निर्माण करते हैं। अब प्रश्न उठता है कि वे तत्व क्या है ? लेथरोप ने उपन्यास के विविध उपकरणों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "प्रत्येक कहानी के तीन अनिवार्य तत्व होते हैं: विशेष परिस्थिति मे कुछ लोगों के द्वारा कुछ घटित होता है। कार्य का होना, कार्य विधान कथा ही है, अथवा जब वह निश्चित रूप से सुगठित होता है तब यह कथानक है। कार्य करते हुए व्यक्ति, चरित्र है। स्थिति के अन्तर्गत कुछ कार्य होते है। वे परिप्रेक्ष्य का निर्माण करते है"[१]। इस प्रकार यहाँ उपन्यास के तीन तत्वों पर प्रकाश पडता है। कथानक, चरित्र, परिप्रेक्ष्य। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य तत्व भी है। जिन्हें संवाद या शैली के नाम से जाना जाता है। संवाद के अभाव में उपन्यास नीरस हो जायेगा। शैली के बिना उपन्यास की कल्पना ही संभव नही है। उपन्यास के प्रस्तुतीकरण की योजना ही शैली है। तथा भाषा–शैली के बिना उपन्यास का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा।

हिन्दी में उपन्यास के ढॉचे में तोड़–फोड़ प्रेमचन्द शुरू करते हैं। वे परंपरागत ढॉचे को तोड़कर नये ढॉचे का निर्माण करते है। पहले काल्पनिक व्यक्ति चरित्र, अस्वाभाविक घटनाऐं, परिस्थितियॉ उतनी ही अविश्वसनीय और आश्चर्यजनक कौतूहल उत्पन्न करने वाली होती थी। और कथानक का विकास भी विलक्षण और अस्वाभाविक होता था। प्रेमचन्द्र नें इन दृष्टिकोणों से परे होकर अपने उपन्यासों में मानव–जीवन को आधार बनाया। उपन्यास केवल कथात्मक गद्य नहीं है, वह मानव के जीवन का गद्य है। यह पहली कथा है, जो सम्पूर्ण मानव को अभिव्यक्ति प्रदान

---

[१] एच० वी० लेथरोप : दी आर्ट ऑफ दी नावेलिस्ट : लंदन १९२१ प्र०स पृ० ६६

करने की चेष्टा करती है। उपन्यास का विषय मानव–चरित्र है। यहीं से प्रेमचन्द नें अपने उपन्यासो में मानव–चरित्रों की कल्पना की। उन्होंने मानव के चरित्र में देवत्व और पशुत्व दोनो को देखा। इसीलिए वे उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र कहते हैं। वे यह भी कहते है कि "मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[१]

प्रेमचन्द की इसी नयी धारा की अगली कड़ी नागार्जुन हैं। उनके उपन्यासों का कथानक उनके व्यक्तिगत जीवन से सीधा सरोकार रखता है। 'रतिनाथ' के जीवन की घटी सभी घटनाएं नागार्जुन की घटनाएं है। नागार्जुन ने लिखा है– "मेरा वश चलता तो उस उधेड उम्र में भी आप दोनों की नई शादी वैदिक–विधि से करवा देता। पर मैं तो उन दिनों दस ग्यारह साल का बालक था– मातृहीन, रोगी और डरपोक"[२]।

प्रगतिशील उपन्यासकारों के शिल्प के प्रति इसी सजगता को देखते हुए डा० शिवकुमार मिश्र ने लिखा है कि "इनके उपन्यासों का एक प्रधान आकर्षक गहरी समस्याओं, दार्शनिक ऊहापोंहों, सामाजिक–चितंन तथा मनोवैज्ञानिक भूमिकाओं के बावजूद उनका सजीव–कथानक तथा चिंतन उसे पाठको के समक्ष प्रस्तुत करने वाली उनकी जीवंत चरित्र सृष्टि ही है। यदि कथा में ही जान नही, कथा में ही रोचकता नही, चरित्रों में ही प्राथमिकता नहीं, तो गहरे से गहरा और मूल्यवान से मूल्यवान निष्कर्षो का भी किसी के लिए क्या अर्थ होगा?"[३] अन्य प्रगतिशील कथाकारों की भॉति ही नागार्जुन प्रेमचन्द के सहज–शिल्प को युगानुरूप नया संस्कार देते हुए विकसित और पुष्ट करते है।

नागार्जुन की रचना यात्रा की शुरूआत १९३० से मानी गयी है। प्रारम्भ में

---

[१] प्रेमचन्द –प्रकाश चंद गुप्त

[२] नागार्जुन : जीवन और साहित्य– डा० प्रकाश चन्द्र भट्ट, सेवा सदन प्रकाशन, पृष्ठ–१६०

[३] डा० शिव कुमार मिश्र– प्रगतिवाद पृष्ठ–६७–६८

उनकी रचनाएँ काव्यात्मक थी। यथा– 'युगधारा', 'सतरंगे पंखो वाली', 'प्यासी पथरायी ऑखे', 'खिचडी विप्लव देखा हमनें' आदि फिर गद्य रचनाओ की ओर उन्मुख हुये और ठीक १८ साल बाद सन् १९४८ में पहला उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' की सृष्टि हुयी।

नागार्जुन जिस काल में साहित्य जगत में प्रविष्ट हुए है, वह काल भारत के इतिहास में जनता की करवट लेती हुई जागृति का काल था। देश पराधीन था। पराधीनता की बेड़ियों से जकड़े देश में उससे छुटकारे के लिए किये जा रहे प्रयासों की विभिन्न प्रतिक्रियायें इस भावुक कलाकार के हृदय पर पड़ी। "इस बात में अधिक विवाद की गुंजाइश नही है कि जिस विशिष्ट राजनितिक–आर्थिक, समाजिक–धार्मिक तथा साहित्यिक परिवेश में साहित्यकार की चेतना का प्रस्फुटन और विकास होता है इससे प्रभावित हुए बिना वह नही रह सकता।"[१]

देश में गॉधीजी के नेतृत्व में अहिसंक आन्दोलन चल रहा था, परन्तु जनता इसे ठीक से न समझने के कारण कभी–कभी हिंसक मार्ग भी अपना लेती थी। यथा– चौरी–चौरा की घटना जिसमें निर्दोष लोग मारे गये। अंग्रेजों का दोहरा शोषण सतत् जारी था। गृह–उद्योगों का विनाश और करों का बोझ। और इस शोषण की मार भारतीय किसान को सहनी पड़ी "भारतीय किसान गरीबी का कुछ अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि सन् १९३१ में उसकी औसत वार्षिक आय लगभग ४२ रूपये थी।"[२]

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में समसामयिक दृष्टिकोणों का विवेचन करतें है। उनके सभी उपन्यास देश की बदलती हुई तस्वीर को समय के साथ खाका खींचते है। वे कभी देश की बुनियादी समस्याओं को उठाते है, तो कभी राजनीतिक भावबोध का अहसास कराते हैं। आगे चलकर स्वतंत्रता के बाद के देश में शासन कर रहे

---

[१] युगधारा– प्रकाशकीय वक्तव्य।
[२] भारत का स्वतंत्रता सघर्ष– विपिन चन्द्र पृ०–४२

१०– जमनिया के बाबा १९६८ ई० इसका दूसरा नाम 'इमरतिया' है जो १९६७ ई० में आया।

नागार्जुन के उपन्यासों का शिल्पगत विकास उसकी कथानक, चरित्र–चित्रण और भाषा शैली की दृष्टि से करने की कोशिश है।

१– नागार्जुन के उपन्यासों की कथा– संयोजना सरल, सहज और यथार्थ धरातल पर हुई है। उनका कथानक आस–पास की वास्तविकताओं और परिवेश से चुनते है। वे विषय–वस्तु के अनुरूप ही कथानक चुनते है। यही कारण है कि कलात्मकता या जीवन–दर्शन उनके कथानकों के सिर पर चढ़कर नहीं बोलता है और कल्पना की अतिशयता भी नहीं दिखायी देती है। घटना, प्रसंग बात और पात्र सभी इतने सामान्य होते है कि "हमे लगता है हम अपनी ही किसी आस–पास की दुनिया के बीच खड़े हों।"[१]

इस प्रकार की स्वाभाविकता ही नागार्जुन के यथार्थ की ताकत है। व्यक्तिगत स्तर पर घटी, घटनाओं को सामाजिक स्तर दे देना नागार्जुन के उपन्यासों की बड़ी विशेषता है। उनके जीवन की वास्तविक घटनाएँ कल्पना का सहारा लेकर कथानक के रूप में उनके उपन्यासों में व्यापक रूप से जगह पाती है। इसीलिए वास्तविक और व्यक्तिगत या यों कहें स्वाभाविक कथा–योजना का निर्माण होता है।

नागार्जुन मिथिला की सोढ़ी धरती की ही उपज थे। इसलिए वे वहाँ की धरती के जीवन से कथानक चुनते हैं। प्रत्येक रचनाकार अपने जीवन में घटित, घटनाओं, परिस्थितियों और जिन पात्रों से वास्तविक जीवन में परिचय होता है, उन्हे ज्यो का त्यों अपने उपन्यासों में नही रख देता, बल्कि उनको अद्वितीय विशेषताओं से मंडित करके पुनः प्रस्तुत करता है। इस प्रक्रिया में प्रत्येक सार्थक कलाकृति अपने संसार की रचना करती है। स्पष्ट है कि वास्तविक जीवन उपन्यास में यथातथ्य रूप में चित्रत

---

[१] विजय बहादुर सिंह– नागार्जुन और उनका रचना संसारए पृ.१३६

नहीं होता। उपन्यास के जीवन–यथार्थ में अंतर होता है। "कथा का गठन और पात्रो का विकास आकस्मिक होता चलता हो, ऐसी बात नही। एक सूत्र हम पकड़ लेते हैं। एक मोटी रूप–रेखा बनाकर उस रचना को एक सही संतुलित परिणति देने में हमको सुविधा होती है।"[1]

नागार्जुन के प्रसिद्ध उपन्यासों का कथानक उनके व्यक्तिगत जीवन से सीधा जुड़ा हुआ है। हिन्दी में ऐसे उपन्यास लेखको की संख्या भी काफी कम है, जो व्यक्तिगत–जीवन के किसी मार्मिक और अविस्मरणीय प्रसंग को सुन्दर कल्पना में ढालकर उपन्यास रच लेते हैं। उनकी विशेषता है कि वे व्यक्तिगत घटनाओं को भी सामाजिक कलेवर देकर पेश करते हैं। 'रतिनाथ की चाची', 'जमनिया के बाबा' की घटनाएं उनके जीवन से सीधा सरोकार रखती है। "रतिनाथ की बीमार मॉ बिस्तरे पर उत्तान लेटी पड़ी है। और जयनाथ रुद्र रूप धरकर बेचारी की छाती पर बैठा है, वह घिघिया रही है।"[2] एक नही उपन्यास में ऐसी अनेक घटनाएँ है, जो नागार्जुन के जीवन में घटित होती हैं। रतिनाथ के पिता के द्वारा चाची का गर्भवती होना, रतिनाथ का बचपन में संस्कृत का अध्ययन करना– "लो यह अमरकोष। जिस दिन यह कंठस्थ हो जाएगा उस दिन तीनो लोक तुम्हारे लिए हस्तामलक हो जायेंगे।"[3]

कथानक का आरम्भ, बीच में रतिनाथ की शिक्षा का प्रबंध तथा अंत आदि वास्तविक घटनाओं पर आधारित है और शेष काल्पनिक। इसलिए इस उपन्यास की कथा–योजना सरल और सहज है । यह निरतंर विकास व प्रवाहमान धारा बनाये रखती है।

बलचनमा की भी कहानी– गॉव के भूमिहीन परिवार से ली गयी है । यही कारण है कि इसकी कथा–योजना सरल और सीधी है। कथा का आरंभ ही अत्यंत

---

[1] साहित्यिक साक्षात्कार– डा० रणवीर रांग्रा–१६५।

[2] नागार्जुन –रतिनाथ की चाची–पृ०.८६।

[3] नागार्जुन –रतिनाथ की चाची–पृ०.३३

सरल एवं सीधी रेखा में होता है। बलचनमा जब कथा कहता है तो उसमें जटिलता नहीं वरन् सरलता है। "चौदह बरस की उम्र में मेरा बाप मर गया। परिवार में माँ दादी और छोटी बहन थी। नौ हाथ लम्बा और सात हाथ चौड़ा घर था, दो छप्परों वाला। सामने छोटा सा ऑगन था। बाई ओर आठ– दस धूर बाड़ी थी।"[१]

कथा के आंरभ में ही दो विरोधी शक्तियों का विकास है। एक तो बलचनमा ही है दूसरा उसकी जमीन हड़पने की लालसा वाला जमींदार मझले मालिक। "मझले मालिक की निगाह हमारे उन खेतों पर थी जिनमें मडुवा उपजाकर तीन–चार महीने का खर्च हम निकालते आये थे। उन्होंने सोचा–लौडा अभी छोटा है। जमाने का रंग–ढंग अच्छा नहीं है।"[२]

जमींदारों के शोषण व अत्याचार की इस कथा में मोड़ तब आता है, जब मालिक बलचनमा की बहन रेबनी के साथ बलात्कार करने की कोशिश करता है। "बहुत दिनो से उसकी ऑखे मेरी बहन पर लगी हुई थी। वह मौका खोज रहा था। और देव की इच्छा, आज सैतान को वह मौका हाथ लगा था। ....आखिर उसने रेबनी को जबरन जमीन पर गिरा दिया और खुद उसके बदन पर काबू पाने की कोशिश करने लगे।"[३]

यहॉ से कथानक तीव्र होने लगता है। कथानक के विकास में अन्य प्रसंग और कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं, परिस्थितियों, का संयोजन वास्तविक रूप से हुआ है। विकास के ही क्रम में बलचनमा और फूलबाबू का प्रसंग महत्वपूर्ण है, जहॉ से बलचनमा का कया पलट होता है राधा बाबू का प्रसंग। कथानक में गति जमींदार और किसान बेदखली की महत्वपूर्ण घटना से आ जाती है। अंत भी आदि की तरह बड़े सहज ढंग से होता है। "कि इतने में आसरम के पिछवाड़े से दौड़कर एक और

---

[१] नागार्जुन –बलचनमा– पृ०.५

[२] नागार्जुन – बलचनमा– पृ०.१३

[३] नागार्जुन – बलचनमा– पृ०.६८

आदमी आया, उसके हाथ में नेपाली खुखरी थी। मै बॅधा था और जाल में सभी अंग उलझे हुए थे। हॉ दॉतो से एक की कलाई को चॉपे हुए था। पहले ने अब मेरे सिर पर जोर से लाठी मारी– एक नहीं, दो बार... मैं बेहोश होकर जमीन पर लुढक गया।"[१]

कुछ आलोचकों को इस तरह अंत कर देने पर आपत्ति है कि कथानक अधूरा है। इस पर नागार्जुन ने स्पष्टीकरण दिया कि, "अगर इस उपन्यास का प्रकाशक या परामर्शदाता ऐसा जागरूक होता और समूचा उपन्यास पढ़कर कहता कि यह मामला तो जमता नही, दो तीन चैप्टर और लिख डालो। इससे अगर ऐसा होता तो निश्चित है कि मैं उसको आगे बढ़ाता। एक परिणति तक ले जाता। पहले विचार था, उसका खण्ड लिखूंगा। पर अब मेरा विचार बदल गया। मुझे लगता है कि इसमें भी एक चमत्कार है। कि शोषित, भूमिहीन छोकरा वहॉ तक जाता है और पिटकर गिर जाता है। अपनें आप में यह भी एक मार्मिक परिणति है।"[२] नागार्जुन जैसे लेखक की कथा–वस्तुएँ जीवन की सहज प्रवाहमयता का अनुसरण करती है। जीवन अपनी स्वाभाविकता में न तो पूरी तरह आदर्शवादी होता है और न ही यथार्थवादी। लेखक सिर्फ इतना छूट लेता है कि वह इनमें से किसी एक को अपने कथन–इष्ट के रूप में चुनें। जिस प्रकार चिंतामणि का लेखक विचार प्रधान निबंध रचना में प्रवृत्त होकर भी जीवन की सहज–भाव राशि की मूल्यवत्ता को स्वीकार करता चलता है, उसी प्रकार यथार्थवादी नागार्जुन भी जीवन–गत आदर्शो से बहुत जगहों पर अपनी वस्तु को समृद्ध करते चलते हैं। गोदान को लेकर आलोचकों की यह आपत्ति सर्वविदित है कि गॉव और शहर के जीवन को लेकर चलने वाली कहानियॉ उचित सामंजस्य प्राप्त नही कर सकीं।

'बाबा बटेसरनाथ' जैसे उपन्यास की शुरुआत नागार्जुन सामाजिक जीवन के

---

[१] नागार्जुन – बलचनमा– पृ०.१७२
[२] साहित्यिक साक्षात्कार – डा० रणबीर रांग्रा, पृ०.१६५

धरातल से करते हैं किन्तु उत्तरार्द्ध में सारी कथा राजनीतिक हलचल और सक्रियता की गोद में जा बैठती है। तब पर भी इसे संरचनात्मक असामंजस्य नही कहा जा सकता। सामाजिक–जीवन, राजनीतिक–जीवन, से इतना घुला–मिला हुआ है कि उक्त उपन्यास का कथानक देशी क्रांति का इतिहास प्रस्तुत करता हुआ लगता है। कथानकों की यह संगठन उस समय और भी उभार लेती दिखती है जब लेखक कई अन्य छोटी–मोटी प्रासंगिक कहानियों को भी इसके साथ जोड़ता है।

इस प्रकार कथा–शिल्प की दृष्टि से 'बाबा बटेसरनाथ' एक नया प्रयोगधर्मी उपन्यास है। कथा के आरंभ में ही उपन्यास की मूल समस्या को रख दिया गया है– "खुशी में पागल आदमी वहॉ आता है और आगे की योजनाओं के सुनहले लड्डू बनाया करता, विपत्ति का पहाड़ जिसकी गरदन तोड़ रहा होता, वह बेचार भी यहॉ आता और दृढ़ता के सबक लेता। प्रेमी आता, प्रेमिका आती। रात के अॅधेरे में चोर आया करते।..."[१]

उपन्यास की केन्द्रीय घटना इस प्रकार आती है– "कल अफवाह उड़ी कि पाठक और जैनरायन बरगद को कटवाना चाहते हैं। चिन्ता तो बरगद को बचाने की सबको हुई, परन्तु जैकिसुन का कलेजा फटने लगा।"[२] कथा के केन्द्र में यह बूढ़ा बरगद ही है, जिसे "जैकिसुन के परदादा नें इस पेड़ को बेटे की तरह पाला–पोसा था। दादा और बाप ने इसकी सेवा डटकर की थी। जैकिसुन खुद बचपन से लेकर अब तक यह सब अपनी ऑखो से देखता आया। इसी घटना से उपन्यास की कथा आरंभ होती है।"[३]

'दुखमोचन' उपन्यास में कथा–संरचना के केन्द्र में दुखमोचन जैसे आदर्शवादी मगर कर्म–शील चरित्र को रखा गया है। इस उपन्यास की कथा–संरचना या शिल्प

---

[१] नागार्जुन – बाबा बटेसरनाथ– पृ०.६
[२] नागार्जुन – बाबा बटेसरनाथ– पृ०.११
[३] नागार्जुन – बाबा बटेसरनाथ– पृ०.११

उसी तरह का है जैसा 'बलचनमा' और 'बाबाबटेसरनाथ' का था। उसी क्रम का ही अगला उपन्यास 'दुखमोचन' है। इसमें भी दो विरोधी शक्तियों के बीच संघर्ष है। यह सघर्ष चाहे वह जमीदार, भूमिहीन–किसान का हो, चाहे साम्राज्यवादी शक्तियों और भारतीय–जन के बीच का हो। ऐसा प्रतीत होता है कि नागार्जुन हर जगह इस प्रकार की शक्तियों का संघर्ष देख लेते हैं। शिल्प या कथा–संयोजना की यह विधि, उनके उपन्यासों की एक साधारण और सरल सी विधि जान पड़ती है। लेकिन उपन्यास के सम्पूर्ण ढॉचे को यह आच्छादित कर मूल संवेदना को बाधित करने वाली नहीं है।

"इस उपन्यास में कथा–तत्व का विघटन दिखाई पड़ता है और किसी एक मानवीय या परिवेशीय कथा तत्व को केन्द्रीय कथा के रूप में नही उभारा गया है।"[१] वस्तुतः इस प्रकार के शिल्प या कथा–संयोजना के तरीकों का सम्बन्ध नागार्जुन की जीवन दृष्टि से है। वे शिल्प या संरचना की उतनी परवाह नही करते दिखाई पड़ते है, जितनी परवाह मूल तथ्य या विषय–वस्तु की। इस प्रकार की तकनीकी निरंतर विकासमान रहती है। लेखक ने ऑचलिक जीवन के विभिन्न पक्षों को मूल–कथा से जोड़ने का प्रयास किया है। उपन्यास के कथानक की संयोजना तीन घटनाओं को मिलाकर की है। पहली है, गॉव में बाढ की स्थिति का वर्णन। जिसमें बाढ़ पीड़ितों की सहायता की जाती है। दूसरी घटना, गॉव में पक्की–सड़क निर्माण तथा तीसरी, गॉव में आग में जल गये मकानों के पुनर्निर्माण की है। इन घटनाओं में प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी शक्तियों में संघर्ष साफ–साफ दिखाई देता है।

विरोधी शक्तियों के बीच संघर्ष की शिल्प–विधि नागार्जुन के अगले उपन्यास 'वरुण के बेटे' में विकास पाती हैं। 'वरुण के बेटे' उपन्यास में मछुओं और पोखरों को हड़पने वाले जमींदारों के बीच की लड़ाई के माध्यम से आसानी से देखा जा सकता है। जमींदारी उन्मूलन कानून ने भू–स्वामियों को खुली छूट दे दी। निष्कर्ष यह निकला कि

[१] शिवप्रसाद मिश्र– 'नागार्जुन के उपन्यासो में सामाजिक चेतना'– पृ०.७२

पोखरों और चरागाहों तक को वे चुपके–चुपके बेचने लगे। यही घटना उपन्यास के कथानक को आगे तक ले जाती है।

मछुआ परिवार के अनेक दृश्यों को भी कथा में रूपायित किया गया है । मछुओं में ताड़ी–पीने की बुरी लत है। खुनखुन इतना पी लेता है कि बेटी को गाली देने लगता है। और हैवानी हरकतों को नाकामयाब देख उसके बाल पकड़कर जमीन पर घसीटता है। पर वही खुनखुन बेटी से सुबह क्षमा मॉगता है। बेटी के गौने चले जाने पर उसकी सेवाएँ तथा उसकी हर एक बात को याद कर वह बहुत उदास हो जाता है। यादों की सिलवटें जब एकबार उसके मानसिक चक्षु के समक्ष खुलने लगती हैं, तो वह प्रसंग भी याद आ जाता है। जब बेटी ने एक बार फिर सतधरा के बनिये को गजब की डॉट पिलायी थी– "एक बार सतधरा के बनिए की कुछ रकम आई थी, सूद नही गया वक्त पर। तकाज़े के लिए आदमी आया तो अनाप–शनाप बकने लगा, फिर बिटियॉ नें बच्चू को वो डॉट पिलाई कि मजा आ गया।"[१]

इस उपन्यास में मुख्य समस्या मछुआ–जीवन के अधिकारों की रक्षा से सम्बद्ध है, किन्तु माधुरी और मंगल की प्रेम–कथा ने उस संघर्ष को अधिक रोचक और गम्भीर बना दिया। प्रेम और संघर्ष के इस दुहरे जीवन को पूरे कथानक में रस्सी की तरह बटकर एकमेव कर दिया है। कुछ अन्य समस्याएं भी हैं। जो कथा में यत्र–तत्र दिखलाई पड जाती हैं। कोसी बॉध के निर्माण के लिए हित–हितकारी समाज द्वारा श्रमदान की घोषणा के पीछे कितना बड़ा षड़यंत्र चल रहा था। उसका चित्रण मछुओं की प्रतिक्रियाओं में व्यक्त हुआ है।

'वरूण के बेटे' में लेखक की दृष्टि कई कोणों से यथास्थिति पर प्रक्षेपित होती है यह सही है कि ऐसे चित्रणों में रचना के सपाट होने की संभवना बनी रहती है किन्तु 'वरूण के बेटे' में इसका अपवाद है। इस उपन्यास में लेखक का कवि रूप

---

[१] नागार्जुन– 'वरूण के बेटे', पृ०.५८

उभरकर सामने आया है। उनकी ब्यंजनाओं में गद्य–शैली चित्रात्मकता के साथ आकर्षण से अभिमण्डित हो गई है। ''झींगुरो का अविराम झंकार पृष्ठभूमि में शहनाई का काम कर रही थी। रात बढ रही थी। ...धौली तेरस की गाढ़ी दुधिया चॉदनी किसुन भोग की घनी छतनार डालों के तले आ नही पा रही थी किन्तु अपनी दमकती परछाई से अन्धकार की गहन कालिमा पर हल्की–हल्की सी पोंची अवश्य फेर रही थी।''[1]

नागार्जुन की शिल्पविधि जिस पटरी पर चल रही है, ऐसा नही है कि यही अंत भी कराती है। इससे इतर भी एक पटरी है जिस पर शिल्पविधि को नये अंदाज, नये पन के साथ प्रासाद निर्मित की गयी है। वहाँ भी विरोधी शक्तियों में संघर्ष है । लेकिन कथानक निमार्ण की भिन्नता के कारण उपन्यास की सम्पूर्ण संरचना बदल जाती है। 'नई पौध' और 'पारो' शीर्षक नागार्जुन के ऐसे ही दो उपन्यास है, जिनमें अनमेल विवाह की समस्या को सीधे और सरल रूप में प्रस्तुत किया है। इस नये अदांज को कथानक की घटनाएं अधिक न होकर परिस्थितियॉ ही अधिक है। यह अन्य उपन्यासों की तरह ज्यादा कथानक नही लिए हुए है। ''नागार्जुन इस प्रकार के अयथार्यवादी लेखक नही है। वे जानते है कि हिन्दुस्तानी समाज चींटी की चाल चलता है। कंगारू की तरह पीछे की ओर काफी भारी है। नयी हवाओं को असानी से अपनी पुरानी बारादरी में घुसने नहीं देता है, अगर वे कटिबद्ध होकर घुस आयी तो दूसरी विचित्रता यह है कि उन्हे एक अनिवार्य क्षेपक की तरह स्वीकार भी कर लेता है। धीरे–धीरे वे मुख्य प्रवाह का अंग बन ही जाती हैं।''[2]

'नयी पौध' की केन्द्रीय कथा अनमेल विवाह की समस्या है। किंतु इससे कई और कथाएं भी जुड़ी है। गॉव की सहुआइन की कथा पुस्तक में से निकाल दे तो भी कोई अन्तर नही पड़ता । इसी प्रकार दिगम्बर के ननिहाल पदुमपुरा का प्रसंग भी

---

[1] नागार्जुन– वरूण के बेटे, पृ०.५१
[2] नागार्जुन और उनका रचना संसार– विजय बहादुर सिंह,, पृ०.१३७

मूल कथा का पूरक नही है। इसी प्रकार पड़ित खोखा के पुत्र दुर्गानंदन का मधुबनी में वकील की मुहर्रिरी करना तथा वहॉ के वातावरण का वर्णन करना कथा में भरावट लाने की दृष्टि से भले ही महत्वपूर्ण हो, अन्यथा मूल–कथा की सम्वेदनाओं को प्रभावपूर्ण बनाने में उसकी उपादेयता नही के बराबर है। कथा में जिस तरह के विषमताओ को समता मे जोडने का प्रयास किया गया है यह नागाजुर्न सरीखे ही उपन्यासकार कर सकता है। निर्जीव को भी सजीव बना देते हैं। "सिनेह और ममता का भूखा वाईस–चौबिस साल का अमरित इस पर भाभी के सामने अपने को बिछा देता..., कोल्हू के चलने की आवाज– ढें ` ` ` ` ` ` ` ` ट चों ों ों ों ों ों चीं ीं ीं ीं ीं ीं... और भाभी की प्यार–भरी दुत्कार और और दुहमुँहे भतीजे की किलकारियॉ.... "[१]

हल्के–फुल्के रोमांस भी कथानक में रोचकता पैदा करते है। तेलिन, सहुआइन और अमरितवा (दूर के सम्बन्ध का देवर) तथा बीसो और बूलों का प्रेम, मुलायम हथेलियॉ, पतली–पतली कलाइयॉ, रस्सी की तरह के मड़ोरदार कंगन "लाख की बूटेदार चूड़ियॉ, चार–चार...नही, यह भाभी तो नही हो सकती!

और सब ठीक, चूड़ियाँ कॉच की कहॉ गई?

तो फिर कौन होगी?

बूलो भारी असमंजस में पड़ गया।

क्या बढ़िया मौजी मूड में बेचार अपनी मैना से निबट रहा था, एकाएक यह कौन आ गई? क्यों आ गई?

नही रहा गया, आखिर खिलखिला पड़ी बिसेसरी भी।

–बीसो!..."[२]

ये दृश्य केवल हल्के छीटों के समान ही कथा को रोचकता एवं पूर्णता प्रदान करने में सहयोगी बनते है। "मूलतः समाज की सामूहिक चेतना परम्परा प्रियता जीवन

---

[१] नागार्जुन– 'नई पौध', पृ०–७७
[२] नागार्जुन– 'नई पौध', पृ०–११७

की बद्धमूल धारणाओं पर विजय–उपलब्धि की कथा ही इस उपन्यास का प्रतिपाद्य है।"[१]

कुम्भीपाक उपन्यास की विधा तो इससे एकदम अलग है, उसमें शिल्प की दृष्टि से छोटी–छोटी घटनाओं का जाल बिछा हुआ है। ये घटनाएं अलग–अलग मोडो से होकर गुजरती है। जो आकर कुंभीपाक के संगम में एकाकार हो जाती है। इस विविध घटनाओं परिस्थितियों का विकास ही उपन्यास के कथानक को एक बृहद् आकर प्रदान करता है। लेकिन घटनाएं विशृंखलित नहीं वरन् एक सूत्र में बंधी है। यह भारतीय रेल के डिब्बे की तरह गुथी भी है। इस कृति में घटना बहुलता के बावजूद भी कथानक स्वाभाविक रूप से विकसित और सुगठित है।

उपन्यास में चम्पा की कथा बार–बार आती है। जो अपने नाम परिवर्तन के साथ अनेक पुरूषों की रखैल बनती है। "सफदर पर फिदा हुई, उसनें चम्पा को कुलसुम बना लियो...कानों में छल्ले डलवा दिये चाँदी के... छेदों के निशान नहीं हैं इन कानों में ? कुलसुम के बाद? सतवन्त कौर? हाँ सतवन्त कौर। सरदारों ने मुझे यही नाम दिया था।...सतवन्तकौर ने दम तोड़े तो चम्पा फिर से जी गई.... ।"[२]

उपन्यास में एक नकारात्मक बिन्दु यह है कि इसमें कोई केन्द्रीय कथा–वस्तु नहीं है, जिसके इर्द–गिर्द घटनाएँ प्रसार पाती हो। इसमें– "विविध घटनाओं का बेतरतीब संयोजन है, जिसके कारण कथा सूत्रता गायब हो गई है।"[३]

वास्वतिक घटनाओं पर आधरित उपन्यासों की कसौटी पर 'उग्रतारा' ही खरा उतरता है। उग्रतारा में कथानक की विशेषता यह है कि नागार्जुन के एक मित्र नें एक कहानी सुनाई थी, जैसा कि नागार्जुन स्वयं स्वीकार करते हैं– "हमारे मित्र ने बतायी एक कहानी, कि गॉव की एक लड़की ब्राह्मण की लड़की है बाल विधवा हो

---

[१] शिवप्रसाद मिश्र– 'नागार्जुन के उपन्यासो में सामाजिक चेतना'– पृ०.५३।
[२] नागार्जुन– 'कुंभीपाक', पृ०–६५।
[३] शिवप्रसाद मिश्र– 'नागार्जुन के उपन्यासो में सामाजिक चेतना'– पृ०.६५।

गयी है। उसको गॉव में एक राजपूज प्रेमी मिलता है। वे गाँव में नही रह सकते है और दोनों बाहर चले जाते हैं। बाहर जबरन पुलिस उनको पकड लेती है और साम्प्रदायिक रंग देकर लडकी को तीन महीने की और लडके को नौ महीने की सजा देती है।"[1] नागार्जुन कहते है कि यहॉ तक की कहानी हमें मिली थी और बाद का किस्सा कल्पना और तत्कालिक यथार्थ से मिलाकर हमने आगे बढ़ाया है। यानी कहानी का एक अंश हमको मिला उसको हमने विकसित किया है ।

पूरा उपन्यास स्मृति के अम्बारों से भरपूर है। पात्र स्वगत कथन से अपनी आन्तरिक दुनियॉ की हलचल को भी व्यक्त कर देते हैं। इस तरह के प्रसंग से जहॉ नाटकीय सौन्दर्य आ गया है, वहीं कथा का रस भी कम नही है । उगनी सिपाही से वांणी विहीनता में भी वार्तालाप करती है।

– "नीद आ रही सिपाही जी, इजाजत मिले।

–जाऊॅ ? अच्छा जाती हूॅ।

– एक बात...

– आप मुझ पर अब भी रंज है सिपाही जी !

–नहीं न ?

– देखिए, आपका बेटा आपके पास खड़ा है!

– देख मुन्ने जा रही हूॅ मैं!

– कहाँ तेरे उस पापा के पास, जिनके साथ तू अभी–अभी मढ़िया सुन्दरपुर हो आया है..."[2] इस प्रकार के स्थल चित्रण की मार्मिकता से पूर्ण हैं और साथ ही साथ पर्याप्त भाव पूर्ण हैं।

इसी तरह 'इमरतिया' उपन्यास का कथानक नागार्जुन के जीवन में घटित घटना से सम्बन्धित है। उपन्यास का प्रमुख पात्र बाबा है, और कथा बाबा के

---

[1] नागार्जुन– 'साक्षात्कार'– पृ०. ५३।
[2] नागार्जुन– 'उग्रतारा '– पृ० ६८–६६

इर्द–गिर्द घूमती है । बाबा कथा के केन्द्र में है और सारी घटनाएं उसकी परिधि पर चक्कर लगाती हैं। उपन्यास 'इमरतिया' (जमनिया के बाबा) की घटनाएं नागार्जुन के जीवन से सीधे–सीधे जुडी हुई है । अपने आत्मसाक्षात्कार सरीखे एक लेख में बाबा नागार्जुन स्वयं लिखते हैं– "तुम्हारी जटा बीस हाथ लम्बी थी, गोरखपुर के उस पारसी मजिस्ट्रेट ने तुम्हारी गिरफ्तारी के बाद पहला काम यही किया था कि जटा मुंडवा दी... इलाके में तुम्हारें ढोंग की तूती बोलती थी... नागा बाबा ने बुलहवा के बाबा की माया को पंक्चर कर दिया। गवाहों ने अदालत में कहा था। वह व्यक्ति मूलत. तमकुही का रहने वाला मुसलमान है, और भागकर नेपाल चला गया। वहॉ से साधु बनकर लौटा, काले चेहरे की लाल आँखे बार–बार मुझे घूर रही थी ।"[१] उपन्यास में जो अन्य स्थितियॉ, परिस्थितियॉ और प्रसंग है वह नागार्जुन की कल्पना शीलता तथा यथार्थ का मिलावट है। जो उपन्यास को ठोस आधार पर खड़ा करता है।

इस उपन्यास में कलात्मक रचाव का अभाव नहीं है। समाज के समिष्टगत आलेखन के कारण व्यक्ति चित्र के ओट में ही रह जाने की सम्भावना रहा करती है। परन्तु व्यक्ति–चित्रण के लिये लेखक ने नयी–शैली का उपयोग किया है। "कथा के संयोजन मे घटना की कमबद्धता के अनरूप न होने के बावजूद भी किसी प्रकार का बिखराव नही दिखाई पड़ता । घटनाओं का कथा में संयोजन इस प्रकार हुआ है। वह कि, पाठक की जिज्ञासा को कुरेदती है।"[२] 'हीरक जयन्ती' उपन्यास में नागार्जुन का पत्रकार–जीवन उभरकर सामने आया है। वे इस उपन्यास को रिपोर्टिंग शैली में प्रस्तुत करते है। देश में नेताओं द्वारा फैलाये जा रहे भष्ट्राचार, कुशासन, अनाचार की बखिया उधेड़ते है।

इस प्रकार हम देखते है कि इस उपन्यास में सत्ता और शासन के व्यामोह में फँसे नेताओं के कलुषित जीवन की सही शल्य–किया की गई है।

---

[१] अन्नहीनम् कियाहीनम्... –नागार्जुन, पृष्ठ १३५

[२] शिव प्रसाद मिश्र– नागार्जुन के उपन्यासो मे समाजिक चेतना, पृष्ठ न०– ८७

"यह रिपोर्टिंग शैली में नेतागीरी के कुचक्र में फँसे समाज के कलुषित व्यक्तियो के काले कारनामों का लेखा–जोखा इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। अतः यह कृति, लेखक की समाज के प्रति रचनाधर्मिता की माँग को पूरा करती है।"[१]

प्रत्येक उपन्यास कार के पास एक निश्चित कथा होती है। और उसी का विकसित और संयोजित रूप कथानक होता है। कथानक में कई पात्र और घटनाएं होती है। वस्तुतः विषयवस्तु में ही शिल्प–विधि के बीज निहित होते है, जिसके अनुरूप ही उपन्यास कार अपने शिल्प–विधि को अपनाता है। साहित्य और कला के साथ शिल्प–विधि का अन्त.सम्बन्ध उनके विकास में सहायक होता है। जीवन की विविधता के साथ–साथ साहित्य और कला की शिल्पविधियों में भी विविधता आती है। इस प्रकार साहित्य और कला रूढ़ नही रह पाते। जीवन नित्य परिवर्तन शील है और उसमे विविधता है। उसी तरह कला और साहित्य रूढ़ियों का अनुसरण नही करते और दुहराया जाना भी वहॉ स्वीकार नहीं है। इनके उपन्यासों में समान शिल्पविधियॉ के आलावा कुछ नवीन शिल्प–विधियाँ भी मिलती हैं।

क– मिश्रित फैंटेसी शिल्प–विधि के अन्तर्गत बाबा बटेसरनाथ को रख सकते है। यह विधि नयी है। और इसमे प्रयोगशीलता भी दिखलाई पड़ती है। जिसमें कई पीढियों का ऐतिहासिक दस्तावेज प्रस्तुत है।

ख– वर्णनात्मक शिल्प–विधि मे जहाँ उपन्यासकार अपनी कथ्य सामाग्री के साथ छूट लेता है वहीं कथानक के गठन और प्रभावशीलता की चुनौती का सामना करने की जोखिम भी उसे उठानी पड़ती है । वर्णनात्मक शिल्प–विधि मे नागार्जुन सिद्धहस्त हैं। प्रसंगानुकूल जो पात्र, कथा को वहन करता है, या नया मोड़ देता है, प्रायः वही कथा सूत्र को अपने हाथ में रखता है इस विधि में उपन्यासकार को व्यक्तिगत आरोपण से बचना चाहिए और नागार्जुन इससे बचते है। वे पात्र

---

[१] शिव प्रसाद मिश्र– नागार्जुन के उपन्यासो मे समाजिक चेतना, पृष्ठ न०– ८६

को मनःस्थितियों और क्रिया–कलापो पर हावी नहीं होते। इस प्रकार की आत्म–निरपेक्षता वस्तुतः वर्णनात्मक विधि की मॉग भी करती है। इसमे यथार्थ को देखने और अभिव्यक्ति करने की लेखक को मन चाही छूट है और साथ ही कथानक को संतुलित ढंग से साधने की जोखिम भी है।

नागार्जुन की सर्जना का पाठ भी बहुत चौंडा है, बहुआयामी है, बहुत विशद है। ठेठ परम्परागत ढंग की वर्णनात्मक शिल्प–विधि को नागार्जुन ने 'रतिनाथ की चाची', 'दुखमोचन', 'वरूण के बेटे', 'नयी पौध', आदि उपन्यासों में अपनाया है। दूसरी तरफ एक नयी विधि का प्रयोग 'उग्रतारा', 'कुंभीपाक', तथा 'हीरक जयंती' आदि उपन्यासों में है। जिसमे न केवल वर्णनात्मक शिल्प–विधि का प्रयोग किया गया है। अपितु साथ–साथ पात्रों की मनोवृति या अर्न्तद्वन्द्व को प्रकट करने के लिये बीच–बीच मे नाटकीय शिल्प–विधि का प्रयोग किया है।

यद्यपि शिल्प विधि का तरीका एक था तो भी 'दुखमोचन' और 'रतिनाथ की चाची' के निर्वाह में अन्तर है । जहॉ 'रतिनाथ की चाची' में चाची के वैधव्य के अभिशाप को दिखाना नागार्जुन का मूल घ्येय है। वहीं 'दुखमोचन' में केवल दुखमोचन नामक पात्र की समस्या को नही, बल्कि गॉव के पुनर्निमार्ण की केन्द्रीय समस्या इस उपन्यास का मूल कथ्य है। इस प्रकार पूरी कथा–योजना में दुखमोचन की दृष्टि से समस्याओं को देखते हुए भी समस्या किसी व्यक्तिगत चरित्र को लेकर नहीं उठायी गयी है। इसके बावजूद नागार्जुन की जीवन दृष्टि सर्वत्र मौजूद है। 'नयी पौध' उपन्यास मे तो लेखक आगे पीछे दोनों ओर चलता नजर आता है। कभी वो कथा स्वयं कहता है तो कही स्वयं पीछे हटकर पात्रों के मुँह से कथा का संचालन करवाता है।

'कुंभीपाक', 'उग्रतारा', 'हीरकजयन्ती', उपन्यासों में नागार्जुन ने वैसे तो वर्णनात्मक–शैली को ही अपनाया है मगर बीच–बीच में पात्रों के अर्न्तद्वन्द्व को प्रकट

करने के लिये नाटकीय शिल्पविधि को भी अपनाया है। 'उग्रतारा' में नागार्जुन नें प्रमुख पात्रों की दृष्टि बिन्दु से कथा कही है। दृष्टि बिन्दु मे परिवर्तन होता रहता है, एक पात्र से दूसरे पात्र में। कुंभीपाक भी वर्णनात्मक शिल्प–विधि के अंतर्गत आता है साथ ही छिटपुट नाटकीय शिल्पविधि, आत्मकथात्मक, विश्लेषणात्मक विधि का भी सफल प्रयोग है। नागार्जुन की एकदम नयी शिल्प–विधि का प्रयोग 'हीरकजयन्ती' उपन्यास में मिल जायेगा यद्यपि कथोप–कथन बेहद नाटकीय हैं। तो भी विविध शिल्पविधियों के प्रयोग से कथा में रोचकता व प्रभावशाली गहरापन भी है।

आत्मकथात्मक शिल्पविधि का प्रयोग 'बलचनमा' तथा 'इमरतिया' मे दृष्टव्य है। 'बलचनमा' का कथा नायक बलचनमा स्वयं है, जो अपनी कथा कहता है "चौदह वरस की उम्र में मेरा बाप मर गया। परिवार में मॉ दादी और छोटी बहन थी। अन्यत्र. .."[1] अन्यत्र "अगले दिन से मैं काम करने लगा। बतला ही चुका हूॅ, चौदह साल की उमर थी। यों खास काम मेरा भैंस चराना था। फिर भी और कई काम थे जैसे कि बच्चे को खेलाना, पानी भरना, बाहर बैठक में झाड़ू लगाना, दुकान से नून, तेल, मसाला लाना और मलिकाइन के पैर चॉपने..."[2] इस दृष्टि बिन्दु में परिवर्तन नहीं होता है। बलचनमा ही आरम्भ से अंत तक केन्द्र बिन्दु बना रहता है। वह जिसके विषय में जितना जानता है उतनी ही कथा कहता है, अपने विषय में अत्यधिक जानता है इसीलिए अपनी कथा ज्यादा कहता है। वह अपने प्रत्यक्ष अनुभवों के आधर पर कथा कहता है।

"जीवन के टुकड़ो को उठाकर उन्हे दृश्य रूप में प्रस्तुत करने की जो क्षमता उनके उपन्यासों में है। वह कई बार कविताओं में भी झलकती है।"[3] उनकी निरिक्षण क्षमता ऐसी है, कि वे आर–पार देख लेते हैं।

---

[1] नागार्जुन– बलचनमा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ०–५
[2] नागार्जुन– बलचनमा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ०–७
[3] प्रेमशंकर नागार्जुन रचना प्रसंग और दृष्टि पृ० ११३, संपादक रामनिहाल गुंजन, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद।

फैंटेसी की शिल्प–विधि जैसा अनूठा प्रयोग 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास में है। औपन्यासिक स्थापनाओं और नवीन–चरित्र प्रयोंगों के कारण भी इस उपन्यास को विशिष्ट कहा जा सकता है। नागार्जुन के सामने भारत के लगभग दो सौ वर्षों के इतिहास को प्रसतुत करने की मुख्य समस्या थी। इस दृष्टि से भारतीय जनता के दो सौ सालों के शोषण, अत्याचार और उत्पीडन को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए फैंटेसी शिल्प–विधि का चुनना स्वाभाविक भी लगता है। उन्होंने वट–वृक्ष का मानवीकरण कर दिया। और उपन्यास को अधिक रोचक व विश्वसनीय बना दिया। फैंटेसी की शिल्प–विधि के साथ नागार्जुन ने इस उपन्यास 'बाबा बटेसरनाथ' में वर्णनात्मक शिल्प–विधि के द्वारा वृक्ष के माध्यम से उपन्यास की मूल समस्या जमींदारों द्वारा किसानों की जमीन से बेदखली के कारण उत्पन्न वर्ग–सघर्ष को स्पष्ट दिखा दिया है।

केवल 'बाबा बटेसरनाथ' में ही नागार्जुन ने तीसरे अध्याय से लेकर नौवें अध्याय तक फैंटेसी शिल्प–विधि का प्रयोग किया है। यथा–

" घबराने की क्या बात है ? उस अद्‌भुत ने जैकिसुन की ठुडडी पर छूकर कहा,मैं तुम्हारें इस बरगद बाबा का अवतार हूॅं। डरने की कोई जरूरत नहीं आगे कुछ क्षण बाद वह बृद्ध व्यक्ति बरगद की ओर जाकर उसकी घनी शाखाओं में अदृश्य हो गया।"[१]

दशवें अध्याय में वर्णनात्मक शिल्प–विधि से जैकिसुन के अवलोकन–बिंदु से कथा पुनः आरम्भ होती है। इसे एक आलोचक ने नागार्जुन का शिल्पगत स्खलन कहा है, 'बाबा बटेसरनाथ' के दसवें परिच्छेद के बाद आत्मकथा प्रविधि छोड़कर स्वयं उपन्यासकार का किसानों के रूप में उतर पड़ना भी शिल्पगत स्खलन का उदाहरण है।

---

[१] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ, पृष्ठ १४।

२. उपन्यासों में चरित्रों की सृष्टि

उपन्यास विधा में कथानक और पात्रों में एक घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। इन्हें अलग–अलग करके नहीं देखा जा सकता। पात्रों के क्रिया–कलाप से कथानक का निमार्ण होता है। उपन्यासकार पात्रों के समस्त अनुभवों को एकत्रित करके कथानक का इस प्रकार संयोग करता है कि वह प्रमुख पात्र पर्यवेक्षक की भाँति अपने समस्त जीवनाभुव को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता चलता है, और फिर उपन्यास के पात्रों और मानव जीवन के पात्रों में विशेष अंतर नही रह जाता। मानवीय गुण–दोषों से सम्पत्र पात्रों की ही सृष्टि उपन्यासकार करता है। जिनमें स्वाभाविकता, संवेदनशीलता होती है और जीवन के मूल्यों को वहन करने की सामर्थ्य होती है।

उपन्यास के चरित्रों का वर्गीकरण करने पर प्रतिनिधि और गतिशील, दो चरित्र सामने आते हैं। नागार्जुन के उपन्यासों में दोनों प्रकार के चरित्र मिल जायेगें। यद्यपि नागार्जुन एक प्रगतिशील कथाकार है और प्रगतिशील कथाकार, युग के समूचे यथार्थ को व्यक्त करने के लिए विभिन्न वर्गो के चरित्रों की सृष्टि करते हैं इनमें व्यक्ति–चरित्र भी है। और प्रतिनिधि चरित्र भी। पर वे प्रतिनिधि चरित्र को सर्वाधिक महत्त्व देते है। इसके साथ ही साथ गतिशील चरित्रों के माध्यम से उनकी वैयक्तिक विशेषताओं को भी स्पष्ट रूप से प्रकट किया है। वर्गीय विशेषताओं के साथ प्रतिनिध चरित्र उपस्थित होता है । इनके चरित्र प्रत्यक्ष जीवन से लिए गये है। गढ़े हुए और काल्पनिक नही। यही कारण है कि नागार्जुन ने मिथिला का चरित्र–विकास उपस्थित किया है। सभी चरित्र मिथिला से सम्बद्ध है जो मिथिला का व्यक्त्वि विकास करते हैं। मिथिला के ग्रामीण जीवन से इनका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि हम इनके प्रत्येक उपन्यास में एक ऐसा आत्मीय भाव पाते हैं जो बहुत थोड़े कलाकारों को सुलभ हो पाता है।[१]

---

१ आधुनिक हिन्दी उपन्यास · उद्‌भव और विकास –वेचन, पृ० २०६

इनके ज्यादातर चरित्र भी प्रत्यक्ष जीवन से लिए गए है। प्रेमचन्द की तरह उनके कुछ चरित्र तो जातीय विशेषताओं से सम्पत्र दिखाए गये हैं– 'गौरी' (रतिनाथ की चाची), 'बिसेसरी' (नई पौध), 'भगौती', 'सेठ विर्घीचन्द' (जमनिया के बाबा), 'अभिनन्दन' (हीरक जयंती) के सारे के सारे पात्र इसी प्रकार के हैं। किन्तु पारो, उग्रतारा, चम्पा मस्तराम, भुवन, इमरतिया जैसे पात्रों का महत्व उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं के चलते है। 'कुम्भीपाक' में चम्पा का स्वप्न–चित्र दृष्टब्य है जो, उसकी पिछली जिंदगी से छनकर फ्लैश बैक शैली में आया है।

– "मगर अब की लौटकर जो पाकिस्तान गई तो सफदर फिर कभी लौटने नही देगा।

– पीट–पीटकर दुम्बा बना डालेगा?

– बस, ज्यादा मत सोचों! भाग चालो चम्पा......

– लेकिन बच्चों को छोडकर एक मॉ के पैर उठेगे?

– जहन्नुम में जाओ!,

– बच्चे... शकुन्तला और विजय!

– मेरी कोख जल नहीं गई है, बच्चे फिर हो जाएँगे... हिन्दुस्तान में रहूँगी तो

– कभी उस गॉव की मिट्टी छू सकूँगी। जहॉ जन्म हुआ था।

– समय नहीं है मै जल्दी करती हूँ।"

प्रतिनिधि चरित्रों की सृष्टि नागार्जुन के उपन्यासों की रीढ़ है। 'बलचनमा' (बलचनमा), दुखमोचन (दुखमोचन), जीवनाथ, जैकिसुन (बाबा बटेसरनाथ) मोहन मॉझी (वरूण के बेटे) दिगम्बर (नई पौध) आदि प्रतिनिधि चरित्र ही नही वरन् हिन्दी उपन्यास–साहित्य के अमर चरित्र भी है इन प्रतिनिधि चरित्रों के साथ नागार्जुन की पूर्ण सहानूभूति दृढ़ आस्था है। जिनके कंधों पर समाज के नवनिर्माण का दायित्व भी है नागार्जुन के अपने जीवन और व्यक्तित्व की झांकी उनके उपन्यासो के प्रमुख पात्रों मे देखी जा सकती है। वे पात्रों के साथ कहीं–कहीं तो एकमेव का संयोजन स्थापित

कर लेते है। डा० रणवीर रांग्रा को दिये साक्षात्कार में स्वयं नागार्जुन ने इस बात को स्वीकार किया है। "ये जो दुखमोचन है, या जयनाथ है, या मोहन मॉझी है या हमारे अन्य पात्र हैं, उनमें मेरी कुछ–कुछ झाकियॉ मिल सकती हैं, लेकिन कोई एक समूचा पात्र ऐसा नहीं मिलेगा।"[1] पाश्चात्य लेखक जुलियन ग्रीन भी कहते है। "कोई भी उपन्यासकार जब किसी पात्र का सृजन करता है। तो स्वयं उसके माध्यम से विलक्षण घटनाओ से पूर्ण एक दूसरा जीवन जीता है। वह उपन्यास के एक काल्पनिक पात्र का सृजन नहीं करता अपितु स्वयं के ही रक्त और मांस से एक नये जीव का निमार्ण करता है । जिसमें उसी की भॉंति अनुभूति–क्षमता होती है। और जिसके जीवन की प्रत्येक घटना को मूल रूप से वह उपन्यासकार स्वयं भोगता है।"[2]। यह स्वाभाविक ही है। कि उपन्यास लेखक आत्म–प्रकाशन ही नही आत्माभिव्यक्ति के कारण अपने कार्य में प्रवृत्त होता है। एक फांसीसी पत्रकार के जबाब में डाक्टर जॉनसन ने कहा था। मूर्खो को छोड़कर कोई भी केवल पैसे के लिए नही लिखता।

'बलचनमा' उपन्यास का प्रतिनिधि चरित्र बलचनमा है। वह खेतिहर मजदूर वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है । ये लोग मालिक के घरों के जूठन खाकर बड़े होते है। जैसा कि बलचनमा स्वयं व्यक्त करता है "बचपन में मालिक लोगों की बहुत जूठन मैनें खाई है। बल्कि यो कहूँ कि अच्छी चीज जो भी खाई होगी वह बाबू लोगों की जूठन रही होगी।"[3] बलचनमा केवल चरवाहा ही नही था। अपितु मालिक का पुस्तैनी गुलाम भी था क्योकि उसके बाप के मरने पर मालिक ने बारह रूपये उसकी मॉ को कर्ज दिये थे जिसे भरते–भरते उसकी एक दो पीढ़ी समाप्त हो जायेगी पर मूल ज्यों का त्यों बना रहेगा। बलचनमा की इस गुलामी का एक चरित्र है तो दूसरा वर्गीय संघर्ष वाला चरित्र; वह अपने वर्गीय शत्रु के विरुद्ध खड़ा होता है तो कहता है

---

[1] साहित्यिक साक्षात्कार – डॉ रणवीर रांग्रा, प्र० १६७–६८
[2] ए नॉवलिस्ट विगिन्स– जूलिय ग्रीन, पृ० ४८
[3] नागार्जुन– बलचनमा वाणी प्रकाशन– पृ० १८

"अपनी सारी ताकत को तेरे विरोध में लगा दूँगा। मॉ और बहन को जहर दे दूँगा, लेकिन उनको तू अपनी रखैल बनाने का सपना कभी पूरा न कर सकेगा।"[1]

बलचनमा में हमारी मुलाकात एक ऐसे व्यक्ति से होती है जो हमसे मुलाकात होने के साथ ही गहरी आत्मीयता स्थापित कर लेता है और हम उसकी कहानी सुनने लगते हैं। यह आत्मीयता पाठक की उस सामाजिक सहानुभूति के चलते है, जिसे यह लेखक पकड़ सका है। बलचनमा को प्रेमचंद के गोदान के गोबर का अगला 'प्रतिनिधि–चरित्र' कहा जा सकता है। वह इस सन्दर्भ में तुलनीय है कि सदैव ही उसका मन अपने मालिको के प्रति आक्रोश से भरा रहता है। गोवर का मन भी विद्रोह की चिनगारी से सुलगता रहता है। "तो फिर अपना इलाका हमें क्यो नही दे देते! हम अपने खेत, बैल, हल, कुदाल सब उन्हे देने को तैयार है। करेंगें बदला? यह सब धूर्तता है, निरी मोटमरदी।"[2] बनलचनमा के आरंभ में मालिक के द्वारा उसके बाप की पिटाई और अंत में स्वयं बलचनमा की पिटाई खाकर बेहोशी की स्थिति में जमीन पर लुढ़क जाना उसके चरित्र का अधूरापन नहीं है, वह अपने आप में पूर्ण चरित्र है। परिस्थितियों के अनुसार स्वयं नागार्जुन इस चरित्र को आगे न बढ़ाकर उससे अगली पीढ़ी को अधिक महत्व देना चाहते है, क्योंकि "बलचनमा की कहानी तो चालीस साल पीछे छूट गई। वह तो कही का पंच बन गया होता, उसकी तोंद निकल आयी होती। इसमें बलचनमा को रिपीट नही करेंगे अगली पीढ़ी को पिकअप करेंगे।"[3]

एक मुँह लगे पाठक के यह पूछने पर कि बाबा। आपका बलचनमा अब कहॉ होगा? नागार्जुन में विक्षुब्ध स्वर में कहा था। "होगा साला कही किसी ग्राम पंचायत का सरपंच बना बैठा। लेखक के इस उत्तर से सुराग मिलता है कि उसने अपने

---

[1] नागार्जुन– बलचनमा, वाणी प्रकाशन– पृ० ७४
[2] गोदान– मुंशी प्रेमचंद, अनीता प्रकाशन, पृ०–१८
[3] साहित्यक साक्षात्कार– डॉ रणवीर राग्रा, पृ० १६७ – ६८

चरित्रों से क्या उम्मीद की थी और सामाजिक जीवन के बीच पडकर वे क्या से क्या हो उठते हैं।"[१]

नागार्जुन के उपन्यासों में वर्गीय चरित्र–सृष्टि में ऐसे चरित्रों की भरमार है जो निम्न वर्ग या शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। मोहन मॉझी 'बरूण के बेटे' भी श्रमजीवी वर्ग का ऐसा ही प्रतिनिधि पात्र है। नागार्जुन के शब्दो में "अब वह हंसिया–हथौड़ा मार्का वाला लाल झंडा वाली किसान–सभा का थाना किसान सभापति था। इससे पहले प्रजा समाजवादी पार्टी की जिला कमेटी का सदस्य था। कम पढ़ा–लिखा होने पर भी समझ पैनी थी और ईमानदारी के तो भला क्या कहने।"[२]

ईमानदारी ही श्रमजीवी–वर्ग की पहचान है मगर अपने अधिकारों के प्रति सचेत ! मोहन मॉझी जैसे पात्र उपन्यास के आरंभ से लेकर अंत तक इसी वर्ग–चरित्र को चरितार्थ करता दिखाई देते है। उनका विश्वास और आस्था अंत तक समाजवाद में बनी रहती है। ध्यान देने योग्य बाते है। कि प्रेमचंद के होरी, गोबर जैसे चरित्र की तरह नागार्जुन के चरित्र रूढ़िवादी और धर्मभीरु नहीं हैं। ये प्रगतिशील किसान पात्र हैं और यह प्रेमचन्द और नागार्जुन के बीच के समय का अंतराल है। 'बाबा बटेसरनाथ' में भी जीवनाथ और जैकिसुन ऐसे ही चरित्र है जिनकी आस्था समाजवादी विचारधारा में है। वे भी समझ गये थे कि अदालत केवल इन दुष्टो का निवारण नहीं कर सकती वे जन–आंदोलन को जन–संघर्ष को जिला एवं प्रदेश व्यापी धारा से मिला देना होगा।

"ऐसे पूर्ण मानव चरित्र की जिससे बुर्जुआ–वर्ग के उपन्यासकार मुँह मोड़ चुके हैं प्रतिनिधि मानव की, हमारे युग के नायक की, रचना करना क्रांतिकारी

---

[१] नागार्जुन और उनको रचना संसार – विजय बहादुर सिंह पृ० १३६
[२] वरूण के बेटे, पृ०१४

उपन्यासकारों का काम है, जो समाजवाद में आस्था रखता है।"[1] ऐसे क्रांतिकारी मानव चरित्रों की सृष्टि नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में किया है।

उनके कुछ उपन्यासों में युवा–वर्ग के चरित्र को प्रतिनिधित्व की छड़ी लेकर चलते दिखायी पडता है। जैसे 'नई पौध' के दिगम्बर मल्लिक, वाचस्पति, माहेश्वर झा, बलभद्र मिश्र और टुनाई आदि युवा–वर्ग के प्रतिनिधि चरित्र है। दिगम्बर मल्लिक का चरित्र नागार्जुन कुछ इस प्रकार व्यक्त करते हैं। "वह काफी चतुर तो था ही, धनी घर का लडका होने से लोग उसे आदर और गौरव की दृष्टि से देखते थे। नौजवानों पर भी अच्छी धाक थी। धन या शिक्षा ने दिगम्बर के अंदर घमंड उस मात्रा में नही भरा था, जिस मात्रा में नम्रता उसमें जितनी शालीनता और नम्रता थी, उतनी दृढता भी। इसलिए अन्याय के प्रति वह संघर्ष भी करने को तैयार है। नौजवानों का स्वयं निर्वाचित नेता होने से एक साथी की समस्या को सुलझाना वह अपना फर्ज समझने लगा।"[2] युवा–वर्ग का एक नया चरित्र महेश्वर झा भी है। "वह अपने बाप से चार कदम आगे था, सूझ बूझ में भी और जीवट में भी। उसके वाह्य रूपाकार का चित्र उपन्यासकार ने कुछ इस प्रकार खीचा है "था तो खूबसूरत, मगर कपार पर बाई ओर घोड़े के खुर का निशान था, बचपन में चोट लगी थी अठारह साल की उमर थी। खोखा पंण्डित की निगाहों में वह भले ही कांटा हो दूसरे सभी उसे प्यार करते थें"[3]

कहने का आशय है कि 'नई पौध' उपन्यास के सभी नवयुवक पात्र युवा–वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले चरित्र है। नागार्जुन नें प्रतिनिधि चरित्रों के साथ–साथ विकासशील चरित्रों की भी सृष्टि की है। गतिशील या विकासशील चरित्र से आशय उस चरित्र से होता है जो निरंतर चारित्रिक विकास करते है। जैसे– गौरी एवं

---

[1] उपन्यास और लोक–जीवन– राल्फ फॉक्स, पृ० ६१।
[2] नागार्जुन– नयी पौध, पृ० १५।
[3] नागार्जुन– नयी पौध, पृ० १५।

ताराचरण (रतिनाथ की चाची), भोला, खुरखुन, मधुरी (वरूण के बेटे), फूलबाबू, राधा बाबू (बलचनमा), दयानाथ (बाबा बटेसरनाथ), वेणीमाधव, कपिल और माया (दुखमोचन) विश्वेसरी, टुनाईपाठक (नई पौध) चम्पा, निर्मला (कुंभीपाक), पंजोदेवी, माधवी, नगेन्द्र (हीरक जयन्ती) भभीखन सिंह, कामेश्व सिंह (उग्रतारा), इमरतिया, मस्तराम (इमरतिया) आदि पात्र है।

इस प्रकार इन कुछ चरित्रों के आधार पर गतिशील चरित्रों का विश्लेषण किया जा सकता है। गौरी और ताराचरण दोनो गतिशील पात्र है। केवल ताराचरण के सम्पर्क में आने पर ही गौरी का चरित्र एक सामान्य विधवा के चरित्र से ऊपर उठ जाता है। अब वह देश दुनिया की बाते भी करती है। जैसा कि वह ताराचरण से कहती है– "मैं पढी लिखी नहीं मगर इतना समझती हूँ कि पच्चीस साल से रूस वालों ने अपने यहॉ जो नया संसार बसाया है, उसके अंदर जाकर राक्षसों की बडी से बड़ी फौज भी मात खा जायेगी।"[१] यह एक ब्यापक चरित्र का विकास हुआ है।

खुरखुन और मधुरी भी अनपढ़ मछुआरे है, मगर जीवन की परिस्थितियों ने इन्हें समझदार और वर्ग चेतना से युक्त बना दिया है। इसी तरह 'बाबा बटेसरनाथ' में दयानाथ असहयोग आन्दोलन तोड़ने में सबसे आगे था। मगर जब दयानाथ का कांग्रेस से मोहभंग हो गया जैसा कि नागार्जुन लिखते है। "गॉधी जी की अहिंसा में तो खैर तब भी दयानाथ को आस्था नहीं थी और अब तो बेचारी अहिंसा को खुद ही कांग्रेस वालों ने विनोबा के अनाथालय में भेज दिया है। अब उसकी धारणा पक्की हो गयी है। कि राजनीति गरीबों और मूर्खो के लिए नही हुआ करती, वह तो बस खातें–पीते सयानों की चौपड़ है।"[२] तथा "दयानाथ अब किसान सभा के लीडरों से बात करने जा रहा था।"[३]

[१] नागार्जुन–रतिनाथ की चाची, पृ० १५०

[२] बाबा बटेसरनाथ– राजकमल प्रकाशन, पृ० १४०

[३] बाबा बटेसरनाथ– राजकमल प्रकाशन, प० १७७

'कुभीपाक' की चम्पा भी ऐसा ही गतिशील चरित्र है जो शादी के बाद विधवा हो गयी थी। परिस्थितियों ने उसे वेश्याओं जैसा जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य कर दिया। मगर वह सर्वहारा स्त्री हिम्मत नहीं हारी, आशा की किरण उसे मिली। भुवन से प्रेरणा लेकर इस कुम्भीपाक नरक से मुक्ति पाती है। अब तो चम्पा ने टाइप करना भी सीख लिया है। और राजा साहब के सहयोग से उसने संजीवन आश्रम को आश्रयहीन महिलाओं का सहयोगी केन्द्र बना दिया। वह आश्रम शब्द से बहुत घबराती हैं क्योकि उसे वह अनैतिकता के अड्डे व स्वार्थियों के अखाड़े कहती है। इसीलिए वह संस्था का नाम बदलकर "आश्रयहीन महिलाओं का सहयोगी श्रमकेन्द्र"[१] करती है। और आश्रम के बाहर मकान पर एक 'गृह–शिल्प कुटीर' की तख्ती लटका दी गयी। इसी उपन्यास में एक अन्य गतिशील चरित्र है वह है निर्मला! जो कम्पाउन्डर मुंगेरीलाल की पत्नी है। वह एक बहादुर और तेज स्त्री है। जिसने भुवन को कुम्भीपाक से मुक्ति दिलायी है। लेकिन निर्मला जैसे चरित्र के साथ नागार्जुन न्याय नहीं करते। जिसके इर्द–गिर्द कहानी घूमती हो, जो इतिहास व समाज से लड़ता हो, उसे स्टेज पर वह स्थान न देना कितना अखरेगा।

इस प्रकार नागार्जुन नें अपनें उपन्यासों में शिल्पगत–विकास में चरित्रों की दृष्टि से गतिशील चरित्रों और स्थिर चरित्रों दोनों तरह के चरित्रों की सृष्टि की है। कुछ आलोचकों नें आरोप भी लगाये कि नागार्जुन ने अपने कुछ प्रतिनिधि एवं गतिशील चरित्रों का समुचित विकास नही करते हैं, यह सही भी है क्योंकि वे अपने चरित्रों का सामना करने से डरते है

"बलचनमा से डरता हूँ, वरूण के बेटों से डरता हूँ, दुखमोचन और रतिनाथ की चाची, रतिनाथ, और वाचस्पति और पद्मांनद और मोहन मांझी से डरता हूँ। कम्पाउन्डर की उस बहादुर बीवी से डरता हूँ। उसका खयाल आते ही माथा दर्द

---

[१] नागार्जुन– कुम्भीपाक, पृ० ११४

करने लगता है कि बेचारी के प्रति मुझसे भारी अन्याय हो गया। रात को जब लोग सो जाते है । तब अक्सर मेरा बालचंद आकर सिरहाने खड़ा हो जाता है।"[१]

नागार्जुन को डर तो होगा ही क्योकि ये पात्र चरित्र जब न्याय मागेंगे और नागार्जुन ने इन के साथ पूर्णतया न्याय किया नही और अविकसित रूप में ही छोड़ दिया।

नागार्जुन की भाषा–शैली

अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम 'भाषा' होती है। यह अभिव्यक्ति किसी व्यक्ति के इच्छाओं, आशाओं, –आकांक्षाओं, भावों और विचारों की ही होती है। इस प्रकार शैली का सम्बन्ध भाषा से भी होता है, जब रचना में भाषा–शैली पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। तो उसका अर्थ यही होता है कि रचना में भाषा–प्रवाह कैसा है? भाषा अलंकृत है या व्यंग्यात्मक है या फिर सहज और सरल भावों को व्यक्त करती है। इन बिन्दुओं पर ध्यान किया जाता है।

नागार्जुन की भाषा में हमेशा अपनी लोकल और फिर शास्त्रीय (संस्कृत, बंग्ला, खड़ी बोली, उर्दू) आदि भाषाओं का अद्भुत मिला–जुला रूप है इसीलिए उनके गद्य में एक ताजगी और जीवन्तता है। पिटा हुआ और सायास गद्य नागार्जुन का नही है। भारतीय जन साधारण की भाषा हिन्दी है, जन–साधारण की आशा, आकॉक्षा तथा दुःख–सुख को अभिव्यक्ति देने वाला साहित्य, जन–साधारण का साहित्य कहलाता है। और वह अपने जातीय स्वरूप को अभिव्यक्त करता है– "क्योंकि भाषा की तराश या बुनावट के लिए इलाहाबाद की भाषा को हम प्रमाण मानते है। घुमंतू जीवन रहा, तो जगह–जगह के मुहावरे भी लिए हैं। जो मजदूरो को सुनानी है। उसमें शब्दों की कसावट को ढीला कर दिया है।"[२]

---

[१] नागार्जुन– अन्नहीनं कियाहीन, पृ० १३३

[२] विजय बहादुर सिंह– नागार्जुन का रचना ससार, पृ० १७६

नागार्जुन के उपन्यासों की प्रमुख भाषा का स्वरूप खडी बोली है। खड़ी बोली का क्षेत्र कितना विस्तृत और विविध है कि आज भी उसका कोई सुनिश्चित स्वरूप तय करना दुष्कर लगता है। उत्तर–प्रदेश, बिहार, हिमांचल–प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, कोलकाता, मुम्बई तथा हैदराबाद जैसे महानगरों में वह ऑचलिक ध्वनियों और प्रादेशिक छापों से युक्त है। एक ही शब्द दो विभिन्न आकार ग्रहण करता है। इलाहाबाद में एक तो, दरभंगा में दूसरा ध्वनि ग्रहण कर लेता है। फलतः नागार्जुन जहॉ विवरण पेश करते है। वहॉ वो इलाहाबादी परिनिष्ठित खड़ी बोली से काम लेते है, किन्तु यात्राओं की दुनिया में उतरते ही वे उनकी बोलियों के अंदाज को भी पकड़ लेते है। 'वरूण के बेटे' में बंगाली–बाबू की हिन्दी का नमूना दृष्टव्य है–

"घो घोन, छेड़ दाओ (छोड दो), हिआं (यहाँ) आ जाओं– हम डी०टी०एस० का फोन करता है,... बिहान सुबह मिलिटरी आएगा तब मॉब को लेसन देगा (भीड को सबक सिखायेगा), ...हुआँ (वहॉ) जास्ती देर मत ठहरा (खड़ा) रहो रे बुड़बक (भोंदू)"[१] 'कुंभीपाक' में नेपाली नौकर दिवाकर शास्त्री से कहता है– "हुजूर खाना तइयार है।"[२]

"कम्पाउण्डर की बीबी ने दिल ही दिल मे अपने से कहा– "छिनाल कहीं की। उड़ती चिड़िया की पूँछ में हल्दी लगाने वाली रॉंड़ ! किस कदर बात बनाती है।

फूफा जी पोष्टमास्टर थे ! मामा मिनिस्टर थे ! चुडैल कही की !"[३] "हमारे दफतर में चौंदह ठो दैनिक आता है। सात ठो वीकली।"[४]

अभिनंदन (हीरक जयंती) का यह वाक्यांश –" सरकार (ललन जी की कुर्सी के पीछे खडा होकर) ए गो बाबू आपको चाल पाड़तें हैं, उनको यहीं ले आवें हुजूर?"[५]

---

[१] नागार्जुन– वरूण के बेटे, पृ० ६४
[२] नागार्जुन– कुम्भीपाक, पृ० ६६
[३] तदेव, पृ०, २०
[४] तदेव, पृ०, १४

भाषा का वर्ग चरित्र नही होताः यह सच है। हिन्दी क्षेत्र के शोषको और शोषितो की भाषा हिन्दी है। इसके बावजूद भाषा पर वर्गीय चेतना और संस्कार का असर पड़ता है। वास्तव में शोषक वर्ग उत्पादन और श्रम की प्रक्रिया में भाग नही लेता। इसलिए इस वर्ग की भाषा की बनावट और उसका मिजाज उत्पादन एवं श्रम की प्रक्रिया में शामिल होने वाले मेहनतकशों से भिन्न होते है। नागार्जुन ने भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण गद्य–भाषा के संस्कार मेहनत कश जनता से प्राप्त किये जाते है। चूँकि नागार्जुन इस शोषणमूलक समाज के निमार्ण के संघर्ष में शामिल है। इसीलिए वे भाषा के मान्य अभिजात्य को तोड़ते हैं। अज्ञेय और नागार्जुन की भाषा में फर्क है, इसका कारण दोनों के सामाजिक लगाव एवं प्रतिबद्धता के फ़र्क में ही निहित है। अज्ञेय की भाषा में अभिजात्य है । प्रसाद, पंत, महादेवी की भाषा भी इसी तरह की है।

हिन्दी उपन्यास की भाषा को अभिजात्यवर्गीय रूप–रंग से मुक्त करने का श्रेय सबसे पहले जिन लोगों को है उनमें नागार्जुन का स्थान सर्वोपरि है। नागार्जुन मिथिलांचल के जातीय प्रभाव से ही जुड़े थे। यही से उनके साहित्य की जातीयता की अलग पहचान बनती है। इसीलिए नागार्जुन के उपन्यासों में भाषा का स्वरूप मैथिल जनपद की विशेषताओं से आपूरित है। डॉ० रणवीर रांग्रा को दिये साक्षात्कार में नागार्जुन स्वयं कहते हैं। उनके उपन्यासों में भाषा के पीछे ऑचलिकता का माहौल रहता है–

"जिसे मैं धरती का माहौल कहता हूँ" फिर भी वे आँचलिक शब्दों के अतिशय प्रयोग से खुद को बचाये रख पायें है। कारण अगर कुछ ऑचलिक शब्द आ भी गये हों तो उन्होंने उनके अर्थ फुटनोट में दे दिये है। यथा–

---

[१] नागार्जुन– अभिनंदन, पृ० १००

इसलिए वाक्य प्राय. छोटे–छोटे होते है। उस क्षेत्र के जीवन की कार्यशीलता को भाषा के माध्यम से ही जानना संभव होता है।। इस दिशा में शमशेर सिंह नरूला का यह कथन ध्यातब्य है– "भाषा स्वयं जीवन का स्वाभाविक फल है चूँकि जीवन उसे उत्पन्न करता है। अतएव वही उसका पालन पोषण भी करता है। किसी भी भाषा को उसे बोलने वाली जनता से अलग हटाकर स्वतंत्र इन्द्रियातीत समझना भूल है। उसकी जडें जन–जन की चेतना में गहरायी तक पहुँचती रहती हैं। सत्य तो यह है कि भाषा कार्यरत जीवन और सक्रिय जीवन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।[1]

इसी सन्दर्भ में डा० विद्यानिवास मिश्र का यह कथन दृष्टव्य है कि, "रचने की प्रक्रिया का बोध भाषा से उदित होता है। जिन्हें अपनी भाषा नहीं मिली वे ज्ञानात्मक परजीवी हैं। ओढ़े हुए यथार्थ पर निर्भर हैं और समाज की जटिलताओं को समझने में असमर्थ है।"[2]। ऑचलिक उपन्यासों की भाषा बनावट के मुख्यतः तीन रूप परिलक्षित होते है। जिसमे सामाजिक और भौगोलिक बोली सहज ही समाविष्ट है–

१– साहित्यिक तत्सम् प्रधान भाषा

२– समान बोलचाल की भाषा

३– ॲचल विशेष की बोली– जनपदीय भाषा

१– नागार्जुन के उपन्यासों में साहित्यिक तत्सम प्रधान भाषांश

नागार्जुन की मातृ–भाषा मैथिली है, और उनकी मैथिली भी ठेंठ है। उनके उपन्यासों में अनेक ऐसे स्थल हैं जिनमें साहित्यिक काव्यमयी भाषाओं का प्रयोग हुआ है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि उनके भाषा भेदों में से लक्षणाशैली का बहुतायत में प्रयोग हुआ है और स्थलीय सौन्दर्य अधिक प्रभावी बन पड़ा है। यथा–

"खुशी में पागल आदमी वहॉ आता और आगे के लिए योजनाओं के सुनहले

---

[1] शमशेर सिह नरुला– हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओ का तुलनात्मक इतिहास, पृ०३४ ।

[2] डा० विद्यानिवास मिश्र– धर्मयुग, ७–१३ मई १९७८ ई०।

लड्डू बनाया करता। विपत्ति का पहाड जिसकी गर्दन तोड़ रहा होता, वह बेचारा भी यहाँ आता और दृढता के सबक लेता। प्रेमी आता, प्रेमिका आती। रात के अँधेरे में चोर आया करते रूपयों की उमस से परेशान कंजूस, सास की खुराफातों से पेरशान बहुएँ, गणित के सवालो से परेशान स्कूली लडके, साझेदारों की साजिशों से परेशान गृहस्थ, महाजन की बेईमानियो से ऊबे गरीब किसान, कुर्की का समन पाकर बौखलाई हुई विधवा, प्रायश्चित के पचडे मे पडकर धर्मशास्त्री, पंडित से डरा हुआ अछूत, गार्जियन की निगरानियों से तंग आया हुआ नटखट छोकरा, कौन नही आता बटेश्वर बाबा के पास और कौन नही यहाँ आकर अपने को ताजा महसूस करता।"[1]

ऐसे ही बाबा बटेसरनाथ में कुछ और स्थल है जिनसे काव्यात्मकता झलकती है "रात आधी बीत चुकी थी। प्रकृति बिल्कुल नीरव और निस्पन्द लगती थी। पूर्णिमा की प्रौढ़ चाँदनी समय संसार को अपने स्नेह–पाश में ले चुकी थी। चंद्रमंडल मध्य आकाश के नील सागर में दमक रहा था।"[2]

"आश्विन की पूर्णिमा आ पहुँची। धान की मंजरियों के सूक्ष्म सुरभित फूल अपना मंद मधुर परिमल शरद समीर को लुटाने लगे। अब उनसे दूधियाँ दाने निकल आये नुकीले दानों वाली बालियों का यह विचित्र वैभव हेमंत की अगवानी में अभी से झूम उठा।"[3]

उपयुक्त अवतरणों में नागार्जुन ने भाषा का जो रूप दर्शाया है उससे उनके कवि व्यक्त्तिव का परिचय स्वाभाविक लगता है।

नागार्जुन की भाषा उनके कवि रूप मे और भी निखरती है, 'बादल को घिरते देखा है'। कविता मे तत्सम प्रधान भाषा में भी एक वाक्यांश है। 'मृगछालों पर पलथी मारे', जिसमें 'पलथी' शब्द मैथिली से आकर पद्मासन को अपदस्थ करके हिन्दी को

---

[1] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ, राजकमल पेपर बैक्स, पृ० ६

[2] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ, राजकमल पेपर बैक्स, पृ० ५३।

[3] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ, राजकमल पेपर बैक्स, पृ० ११४।

समृद्ध कर रहा है। इसी प्रकार की भाषा उपन्यास 'बाबा बटेसरनाथ' में भी मिलती है।

"सचमुच झींगुरो की एक तार आवाज पूर्णिमा की उस नीरव रजनी को और भी गम्भीर बना रही थी। यों तो रात डेढ़ पहर से ज्यादा नहीं बीती होगी परन्तु ऐसा लगता था। कि निशीथ के क्षण आ पहुँचें स्निग्ध, शीतल एवं धवल पांडुर आलोक धरती को दिग् दिगंत तक उद्भासित कर रहा था। नीचे पृथ्वी, ऊपर आकाश दीप्त प्रकृति का उत्तर परिवेश वह क्या था? मीर मांत की रजनी का सौभाग्य श्रृंगार था मानों...।[१] इसी तरह 'कुंभीपाक उपन्यास में प्रकृति की मनोहारिकता का चित्रण भाषा–सूत्र में बॉधकर किस प्रकार दृष्टव्य बन गया है। "लगता था कि सूर्य कि किरणों के लिए कोई आकर लक्ष्मण–रेखा खींच गया है।। दुपहर के बाद वे सहम सहम कर अन्दर झाँकती । घड़ी आधी घड़ी के लिये दरस दिखाकर लापरवाही से सिर के आँचल की तरह सिसकती जाती, पीछे हटती जाती, क्वार की कछार में नदी की लहरो की तरह।"[२] अन्यत्र ' मगर आज तो शिशिर को प्रकृति ने सभी के लिए साम्ययोग उपस्थित कर दिया था।'[३] 'सहानुभूति से लगातार सींचा हुआ ह्रदय ही वो भूमि है। जहॉ विश्वास का अंकुर फुटता होगा।'[४]

'समझदार और सुन्दर नौजवान कारखाने में नहीं ढलतें है। देवी जी ! समाज जिनको वापस लेने के लिए तैयार नही होता, उन लड़कियों के लिए दुनियाँ गेद का मैदान है, सौ ठोकरों के बाद भी निश्चय नहीं कि गोल पर पहुॅच ही जायेगी।'[५]
'क्लर्क, व्यापारी और शिक्षक हुस्न की झील में तीनों गोतें खाने लगे।'[६]
"प्यार और सहानुभूति कब किसके हृदय में छलकनें लगेगें कहा नहीं जा सकता।"[७]

---

[१] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ, राजकमल पेपर बैक्स, पृ० २०।
[२] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ, राजकमल पेपर बैक्स, पृ० ११४
[३] नागार्जुन– कुम्भीपाक, वाणी प्रकाशन पेपर बैक्स, पृ० ७
[४] नागार्जुन– कुम्भीपाक, वाणी प्रकाशन पेपर बैक्स, पृ० ८
[५] नागार्जुन– कुम्भीपाक, वाणी प्रकाशन पेपर बैक्स, पृ० ४३
[६] नागार्जुन– कुम्भीपाक, वाणी प्रकाशन पेपर बैक्स, पृ० ८६
[७] नागार्जुन– कुम्भीपाक, वाणी प्रकाशन पेपर बैक्स, पृ० ६३

'साहित्यकार का स्वाभिमान एक तरफ और लाभ की आशा में झूलने वाला हिसाबी विवेक दूसरी तरफ.... दोनों में खींचतान होने लगी।'[1]

इन उपर्युक्त पंक्तियों में साहित्यिक क्लिष्ट भाषा का परिमार्जित रूप परिलक्षित होता है। इसमें काव्यात्मकता स्पष्टतः दर्शित होता है। आगे कुछ और ऐसे ही स्थल हैं जिनसे नागार्जुन की भाषा शैली का रूपायन होता है।" सत्ता और अवसर–वादी राजनीति ने जिन पर नयी कलई चढ़ा दी है। जमींदारों के वंशज किस किस्म का नैवद्य किस तरह स्वीकार करते है। और फिर भक्तजनों कि कामना किस रूप में फलती है, सुमंगल कि बातों से मनबोध लाल को इस सिलसिले में थोड़ा बहुत मालूम हुआ।"[2] आज वो नये सिरे से सुहागिन बनी थी उसकी मॉग में आज नये सिरे से सिंदूर भरा गया था। अपनी पसन्द का युवक ही उसका पति बना था आज। कल तक कामेश्वर उगनी का प्राण वल्लभ था, आज वो उसका सब कुछ था। अन्दर पल रहे चार महीने भ्रूण को उसकी निश्च्छल आशीष मिल गई थी,.....। "[3]

"फतूरी का मन कर रहा था कि प्रधान पाहुने कि चुप्पी टूटे। लेकिन वह तो एकदम हतप्रभ और मौन बैठा था। पाल्थी पर केहुनी थी। और बँधी मुठ्ठी पर ठुड्डी टिकी हुई थी। दृष्ट सामने जीमड़ के खूँटे पर।"[4]

"ढहलेलवा बैठके के छोर पर खॅमेली से अपनी पीठ टिकाये नीद के झकोरें लेने लग गया था, फिर निचले होठ का मध्यप्रदेश तार–तार लार टपका रहा था उसका। जॉघ पर की धोती भीग रही थी।"[4]

सुगठित सुगढ साहित्यिक भाषा शैली का उत्कृष्ट उदाहरण जिसमें स्वस्थ शिक्षित मानसिकता को उद्घाटित किया है। "कितना गलत सोचती हो भाभी! इस

१– नागार्जुन– कुम्भीपाक– पृ० २४
[2] नागार्जुन– कुम्भीपाक– पृ० २८
[3] नागार्जुन– उग्रतारा– पृ० ८५
[4] नागार्जुन– नई पौध– पृ० ५१

जमाने की पढी– लिखी लडकियां ईर्ष्या और घृणा का सिरका नहीं तैयार करती है। उनका तुम्हारे युग कि सडॉध से कोई वास्ता नहीं होता । उनके अन्दर छिछोरापन और थोथी भावुकता नहीं होती। भूलों कि सम्भावना के आतंक में वे मुर्दा होकर पड़ी रह जाती है, पिछली भूलों के पछतावें में सुलग –सुलग कर राख भी नहीं होती है । आगे बढ़ना जानती है । तो मौके पर तिरे बदलकर पीछे हटने का गुर भी मालूम है। हॉ, उनकी यॉद डायन बनकर अब भी तुम्हारी रगों का लहू चूसती रहेगी।"[१]

दरअसल नागार्जुन की काव्यभाषा में आमतौर से हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल पूरा का पूरा वाक्य मौजूद है, क्योकि हिन्दी संस्कृत के विपरित विश्लिष्ट प्रकृति की भाषा है। भाषा की ईकाई शब्द नहीं वाक्य है । पूरे वाक्य की योजना में संज्ञा और क्रिया का स्थान कोई और नहीं ले सकता। और ये किया ही है जिसकी मदद से अचेतन पर भी चेतना का आरोप किया जाता है । और क्रिया के बिना चेतन भी अचेतन हो जाता है। यथा– "छोभ अनुनय –विनय, हठ, और ऑसू अंत में अपनी जान देने की धमकी वस्तुतः उम्मी की मॉ ने अद्भुत त्याग और संयम का परिचय दिया। यदि वो जरा सा भी प्रतिकूल इंगित होती तो महिम मॉ कि बात नहीं मानता।"[२]

उत्कृष्ट साहित्यिक भाषा के अतिरिक्त उनकी भाषा में संस्कृत प्रधान शब्दों तत्सम् तद्भव तथा उर्दू–फारसी के साथ ही साथ अंग्रेजी के शब्दों का बाहुल्य है।

इसी तरह के मिले–जुले बहुभाषा–भाषी शब्दों का परिचय उपन्यासकार देता है । उसे अपनी मिट्टी से लगाव है अत्मीयतापूर्ण गॉव में अनुभव की विविधता ही उसे भाषायी संगम में जाने पर विवश कर देता है। वह देशज शब्दो की रंगीन छटा बिखेरता है। जिसे जनसाधारण की भाषा कहा जाता है । जो सहज और स्वाभाविक है। इसके प्रयोग से तद्भाषी व्यक्तित्व और अधिक निखरा है।

---

[१] नागार्जुन –कुम्भीपाक – पृ० १०५
[२] नागार्जुन –कुम्भीपाक – पृ० १०२

अंग्रेजी शब्द का प्रयोग

रतिनाथ की चाची में– वी० एन० डब्ल्यू (बंगाल नार्थ वेस्ट) डाक्टर , स्टेशन, ट्रेन रेलवे लाइन, प्लेटफार्म, पैटमैन, लॉग क्लाथ, किस्तान, हैंडनोट,

बलचनमा में – जंकशन सिकटेरियट, अफसर, एस० पी०, भोलंटियर, रिलीफ फण्ड फस्टकिलास, डॉक्टर, लीडर, सोसलिस्ट, एस० डी० ओ०, डिप्टी मजिस्ट्रेट, मिनिस्टर, मेम्बर ,असेम्बली, कलक्टर, ।

बाबा बटेसरनाथ – गार्जियन, इन्जीनियरिंग, साइन्स, मैट्रिक, मिनिस्ट्री, प्रोफेसर, डिप्टी–मजिस्ट्रेट, फॉरेस्ट ऑफिसर, लोकों, इंजीनियर, इन्कमटैक्स, एम० ए० डिग्री, टावर, कलेक्टर, सुपिरिनटेण्डेण्ट , सब–डिवीजनल, हाईकोर्ट, इन्जेक्शन, यूनिवर्सिटी इन्ट्रेन्स, ग्रेजुएट, ट्यूशन, बी०एन०डब्ल्यू०आर०, डिक्टेटर, पिकेटिंग, आर्डिनेन्स, कान्सटेबल, माइगॉड, डैमफूल, शट–अप, स्टार्ट, सेण्ट्रल जेल, कान्फ्रेन्स, यूनाइटेड नेशन्स, हेडमैन, पार्लियामेण्ट, स्टीमर, स्टीम–लॉच, वी०टी०, न्यूज एडीटर, फेडरेशन, बी०एड०, प्रेसिडेण्ट, स्टूडेण्ट फेडरेशन, यूनियन कम्पनी, स्ट्राइक।

नयी पौध– ट्रू मैन, स्टालिन, डेमोक्रेसी, कम्यूनिज्म, कोसी प्रोजेक्ट, फैमिली प्लानिंग सप्लाई–इन्सपेक्टर, कंट्रोल रेट, टेन्थ, स्टेशन, ओ०टी०आर०, ट्रेन, ट्रेनिंग, पेट्रोमैक्स, प्रोफेसर प्राइवेट, असिस्टैट एकाउंटेन्ट, यूनिवर्सिटी, टाइम, हाईस्कूल, होमियोपैथी, मैटेरिया–मेडिका, मनीआर्डर, प्रैक्टिस, मुंसिफ, कोर्ट, बुकसेलर, मिक्श्चर, टॉनिक, मार्केट, सिल्वर, मिनिस्टर, हेडमास्टर, ब्लू–ब्लैक, फैक्टरी, स्कॉलरशिप, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, चेयरमैन, अण्डर ग्राउण्ड, पॉलिटिक्स, टीचर, सोशलिज्म, पैसेंजर, टोन।

कुम्भीपाक– बुकसेलर, प्रोविजन स्टोर के प्रोप्राइटर "एक्जिक्यूटिव इंन्जीनियर, अपर इण्डिया एक्सप्रेस, कम्पाउाण्डर, स्टोर रूम, कैश बाम्स, गेस पेपर, हाफपैण्ट स्ट्रेचर, पैराग्राफ डेली, हार्डिग रोड, बोरिंगरोड, ल्यूकोरिया, स्टाइल, पोस्ट–मास्टर,

मिनिस्टर, स्टोव, फैक्टरी, स्टेशनरी, सप्लाई, आर्डर फर्म, टेक्स्ट बुक, कमेटी, क्वालिटी, कामर्शियल आर्टिस्ट, सेकेण्ड हैण्ड, स्टाफ मित्रा एण्ड सन्स, पी० ए० काटेज इण्डस्ट्री , माउण्ट ब्लैक, आनरेबुल मिनिस्टर, ब्रेक फास्ट, रजिस्ट्री, कनस्टर, इण्डियन नेशन, नेल पॉलिश, लिपस्टिक, स्नोपाउडर, एडमिशन् ड्रेसिंग टेबुल, रिफ्रेशमेण्ट रूम, ओवरकोट, कार्पोरेशन कम्पार्टमेंट, कैण्टीन, स्टाइल, रेलिंग, ट्रंक, ब्रदर्श, एण्ड सन्स, रीडर, पब्लिक सर्विस कमीशन, पोजीशन, कॉफी हाउस, इण्टरव्यू, एडजस्ट, मिलिटरी, डिस्पेन्सरी, स्टेनलेस स्टील, टी०वी० एक्सरे, प्रिस्कृप्शन, चैम्बर, ट्रेनिंग, साइन बोर्ड, टाइपराइटर,

इस प्रकार स्पष्ट है कि नागार्जुन के उपन्यासों में शिल्पगत विकास के तहत् अंग्रेजी शब्द निरंतर विकास मान रहा है। इन शब्दों का प्रयोग आरंभ के उपन्यासो से बढ़ते हुए अंत के उपन्यासों तक विकास करता रहा है।

उर्दू फारसी मिश्रित शब्द–तद्वीर , अफ़सोस, आहिस्ते, मुताबिक, हैसियत, दर्जे, दरम्यान, अफसर, इम्तिहान, खिलाफ, तनख्वाह, आहिप्ते, अलावा, वाजिब, रूमाल, शामियाना, गज़ब, बेताबी, खुराक, अव्वलदर्जे, रिवाज, रोशनी, हरारत, नजदीक, दरख्त, अख्तियार, काफी हद, ख्याल, हुजूर, औकात, नफरत, गोश्त, वक्त, महसूस, गुलजार, दालान नागवार, तकलीफ, फुसला, फिदा, किस्मत्, मुबारक, नजदीक, मिजाज़ दफा !

तत्सम् शब्दावली– निर्वाह, प्रतिशत, ब्राह्मण, अधिकांश, अविराम, विघ्न, सौभाग्य, नक्षत्र, स्नेहमय, विशेष, स्निग्ध, आलोक, निशीथ, दिग्–दिगन्त, उद्भाषित, परिवेश, ग्रीष्मांत, श्रृंगार, संयोग, स्वाभाविक, प्रतीक्षा, प्रतिपालक, जीर्ण–शीर्ण, अवकाश, दरिद्र, परिकमा, किंचित, कदापि, स्वार्थी, अक्षय, उपार्जन, सार्वजनिक, आचार्य, चमत्कार, स्वर, ध्वनि, व्यतिकम, सहापर्यनत, निरीह, निरपेक्ष, जीर्णोद्धार, समवेदना, विस्मय, निष्प्राण, अपेक्षा, किंचित, कदापि, स्वार्थी, अक्षय, पाण्डर, अनुताप, अमृत,

प्रकृति, भूत, नीरव, तनमय, तृप्ति , तरूण, प्रयोजन, स्वरूप, उल्लसित, सन्धियॉ, कायाकल्प, दीपशिखा, ह्रदय, ग्लानि, मृत्यु, श्रेय, शुभ, मुहूर्त, धवल, पूर्णिमा, आकर्षण, विद्यमान, सकुशल, विद्यार्थी , प्रायश्चित, क्षितिज, वाक् शक्ति, स्मृति, मुक्तिमार्ग , सम्मान, स्पर्श, प्रथम, आशीर्वाद, येषां, छः, मुखमण्डल, उद्भासित !

सामान्य बोलचाल की भाषा

उनके उपन्यासों में सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग अत्यधिक है। आंचलिक उपन्यासकार होने के नाते वे स्वतः ही क्लिष्टता की ओर अग्रसित नही होते। उनके जीवन की सादगी की तरह भाषा भी सादी और व्यवहारिक है।

" जिस हाथ से चाची चरखा चला रही थी उसी हाथ से रत्ती के गाल पर हल्की चपत लगा कर बोली " दुत् पगला'।[१]

उसके चाचा ने कसाई के हाथ अपना बूढ़ा बैल बेच डाला है। गॉव के लोगों को मालुम हुआ तो खुसुर–फुसर होने लगी।'[२]

"मेरी छोटी बहन रेबनी चौदहवॉ पार कर पन्द्रहवें में पैर रख चुकी थी। चेहरा मुहरा खुल आया था। जवान हो रही थी। गौने की यही तो उमर है, भैया ! हमारी बिरादरी में शादी पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता है, जितना गौने पर। मेरा मन था कि गौना हो जाये रेवनी का। मगर मॉ मेरी ऐसा नही चाहती थी। उसका विचार था कि अभी बच्ची है। दो तीन साल और नैहर में खायें खेले फिर तो जिनगी भर गृहस्थी का पहाड़ सिर पर ढोना है ही ।"[३] उपर्युक्त बलचनमा की बात (गद्यांश) में कोई भी शब्द ऐसा नही है जो सर्वसाधारण की समझ से परे हो, इस भाषा में तत्सम् या साहित्यिक शब्दावली नहीं है। । साहित्यिक कोटि से हटकर यह वो भाषा है। जिसमें सामान्य जन की मानसिकता को ध्यान में रखकर गढ़ा गया है ।

---

[१] रतिनाथ की चाची – नागार्जुन पृ० ६०
[२] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ, पृ० ६५
[३] नागार्जुन– बलचनमा – पृ० ५८

' कल देवर आया था। और दिन में ग्यारह से चार बजे तक बाते करता रहा। आज कम्पाउण्डर की बीबी बहुत खुश नजर आ रही थी।

मछली मँगवाई थी आधा सेर, डेढ रूपये की। मुँगेरी लाल को यह अच्छा नहीं लगा। बोला, "पन्द्रह तारीख के बाद बाजार से रूपये-दो रूपये की चीजबस्त मत मँगवाया करों, हाथ खाली रहते है न ।'

' बीबी सरसों पीस रही थी, मछली के झोल में डालने के लिये – छमक कर कहा, " अपनी जेब तो देख ली होती.... किसी के पैसे नही छुए है मैने!"

" अच्छा बाबा, जल्दी करो- "कम्पाउण्डर साईकिल की झाड़-पोंछ मे लगा था, झल्लाकर बोला...।"[१] नागार्जुन के कुम्भीपाक उपन्यास के उपर्युक्त कथन से स्पषट होता है। कि भाषा सहज व सरल है यहॉ क्लिष्टता का भाव नहीं है। इस प्रकार सहज सुबोध भाषा का प्रयोग अगले उपन्यास जमनिया के बाबा में दृष्टवय है

"अगहन का अन्त आ रहा है, दुपहर की धूप अच्छी लगने लगी है। अब मैं फिर से इस वक्त धूप में बैठने नहीं जाऊँगी। जरा देर नींद आ जाएगी यहीं बिस्तरे में। जाड़े के दिनों में दुपहर का सोना इस उम्र मे जरूरी नहीं है । मगर थोड़ी देर के लिए हल्की झपकियाँ कोई ले ले तो क्या बुरा है?"

बाबा जी तुम चाय में चीनी कम डालते हो मैनें कई बार कहा है। लगता है, तुम्हारी बीबी मीठा कम खाती है।

बघार में हींग डाला करो कभी-कभी लहसुन या अदरक का भी इस्तेमाल करना चाहिए। अरे, तुम तो बंगालियों का खाना पकाते रहे हो। सब कुछ खाते हैं वे लोग, बिल्कुल सर्वभक्षी होते हैं। उनकी रसोई में बड़ा झमेला रहता होगा। यहाँ तो सीधा मामला है।"[२]

---

[१] नागार्जुन-कुम्भीपाक वाणी प्रकाशन, पृ० ४०, ४१

[२] नागार्जुन- जमनिया के बाबा, वांणी प्रकाशन, पृ० ६५

उपर्युक्त गद्य अवतरणों में भाषा का सीधापन, सादगी भरा रूप ही प्रकट हुआ है। शब्दों की जटिलता देकर भाषा को उलझाऊ नहीं बनाया गया है। शांत एवं सहज व्यवहारिक भाषा का प्रयोग हुआ है। जिससे कथन सहज और स्वाभाविक बन पड़े हैं।

"नागार्जुन ने अपने साहित्य द्वारा अपने जीवन की समस्याओं को हल करने का प्रयास किया है। जीवन की पीड़ा और जन–चेतना की अभिव्यक्ति नागार्जुन में उसी प्रकार मुखरित हुई है। जिस प्रकार निराला मे... निराला सा फक्कड़पन, समाज–संघर्ष और जटिल स्थितियों से उनका टक्कर लेना। ...अपनी मस्ती में किसी को कुछ न समझ अनुचित बात के लिए प्रत्येक को फटकार देना"[१] इत्यादि की भाषा और भाषिक कला का प्रभाव है ।

नागार्जुन जानते हैं कि अभी हमारे पास जो विशाल हिन्दी पाठक है वह बौद्धिक कम और समतामूलक भाई–चारे वाले समाज का पक्षधर है। अतः उसमें भाषा भी वैसी होनी चाहिए। चीजों को समझने के लिए भी और मनोरंजन के लिए भी। इसका मानक है नागार्जुन का उपन्यास! उनके गद्य का सौन्दर्य समय और विषय–वस्तु की सच्चाई पर आधारित है । जिस तरह उनकी कविताओं के बारे में कहा जाता है कि छन्दोबद्ध, उनमें कही कोई खोट नहीं है, उसी तरह उनके गद्य में भी भाषागत, रचनागत, विन्यासगत, कोई दोष नहीं है।

जनपदीय भाषा

नागार्जुन की भाषा का भाव अँचल के प्रति एक गहरी आत्मीयता और परिवेश की निकट पहचान के कारण व्यक्त होती है । वे आँचलिक पात्रों की विशेष पहचान बनाने के लिए जनपदीय शब्दों का उच्चारण कर भाषा को और अधिक प्रभावी बनाते

---

[१] डा० प्रकाशचंद्र भट्ट– नागार्जुन जीवन और साहित्य, पृ० २६६

हैं। इस तरह के शब्दों के प्रयोग कर अँचल भाषी पात्रो में और अधिक निखार आ गया है।

उनके उपन्यासों में जनपदीय शब्दों के इस्तेमाल से विषय चित्रण में जीवन्तता आ गयी है। यद्यपि उनके पूरे के पूरे गद्यांश देशीय भाषा में नहीं है तथापि कहीं–कहीं पूरे वाक्य अवश्य जनपदीय भाषा में आये हैं। यथा "पण्डिताइन ने आँचल पसार कर और मत्था टेंककर जोड़ा छागर कबूला था। दुर्गामाई के आगे।" अधिकांशतः तो देशज शब्दों का ही प्रयोग मुख्य रूप से हुआ है। इन शब्दों के प्रयोग से भाषा में कही अड़चन या अरूचि पैदा नही होती बल्कि ऑचलिक शब्दों के आने से भाषा सरल सुबोध तथा विषयानुरूप ही बनती है।

कहीं किसी–किसी आँचलिक उपन्यासों में तो अँचल जीवन सांस्कृतिक पक्ष के रूपायन के लिए लोकगीतों का प्रस्तुतीकरण भी लोकभाषा में हुआ है। यथा– कुछ शब्द और वाक्य– टंघार, सौगात, भरिया, किलनी, डाह, छागर, बाघगोरी, मोगल, पटान, कोपाठुट्टी, सतधरा, लहती, टोला, सौगात, भरिया, घौंद, चंगेरा, चिवड़ा, भोथी, दूबों, छॉह, डेवडियों कलेवा, दुधास, बिसुक, अठोड़ी, किलनी, चिल्लड़, कुकुरमांछी, मूढ़ी, दीमहा, पहुना, कमासुत, सइंया डाही, बरमबध, बर्खा, अनपुर्ना– लक्ष्मी, परमेसर, ईसर, बघासे, परदेशी, बटखरा, बखत, जास्ती, घुंजा, मुड़ेरे, कुंजड़ा कोठार, जतन, सिनेह, छोट, छक, परानी, टीप, खोट, ओलाती, अगोरने, सपरेगा, धनहर, केरबी, अल्हुआ, सुथनी, भिहासेत, खजौली, लम्मी, खूँट, अंगोदी, गेंडुरी, पोखर, तॉक, कछार, भिंड, बुड़बुड़ाता, झगड़ा–फसाद, नाहक, झटकारते, धोती, ऑगन, ऐपन, पिरौछ, सुपौल, फॉककर, भोट, गेहथिन, गरमजरूआ, बर्दाश्त, इस प्रकार जनपदीय भाषा के ऐसे अनेक शब्द हैं। जिनका प्रयोग यथा स्थान अवसरानुकूल हुआ है। कुछ ऐसे स्थल भी है। जहॉ पर ॲचलीय बोली वाक्यों में गहरी पैठ स्थापित की है। यथा– पिछवाड़े गिरहत का इनारा था। "अरे, ये तो मेरे बखारों को खुक्ख, कर देगा। डेढ़ सेर इस जून, डेढ़ सेर उस जून। छोकड़े का पेट तो देखें, कमर से लेकर गले तक

मानों बखिया है। कैसा बेडौल, कितना भयानक है। मैया री मैया।"[१] "अपना जूठन खिलाकर अपना फेरन–फारन पहनाकर ही तो हमारा पर्तपाल करती हैं।"[२]

"कभी कौड़ी उछालते कभी बकरी की सूखी मींगणियों से सतधरा खेलते, कभी कंकड़ो से कौवाठुट्ठी, मोगल पठान, या बाघ–गोटी का भी खेल चलता है"[3]

'अठौड़ी किलनी जूँ, चिल्लड़... कभी–कभी कुकुरमाछी भी इन्हे तंग करती है।"[४]

अँचलीय लोक गीतो का वर्णन यथा– चरवाहों का गीत–

"उमर बीत गई

बाल पकने लग गये

पिछले बारह वर्षो से

निठुर मेरा दुसाध

ओ निठुर निर्मोही..."[५]

अँचलीय होली का लोकगींत–

'सखि हे मजरल आमक बाग?

कुहू–कुहू चिकरए कोइलिया

झींगुर गावए फाग!

कन्त हमार परदेस बसइ छथि

बिसरि राग–अनुराग!

बिधि भेल बाम, सील भेल बैरी

फूटि गेल ई भाग!

सखि है मजरल आमक बाग..."[६]

---

[१] बलचनमा, पृ० ६
[२] बलचनमा, पृ० ७
[३] बलचनमा, पृ० १०
[४] बलचनमा, पृ० ११
[५] बाबा बटेसरनाथ, पृ० ३६
[६] बलचनमा, पृ० १२७

नागार्जुन की भाषा से सम्पृक्ति, अन्तरंगता,है उनकी भाषा में वे सभी स्वरूप मौजूद है जिनकी साहित्यकार को आवश्यकता रहती है। वे भाषा को सूरज के प्रकाश की तरह साफ रखना चाहते हैं, ताकि जनसामान्य को भाषा का निहितार्थ समझ में आये। भाषा में सुदृढ़ता जनता से आती है, जनता की बोली से, गवाँरू बोली (लोक–भाषा) से आती है।

कहावतें और मुहावरे

नागार्जुन का अनुभव संसार विशाल है। लेकिन तमाम अनुभव की अन्तर्धारा से व्याप्त है। गॉव में बिताये दिनों के प्रारंभिक अनुभव। लोक सुभाषित के अन्तर्गत ही कहावतें और मुहावरे आते हैं। सुन्दर काव्यमयी और चमत्कार पूर्ण उक्ति को सुभाषित कहा जाता है। लोक के अनुभूत सत्य कि व्यंजना के लिये प्रयुक्त उक्ति जिसमें शब्द संहिति और पैनापन होता है। कहावत की संज्ञा से अभिहित होती है। उनकी शैली समासिक होती है। अर्थ भी चुभन के लिये होता है।

मुहावरें, कहावतें, लोकोक्तियाँ, आम ग्रामीण–जन अपने दैनिक व्यवहार व बोलचाल में प्रयोग करते है। इनके द्वारा मानवीय घटनाओं, प्रथाओं तथा गुण–दोषों का परिचय मिलता है। कभी–कभी आम ग्रामीण–जन अपने शब्दो का आशय समझाने के लिये मुहावरों के इस्तेमाल करते हैं। किसी के बारे में बताने के लिये लोकोक्तियों का प्रयोग करते हैं। यद्यपि इनमे व्यंग्य व विनोद का भाव रहता है।

सामान्यतः मुहावरा का अर्थ 'परस्पर बातचीत' और 'सवाल जवाब' करना। यह एक अरबी शब्द है। फणीश्वर नाथ रेणु जी इनके बारे मे बताते हैं– "मुहावरा किसी भाषा अथवा बोली में प्रयुक्त होने वाला वह वाक्य खण्ड है, जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल, सचेत, रोचक, और चुस्त बना देता है।"[1] नागार्जुन नें अपने

---

[1] फणीश्वर नाथ रेंणु– परती–परिकथा, पृ० ४३

भाषा में सौन्दर्यात्मकता के प्रतीक लोकोक्ति और मुहावरों का प्रयोग कर भाषा को और अधिक सुगठित बनाया है।

यद्यपि उनके उपन्यासों में लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग यत्र–तत्र हुआ है तो भी वह भाषा को सौन्दर्यबोध कर सहायता प्रदान करता है। उनकी लोकोक्तियों या मुहावरों का वर्णन–

'अभागिन का हृदय केले के पत्ते की तरह कॉपने लगा'[१]

'राँड़ साँड़ सीढ़ी संन्यासी, इनसे बचे तो सेवै काशी'[२]

'उन मिठाईयों की खुशबू से गाँव भर की हवा भारी–भारी हो रही थी'[३]।

'सेध लगाने के फिराक में भीतों को घूरने वाला चोर क्या खाक चैन से रहेगा, और क्या तुमने अमृत पी लिया है'?[४]

'राडं एडं पवित्रं हूँ:'[५]

'सुखे कोहड़ों के लिए क्या बसंत क्या सरदी'[६]

'इस राड की माँग अगले जनम में भी खाली रहे'[७]

'मेरे पैरों के नीचे से मिट्टी खिसकने लगी ऑखो के आगे अंधेरा छाने लगा। मैं गूँगा बन गया'[८]।

'अपने मालिक की यह दशा देखकर मेरे कलेजे मे फार धंस गया'[९]।

'भगवान कहां से व्यौंत करेगें ? चोरी हम करेगें नहीं, डाका हम डालेगे नहीं। घर में भूँजी भाँग नही, आगे पीछे कोई खोज खबर वाला नहीं है, तो फिर भगवान बाकी कौन उपाय करेगें'

---

[१] नागार्जुन– रतिनाथ की चाची, पृ०–७।
[२] नागार्जुन– रतिनाथ की चाची, पृ०–७५।
[३] नागार्जुन– रतिनाथ की चाची, पृ०–८०।
[४] नागार्जुन– रतिनाथ की चाची, पृ०–६१।
[५] नागार्जुन– बलचनमा, पृ०–१४।
[६] नागार्जुन– बलचनमा, पृ०–१५।
[७] नागार्जुन– बलचनमा, पृ०–२२।
[८] नागार्जुन– बलचनमा, पृ०–७१।
[९] नागार्जुन– बलचनमा, पृ०–४६।

'जाकै पॉव न फटी बिवाई सो क्या जाने पीर पराई'

'घोडे की कीमत पर हाथी हटा रहे हैं। बछड़े की कीमत पर घोड़ा'

'डांडी मारों नें बटखरे का वजन अपने हक में बढ़ा लिया'[१]

'सब जगह गोरी चमडी वालो की तूती बोलती थी। कानून और हुकूमत उनके बूटों के नीचे थे।' 'सत्तर चुहे खाकर बिल्ली चली हज को।'[२]

'बेचारे का कलेजा मुंह को आने लगा'[३]

'भागते भूत लगोटी भली'! जाते जाते ये जमींदार सार्वजनिक उपयोग की भूमि को भी बेचे जा रहे हैं'।[४]

'दोनों सुखी हैं दोनो सम्पन्न हैं दोनों के लड़के रूपया पीट रहे हैं, पर छछूंदर का दिल पाया है गधो नें! देख ही रहा है बेटा, कैसी दुर्दशा ये करा रहे अपनी। इनका नाम लेकर लोग कितना थूकते हैं। अगर इन्हें इस बात का पता होता। लेकिन ये तो पहले दर्जे के बेहया ठहरे, निन्दा प्रशंसा से डूबनें–तिरने वाले प्रांणी कुछ दूसरी ही धातु के हुआ करते हैं। बच्चा'[५]

' कुम्भीपाक में, अपने तो बस एक ही सवाल जानते हैं! माँ–बाप ने जब खूंटे से बॉध दिया तो दुनियॉ भर के खटराग क्या जानें ! वर्ना हम भी सात घाट का पानी पीते सौ किस्म के सुख लूटते'[६]

'कम्पाउण्डर की बीबी ने दिल ही दिल में अपने से कहा छिनाल कही की! उड़ती चिड़िया की पूँछ मे हल्दी लगाने वाली रांड़'[७]।

'निर्मला वही थी सोचा भगवान की लीला अद्‌भुत है। कहीं ढेर का ढेर, कहीं अन्धेर का अन्धेर'[८]।

---

[१] नागार्जुन– बाबा बटेसर नाथ, पृ० ६१।
[२] नागार्जुन– बाबा बटेसर नाथ, पृ० १२२।
[३] नागार्जुन– बाबा बटेसर नाथ, पृ० १५४।
[४] नागार्जुन– बाबा बटेसर नाथ, पृ० १७।
[५] नागार्जुन– बाबा बटेसर नाथ, पृ० १८।
[६] नागार्जुन– कुम्भीपाक, पृ० १६।
[७] नागार्जुन– कुम्भीपाक, पृ० २०।
[८] नागार्जुन– कुम्भीपाक, पृ० ११८।

जमनिया के बाबा– "लाल झंडा वाले जिद्दी होते है। झण्डा उठा लेंगे तो परेशान कर देगे, मिल वालों की नाक का पानी निकाल देगें।"[१] कहते हैं "औरतों के नखरे पहाड को बिछा देते है, फौलाद को गला डालते है।"[२]

जेल के अन्दर जितने भी प्रांणी हैं, मैं सभी को भंडारा दूँगा। मैं इतना भारी भोज दूँगा कि जेल के अधिकारी दॉतो तले उंगली दबाएंगे"

जमी हुई आवाज में उसने कहा– "इनकी ऐसी–तैसी ! हम दामाद बनकर रहेगे और इनके सीने पर सिल रगड़ा करेंगे।"

"औरतें जरा सी बात पर परेशान हो उठती हैं। इसमें औरतों का कोई कुसूर नहीं है। कुप्पी इतना तो दिल होता है बेचारियों का!"[3]

'रात लम्बी होती है। सवेरे–सवेरे पेट कुलबुलाने लगता है'।[४]

इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में मुहावरे व उक्तियों का प्रयोग मिलता है नागार्जुन की भाषा में यह प्रवाहमयता बना रहता है। उन्होंने इस प्रवाहमयता को गाम्भीर्य बनाने के लिए इसका प्रयोग करते हैं। जबरन बीच में लाकर बैठाते नहीं हैं। यह भाषा के सौन्दर्यात्मक तारतम्यता को बनाये रखने का उपक्रम करते दीखतें हैं।

अपशब्दों का प्रयोग

ऐसा नही है कि नागार्जुन के ऑचलिक उपन्यासों में या यो कहे सभी उपन्यासों में भाषा सुन्दर व सारगर्भित है। उनके उपन्यासो में भाषा भी कभी–कभी छिछले स्तर पर आ जाती है। या यो कहे वे भाषा के साथ छिछोरापन करते है। परन्तु इसके पीछे उनकी मजबूरी भी है। क्योकि जब वे मिथिलांचल के परिवेश को रहन–सहन, बोल–चाल, डॉट–फटकार, लड़ाई–झगड़ा को उकेरते है तो भाषा का

---

[१] नागार्जुन– जमनिया के बाबा, पृ० २१
[२] नागार्जुन– जमनिया के बाबा, पृ० २३
[३] नागार्जुन– जमनिया के बाबा, पृ० २३
[४] नागार्जुन– उग्रतारा, पृ० ७६।

भद्दापन आना जरूरी है जिसे 'स्लैग लैग्वेंज' भी कहा जाता है। यह सब प्रसंगानुकूल ही आते है।

'रतिनाथ की चाची' में– बेचारी उमानाथ की माँ को क्या पता कि, इस सहानुभूति के पीछे एक डायन का निठुर अट्टहास छिपा पड़ा है।"

'गौरी की मॉ बड़बड़ानें लगी, "लुच्ची कही की । अजवायन का और क्या होता है? दवा बनती है वह दवा जो कि व्याने के बाद औरते खाती हैं।"[१]

"जयनाथ से इस बात की किसी ने शिकायत की, तो वह फुफकार उठे, "साले की चमड़ी उधेड़ लूॅगा। शूद्र है तो शूद्र की भॉति रहे।"

दयमंती कहती गई– "अब और क्या होगा? मर्दो का तो कोई ठिकाना है नहीं, अगर हम न रहें तो संसार में आचार–विचार हट जाए। उमानाथ की माँ व्यभिचारिणी है, पतिता है, भ्रष्ट है, कुलटा है, छिनाल है।[२]

"चाची ने दो बार मालिश कर दी, तब जाकर दर्द हटा। मालिश के वक्त जयनाथ ने देखा तो दाँत पीसते हुए कहा, बेटीचोद! फिर कभी भॉग तूने पी तो कुल्हाड़ी से गरदन काट लूॅगा।"[३]

बलचनमा में, 'मलिकाइन सिर नीचा किये ही डपटकर मुझे कहती है– "कंधे के सहारे बच्चे को ले ले और घूम–घाम, मॉ ने तुझे ठूंस–ठूंस कर खाना तो खूब सिखला दिया है, मगर फूल–सा हलका बच्चा भी तुझसे नही सॅभलता, ...'कोढ़िया!'

'मेरी ओर तनिक देर ठौर से ताकते रहे। तब जाकर बोले, जसोधर बाबू, छोकड़े के रोऑ–रोऑ से नमकहरामी टपकती है। देखों न कैसे मुलुर–मुलुर ताकता है।

---

[१] नागार्जुन– रतिनाथ की चाची, पृ० ३६
[२] नागार्जुन– रतिनाथ की चाची, पृ० ६१
[३] नागार्जुन– रतिनाथ की चाची, पृ० ६१

"चुप रह कुतिया"– मालिक गुर्राये। पंडित जी ने सिर हिलाया और गुनगुना उठे– "राड़ं एडं पवित्रं हूँः।"[1]

'उनकी दाढ़ी के नजदीक अपने दाहिने हाथ को चमकाती हुई मलिकाइन गुर्रा उठी– सुगरखौका, लाज–शरम तुझे छू तक न गई लेकिन मुझे तो भगवान का डर है...वही बटखरा, वहीं तराजू'।

"मुँह बनाकर और हाथ चमकाकर उसने पहले तो मेरी ओर देखा, फिर कहा"

"जाओं न आज मलिकाइन गॉड का गूदा निकाल लेंगी... इसके बाद उसने नथनें बिचका लिए। मछली फॅसाने का शौक चर्राया है। कितना मार लाये हो? महक तो खूब आ रही है। खाओं बाबू खाओं, गॉड़ फटेगी तो मालूम होगा...। चल बदमसवा मलिकाइन के पास"[2]

'मालिक ने नथने फैलाकर हवा में कुछ महसूस की और बोले– बलचनमा, झूठ मत बोल, झूठ बोलना और गू खाना दोनों को मैं बराबर समझता हूँ।

'वह फूट–फूट कर रोने लगी तो मालिक ने गुर्राकर कहा– बोल साली, अपनी बेटी को यहाँ ले आयेगी कि नही? बोल"[3]

'मामा ने डपटकर कहा– "खच्चर कही के! छोटी जात वालों की अकिल भी छोटी ही होती है। चल, जितनी तेजी से चलना हो... छोड़ दे बालचंद, दौड़े ससुर।"[4]

'चल के माफी मॉगना ससुर मंजूर कर लेगा और पीछे निपत्ता हो जायेगा साला।" नई पौध में, "बाप चूल्हा फूँकते–फूँकते मर गया और तू हमारे घर में आग लगाने आया है" ? माहे की ओर हाथ बढ़ाकर खोंखा पंडित चिल्ला रहे थे। वह चुप था। निगाहे मगर दूल्हे पर गड़ी हुई थी।

---

[1] नागार्जुन– बलचनमा, पृ० १४
[2] नागार्जुन– बलचनमा, पृ० ३०
[3] नागार्जुन– बलचनमा, पृ० ६८
[4] नागार्जुन– बलचनमा, पृ० १२४

"जाता है कि नही यहॉ से सूअर कहीं का। पण्डित फिर चिकरे"[१]

कुम्भीपाक में– दाई अपनी क्या है, शैतान की साली है...। कुल्लभ तीन बाल्टी पानी भर के भाग खडी होती है...।

कम्पाउण्डर नें कोयला वाली टोकरी चूल्हे के करीब पटक दी। घिन और गुस्सा– सिर से लेकर एड़ी तक सुलग उठा बदन। जोर–जोर से चीखने लगा सुअर के बच्चे ! जहाँ–तहाँ हगते फिरते है। कमीनों की औलाद...। मैं साखू की कील ठोंक दूँगा, आखिर समझ क्या रक्खा है? लेंडी के पूत:"[२]

"छिनाल कहीं की! उड़ती चिडिया की पूँछ में हल्दी लगाने वाली रॉड़ ! किस कदर बात बनाती है... फूफा जी पोष्ट–मास्टर थे! मामा मिनिस्टर थे। चुड़ैल कहीं की. ..।"[४]

उपर्युक्त व्यक्त कथनों में घृणा, क्रोध, ईर्ष्या और अमंगल की ब्यंजना वाले अपशब्दों का प्रयोग हुआ। चूँकि यह भाषा अशिष्ट और अभद्र होती है। इस भाषा में मन की पवित्र भावना और परस्पर हित भावना व्यंजित नही होती। व्यक्ति की असंयत मनोवृत्ति और विकृति रूचि का परिचायक भाव अश्लीलता है। वेणुगोपाल ने एक बातचीत के दौरान यह स्वीकार किया था कि भारतीय मन के कुसंस्कारों को गाली के जरिए नही बदल बदला जा सकता। लोकमन के प्रति गहरी प्रेम–भावना और धीर–गंभीर तर्क–निष्ठा ही उन्हें अपदस्थ कर सकेगी।"[५] नागार्जुन यहॉ गाली–गलौज दर्शाकर अपने उपन्यासों में किसी संस्कार को बदलने की बात नही करते अपितु स्थिति का हू बहू ढॉचा दिखा देते है। नागार्जुन ने अपने ऑचलिक उपन्यासों में कही–कही किन्ही स्थलों द्वारा शिष्ट जीवन से दूर अंचल समाज के रूपायन में इस असंयत पक्ष का उद्घाटन किया है। यद्यपि मनोवृत्रि के विकास की अभिव्यक्ति करने वाली असंयमित भाषा गन्दी भाषा (स्लेग लैंग्वेज) कही जाती है, तब इस भाषा के

---

[१] नागार्जुन– नई पौध, पृ० १२४
[२] नागार्जुन– कुम्भीपाक, पृ० १६
[४] नागार्जुन– कुम्भीपाक, पृ० २०

अशिष्ट–अभद्र रूप का कथा में प्रयोग अनुचित नही है। इस भाषा की भी एक सीमा है। "नागार्जुन का सारा कला–धर्म इसी लोकपृच्छ की आधार भूमि पर खड़ा है। लोक की बिरादरी की ओर जाते हुए भी यह ध्यान वे बाकायदा रखते हैं कि लहसुन या हींग की गंध लोग एक सीमा तक ही पचा पाते हैं। अगर सारे भोजन में उसका अनुपात अधिक कर दिया जाय तो स्वाद की तीक्ष्णता भोजनेन्द्रिय को बिचकाने लगेगी। भोजन असह्य हो जायेगा। ऑचलिक शब्दों का इस्तेमाल करते हुए वे इसका बराबर ध्यान रखते हैं।"[1]

निष्कर्ष रूप से यह कह सकते है कि नागार्जुन की भाषा–सम्पदा समृद्ध और समर्थ है। उनके उपन्यासो में प्रयुक्त भाषा में भावना की गहराई और अनुभूति की गहनता है। उनकी भाषा विविध रूपात्मक प्रयोगों द्वारा ही संवेदनीय तथा सम्प्रेषणीय हुई है। केदारनाथ अग्रवाल ने खुद ही यह कहा है कि– "मेरी धारणा यह है कि हमारे यहॉ भी जितना सचेत और जागरूक संवेदनशील वह रचनाकार होता है, जो जनता से आया है, उतना और कोई नहीं। जैसे– बाबा नागार्जुन का उदाहरण है।"[2]

नागार्जुन के उपन्यासों के भाषिक तेवर में गॉव की मिट्टी की गंध हरे–भरें खेतों और आम की मंजरियों की सुगन्ध, पोखर, तालाब और गलियारों के विहंगम दृश्य, खलिहानों और बाग बगीचों की मोंहक सुगन्ध ही अँचल की सम्पृक्ति का परिचय प्रदान करती है। वे लोकभाषा को प्रामाणिक मानक भाषा में मिलाकर सम्प्रेषणीय बनाते हैं। इस प्रकार ऑचलिक कथा की भाव–वृत्ति को भाषा की सहजता से ही प्रकट कर दिया है। जैसा कि मराठी साहित्यकार आनन्द यादव का यह मत ध्यातव्य है कि– "ग्रामीण–भाषा और प्रमाण–भाषा समय–समय पर एक दूसरे को खुराक देती रहती है। उस भाषा द्वारा ग्रामीण मानव मन का आविष्कार करने में मदद मिलती है। नागार्जुन प्रायः प्रवास में रहे हैं, जीविकोपार्जन के सिलसिले में और जब

---

[५] विजय बहादुर सिह– नागार्जुन और उनका रचना संसार, पृ० १४५

[1] विजय बहादुर सिंह– नागार्जुन और उनका रचना संसार, पृ० १४४

[2] पूर्वग्रह– सितम्बर, अक्टूबर, पृ० ७६

भी प्रवास के एकांत और अकेलेपन नें, जीविका कमाने की दुर्वह स्थितियों नें उन्हे निराश या अवसादग्रस्त किया है। उन्हें अपनी धरती की, अपने स्वजनों की, अपने गॅवई गॉव की याद आयी है"[१] इससे उनकी शैली में भी गाढ़ापन आया है।

"शैली में भाषा, भाव और विचारों की विशेषता निहित है। भाव और विचारों की अभिव्यक्ति भाषा से होती है। साहित्यिक–सृष्टि से भाषा की सुन्दरता और लेखक की सजीवता दोंनो की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शैली के विश्लेषण से कृतिकार की पहचान होती है। अतः शैली में लेखक के व्यक्तित्व की विद्यमानता एक तत्व है।"[२]

वह शैली ही है जो एक साहित्यकार के चिंतन की स्वाभाविक, सत्य और उचित अभिव्यक्ति का माध्यम होती है। शैली ही निर्धारित करती है। कि कृति की विषयवस्तु या अनुभूति को किस रूप और आकार में संयोजित किया गया हैं। विषयवस्तु का उद्‌घाटन शैली रचना का कियाशील सिद्धान्त है। शैली ही भाव व विकास में एक नयी चेतना पैदा करती है।

जब जीवन के यथार्थ संवेदनाओं से सम्बद्ध विषमताओं को अभिव्यक्त करना होता है तो वहॉ एक विशिष्ट शैली अपेक्षित होती है। नागार्जुन के उपन्यासों में नायक के व्यक्तित्व को उद्‌घाटित हेतु अभिव्यक्ति के माध्यम के लिए लगभग सभी शैलियों का वर्णन मिलता है। लेकिन कुछ प्रमुख शैलियाँ ही हिन्दी उपन्यास में जगह पाती है।

१– वर्णनात्मक शैली

२– विश्लेषणात्मक शैली

३– प्रतीकात्मक शैली

४– नाटकीय शैली

५– मिली–जुली या समन्वित शैली।

---

[१] नामवर सिंह– व्यक्ति और सर्जना के कुछ विशिष्ट पहलू– नागार्जुन रचना प्रसंग और दृष्टि पृ० ३६ ३७
[२] डा० भोलानाथ तिवारी– शैली विज्ञान, पृ० १६

परन्तु नागार्जुन के उपन्यासों में जिन प्रमुख शैलियों ने प्रमुखता से स्थान पाया है वे हैं–

१– लोक कथात्मक (संभाषण) शैली

२– वर्णनप्रधान(विवरण) शैली

१– आत्मकथात्मक (अन्तदर्शन) शैली

"उनके उपन्यासों में 'जमनिया के बाबा' 'हीरक जयंती' में अन्तर्दर्शन और आत्म विश्लेषण की यह शैली बहुत ही सफलतापूर्वक प्रयुक्त हुई है। आत्मचिंतन में स्मृतियों का झरोखा अपने आप खुल जाता है और पात्र अपनी नयी– पुरानी ज़िन्दगी की कतरनों के साथ हमारे सामने आ जाता है।"[1]

– प्रणाम, सरकार !

– पहचाना नही मुझे आपने?

– उहूँ

– नही पहचाना? लीजिए, हैट और काला चश्मा हटा लूँ... "।

मुस्कान

धुले हुए शब्द।

चतुर चितवन

– अरे तुम ? जटाशकंर । कहॉ रहे ?

– बम्बई रहता हूँ, सरकार। जर्नलिज्म का धन्धा अपना लिया है।

– तुमको तो पॉलिटिक्स में आना था, छात्रों पर इतना असर तो और किसी का था नहीं... "।

"एक हजार रूपये हॉ दस वाले सौ नोट मैंने तुम्हारे हवाले किए थे"[2]

विवरण शैली के माध्यम से दुखमोचन, उग्रतारा, पारों जैसे चरित्रों की सृष्टि की गई है। कुम्भीपाक और बटेसरनाथ में संभाषण शैली का इस्तेमाल किया गया है।

आत्मकथात्मक या अन्तदर्शन–शैली

---

[1] विजय बहादुर सिंह– नागार्जुन और उनका रचना संसार, पृ० १३६–४०

नागार्जुन ने इस नई शैली का उपयोग अपने जिन उपन्यासों में किया है वे प्रमुखतया 'जमनिया के बाबा' तथा 'हीरक जयन्ती' है। यहां पात्रों का आत्म विश्लेषण एवं आत्म–परीक्षण के क्षणों से गुजरते हुए दिखाया गया है। पात्रों के भीतरी संघर्ष एवं मानसिक हलचलों को स्वागत कथन के रूप में ही व्यक्त किया गया है। 'जमनिया के बाबा' में भगौती का आत्म–विश्लेषण अन्तदर्शन कह रहा है।

'अच्छा हुआ, तुम्हारा मोह टूट रहा है। नहीं टूटेगा ?

टूटेगा कैसे नही ? टूटना होगा उसे, बिना टूटे रह कैसे जाएगा ?

यह मोह नही टूटा तो तुम्ही टूट जाओगे भगौती !

न न न... मैं भला क्यों टूटूँगा ? कौन कहता है, भगौती टूटेगा ?

भगौती लचक जायेगा, भगौती सात जगहों पर टेढा–मेढ़ा हो जायेगा, झुक जाएगा भगौती! टूट तो वह कभी सकता ही नहीं !

शाबाश, बेटे !

शाबाश, भगौती के बच्चे !

शाबाश, भगौती के नाना !

शाबाश, राजा!....

यह कौन था भाई?

किसके बारे में पूछ रहे हो?

अभी–अभी जो शाबाशियॉ दे रहा था। ? उसी के बारे में पूछ रहे हो ?

ठहरों, सिगरेट जला लूँ !

बस, एक सेकण्ड...।

भगौती छत की रेलिंग से सटकर खड़ा होता है।"[१]

यहॉ लेखक ने नई शैली अपनायी है। पात्र स्वयं अपनी कथा कहते है, अपने बारे में कहते है अपनी विशेषता, पहचान सब कुछ बतलाते हैं।

---

[१] नागार्जुन– हीरक जयंती, पृ० १३

यथा– बाबा स्वयं कहता है–

"मैं लेटे–लेटे सोच रहा हूँ। मुझे मस्तराम ने बतलाया कि आगे से इतनी चरस रोज मिला करेगी। भला हो बडे जमादार का जिसके दिल में साधू–बैरागी के लिए श्रद्धा–भक्ति उमड़ी है।

मोटा कम्बल बिछा हैं। बाहर से बिजली की रोशनी आ रही है। मेरे दोनो पैर प्रकाश में है। घुटनो से ऊपर अन्धेरा है। बॉयी बाह पर आधे सिर का बोझा डालकर मैं लेटा पड़ा हूँ"[१]

'बाबा ने बहुत सोच समझकर मेरा यह नाम रखा मस्त राम। उमर अभी चालीस भी नहीं हुई है। बड़े जमादार ने कई बार मुझसे कहा है...सन्त जी, तुम तीस–बत्तीस के नजर आते हो। बाल बढे हों, छॉटे–तराशे हो, दाढ़ी–मूँछ सफाचट हो और टेरीलीन का पैन्ट–बुशर्ट डालकर खड़े हो जाओं, बीस–बाईस के नौजवान मालूम दोगें। क्या सूरत पायी है, कैसा ढॉचा मिला है! बड़े जमादार जब मेरे सामने से गुजरते हैं तो एकटक निगाहों से मेरे बदन कि छटा को पीते हुए गुजरते हैं। लगता है, मस्तराम उनकी नजरों मे हमेशा के लिये बस जायेगा।"[२]

'इमरतिया' की आत्मकथा कुछ इस प्रकार है 'परसों बाहर आई हूँ, हवालात से।

ग्यारह दिन ऊँची दीवारों की उस तंग दुनिया में रहना बदा था, मुकदमें की सुनवाई खत्म होगी; सब कुछ हो चुकेगा। बाबा और मस्तराम को सजा होगी, यह तो सभी कहते हैं मुझे सजा होगी, यह कोई नहीं कहता !

अच्छा होता साल–दो साल की कड़ी मशक्कत वाली सजा मैं भी काटती।

---

[१] नागार्जुन– जमनिया के बाबा, वाणी प्रकाशन दिल्ली, पृ० ११६

[१] नागार्जुन– जमनिया के बाबा, वाणी प्रकाशन दिल्ली, पृ० ६

[२] नागार्जुन– जमनिया के बाबा, वाणी प्रकाशन दिल्ली, पृ० ३४

कहीं कोई भारी अपराध करने का मौका हाथ लगता तो मैं बड़ी खुश होती। सच मैं बेहद खुश होऊँगी। मिलेगा मौका मुझे पॉच वर्ष जेल काटने का ?"[१]

इस प्रकार अन्तदर्शन शैली में स्व की अनुभूति स्व का विचार उड़ेल कर रख दिया जाता है। वह चाहे बाबा हो या मस्तराम और फिर भगौती, इमरितिया! सभी अपनी कथा स्वयं कहते है। यही आत्मकथात्मक शैली की विशेषता भी होती है। यहॉ लेखक नेपथ्य में ही रहता है। यह नागार्जुन की एक नई शैली है।

२– विवरण प्रधान शैली

इस शैली के अन्तर्गत जीवन का रूपायन विवरण के आधार पर होता है। घटनाओं और पात्रों की अधिकता के कारण अनेक प्रसंग जीवन की समस्याओं का उदघाटन करते है। ऑचलिक उपन्यासों में यह शैली प्रयोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण होती है। इस शैली के निर्वाह हेतु नागार्जुन नें उपन्यासो में स्थान की सीमा में विविध घटनाओं, विभिध पात्रों औंर परस्पर विरोधी चित्त वृत्तियों को यथार्थ की संवेदना के लिए कथा में गढ़ा है। इस शैली का प्रयोग नागार्जुन के सभी उपन्यासों में मिल जायेगा। जिए हुए जीवन की अनुभूति यथार्थ के सम्बन्ध में अभिव्यक्त होती हैं। वर्णन–प्रधान (विवरण) शैली का प्रयोग उनके उपन्यासों में पात्र, चरित्र, वातावरण, प्राकृतिक परिवेश आदि का स्वाभाविक तथा जीवन्त वर्णन आत्मीय–भाव की उद्भावना करता है।

विवरण या वर्णन शैली

बाबा बटेसरनाथ में, 'रात डेढ़ पहर करीब बीत चुकी थी। सारा गांव सो गया था। कुत्ते तक नीरव थे...।

शाखाओं की घनी–हरी झुरमुटों मे से बड़े–बड़े सफेद बालों वाला एक भारी सिर निकल आया। दाढ़ी भी काफी बड़ी–बड़ी थी। यह एक विशालकाय मानव था।

---

[१] नागार्जुन– जमनिया के बाबा, वाणी प्रकाशन दिल्ली, पृ० ६१

हांथ पैर खूब बडे–बडे। शरीर जिस प्रकार लम्बा छरहरा था। डील–डौल उतनी मोटी नहीं थी। कमर में मटमैली धोती लपेटी हुई थी। बाकी बदन यो खाली था। छाती, पीठ, जाँघों और बाहों पर रोओं के जो जंगल थे उन पर मुलतानी मिट्टी सा हल्का पीलापन छाया हुआ था। भारी भरकम काठी वाला वह आदमी आहिस्ते–आहिस्ते आया और जैकिसुन के पास खडा हो गया।"[१]

वर्णन–प्रधान (विवरण प्रधान) शैली का एक और विहंगम दृश्य यह उस समय का है जब स्वराज्य लाने के लिए गांधीजी ने अभियान शुरू किया उसमें शतः नौजवानों ने हिस्सा लिया उसी स्वराजी लड़ाई की अनुशासनात्मक दिनचर्या का एक दृश्य वर्णन– "दलान बड़ा नही था! बल्कि उसे दालान न कहकर मंडप कहें तो अच्छा। चौकोना मण्डप कमर भर ऊँचा। ऊपर चढ़ने के लिए चार ईंट रखकर सादी सीढ़ियां बनी हुई थी। खजूर के पत्तों की बनी बड़ी सी चटाई बिछी हुई थी। हंसली की शक्ल में लोग बैठ गये। बाबू भैया थे। हमारी छोटी मलिकाइन जैसा चेहरा मोहरा वाली एक जनानी भी थी। पश्चिम की ओर कम्बल की एक चितकबरी आसनी रक्खी थी, उस पर अधेड़ उम्र वाले चोटी घाटी एक बाबू बैठ गये। इसके बाद सब एक आवाज में श्लोक पढने लगे। मेरी हिम्मत नही हुई कि मंडप में जाकर बैठूं। नीचे ही अलग खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद जो जनानी थी उसने भजन गाना शुरू किया। बाकी बाबू भैया उसके गाये पदों को दुहराने लगे।"[२]

"यह आसरम दस बीघा जमीन के हाते में फैला हुआ था। साकीन– बरहमपूरा, थाना– लहेरिया सराय, जिला– दरभंगा। यहां के बहुत बड़े जमींदार बाबू शुभंकर ठाकुर भुंइहार खानदान के थे। अच्छे जमींदारों में इनकी गिनती थी। अस्सी नब्बे हजार की माल गुजारी असूल होती थी। डेढ़ हजार बीघा धनहर खेत अपने जोत में था। बीजू और कलमी आमों के बाग पचीसों बीघा तक फैले हुए थे। करजान

---

[१] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ, पृ० १२–१३
[२] नागार्जुन– बलचनमा, पृ० ५०

था, खढोर थी। गाय–बैल, घोड़ा भैंस के चरने लायक पचासों बीघा जंगल था। आठ दस छोटे बड़े पोखर थे। गुमाश्ता, बराहिल, अमला–फैला, नौकर–चाकर, देवान जी, मुनशी जी, सब थे।"[२]

वर्णन में, (विवरण में) चित्र विधायिनी–शैली प्राकृतिक परिवेश को सजीव बनाती है; वर्णन की अलंकारिक–शैली छायावादी काव्य–शैली का आग्रह है। 'वरूण के बेटे' में मछलियों का एक दृश्य अत्यंत ही चित्रात्मक बन पड़ा है। "लाल–लाल मुंह वाले रेहु अपनी रूपहली और सुरमई छिलकों में खूब ही फब रहे थे... गोल–गोल, खुला–खुला मुखड़ा ऐसा लगता कि पेट तक खोली ही खोली होगी। इन्द्रधनुषी सूरत एक–एक बेहद नुकीली मूँछें और लम्बी छरहरी डील की अपनी खूबियों से बुखारी मछलियाँ सबको आकर्षित कर रही थी। मटमैली चिकनी सूरत वाले भाकुरों की शान निराली ही थी। कि चिकनी चपटी रुपहरी मोदनी पर तो निगाहे टिकती ही नहीं थी। मुन्ना का भी यही हाल था। न न रेहु का ही सगा लगता था।"[१]

नागार्जुन "बोली और लिखी गयी भाषा की विभिन्न भंगिमाओं को समेटनें की कोशिश करते हैं। विशेष ध्यान यह रहता है कि वह चरित्र संगति की कसौटी पर खरी उतरे।"[२] कथ्य की यथार्थता, रसात्मकता तथा विश्वसनीयता की जकड़ भाषा से होती है। अनुभूति एवं संवदना की प्रतीति भाषा के माध्यम से संभव है। वे अपने उपन्यासों में इस बात का पूरा ध्यान रखते है। कि सामाजिक आर्थिक स्तरों की विभिन्नता के कारण भाषा–भेद कहां कैसा किस तरह पैदा हो जाता है। "किन्तु जहां वे खुद चीजों, दृश्यों, ऋतुओं और प्रसंगों पर विचार व्यक्त करते है। वहां उसका एक और भी रूप उभरता हुआ दिखाई देता है। ऐसे स्थलों पर भाषा वेहद काव्यात्मक, चित्र–विधान, परिपूर्ण और गम्भीर विचारोपयुक्त हो उठी है"[३]

---

[२] नागार्जुन– बलचनमा, पृ० ८६

[१] नागार्जुन– बरुण के बेटे, पृ० ३०८।

[२] विजय बहादुर सिंह– नागार्जुन और उनका रचना संसार, पृ० १४३।

[३] विजय बहादुर सिंह– नागार्जुन और उनका रचना ससार, पृ० १४३।

चित्रात्मक भाषा का स्वरूप बरूण के बेटे में, "खुरखुन के होठ अलग–अलग फैल गए और बत्तीसी बाहर झाँकनें लगी। दाँत क्या थे, पकी–पोढ़ी लौकी के पंक्ति–बद्ध बीज थे मानों! वैसे ही सफेद, साबित और यकसाँ"[1]

विचारपूर्ण भाषा का रूप

"समाज उन्हीं को दबाता है; जो गरीब होते हैं। शास्त्रकारों को बलि के लिए बकरे ही नजर आये। बाघ और भालू का बलिदान किसी को नहीं सूझा। बड़े–बडे दांत और खूनी पंजे पंडितो के सामने थे, इसलिए उधर से नजर फेरकर उन्होने वेचारे बकरों का फतवा दे डाला।"[2] इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में विवरण (वर्णन) परक शैली का अवकाश है, वे समय न देखकर समाज देखते है। उनके समाज के पीछे समय भी चलता है। सभी उपन्यासों में इस शैली का यदा–कदा वर्णन मिल जायेगा वनिस्पत 'बाबा बटेसरनाथ' व 'बरूण के बेटे' इन उपन्यासों की रचना तो उनके विवरण–प्रधानता की दृष्टि से ही दिखलाई पड़ती है।

३. लोक कथात्मक (संभाषण) शैली

आंचलिक उपन्यासो में लोक उपादानों का समाहार वैशिष्ट्य गुंण है। लोक–जीवन और कथा का सम्बन्ध सदियों से रहा है। मौलिक रूप से प्रचलित कथा साहित्य की इस रीति को आंचलिक कथाकारों ने जीवन की गति के साथ गूँथ दिया है। मानव और मानवेतर प्राणियों पशु–पक्षी, भूत–प्रेत परी–चुडैल देवी और ग्राम देवता आदि से इन कथाओं का सम्बन्ध रहता है। मिथिला के अंचल को वे इतना जानते है, जितना कोई अपनी माँ को!। इसीलिए वे सिर्फ मोह में फंसे हुए प्रेमी नही है। उनकी आखें खुली है। और वे इस मातृ–ऋण को अदा करना चाहते हैं– "विपुल उनका

[1] नागार्जुन– बरुण के बेटे, पृ० ३२३।
[2] नागार्जुन– रतिनाथ की चाची, पृ० ५४।

ऋण सधा सकता न मै दशमांश, जैसी पंक्तियों में उनकी यही गहरी पीड़ा प्रतिध्वनि हो रही है। उनका समूचा लेख इसी ऋण–शोध की परिणिति है।"[1]

लोककथाओं में मुख्य प्रसंग के साथ ही इसमें प्रासंगिक और गौण कथाएं परस्पर पात्र के रूप में बढ़ती रहती है। नागार्जुन ने 'बाबा बटेसरनाथ' के कथानक में अंचल के लोक उपादानों को सर्वाधिक अपनाया है साथ ही आचंलिक परिवेश, आदिम विश्वास आदि प्रसंगों को उजागर किया है। इसी अंचल की लोक कथात्मक–शैली के 'बाबा बटेसरनाथ' में कुछ प्रयोग दृष्टव्य है–

"घबराने की क्या बात है? उस अद्‌भुत ने जैकिसुन की ठुड्डी छूकर कहा, "मै तुम्हारे इस बरगद बाबा का अवतार हूँ, डरने की कोई जरूरत नहीं है। बेचारे जैकिसुन को कुछ भी समझ में नही आया कि वह कहॉ है और किसकी बातें सुन रहा है। यह स्वप्न है या यथार्थ, इसका भी निर्णय वह नहीं कर पाया।

वैसे विशालकाय मनुष्य उसने आज तक देखा नहीं था। आल्हा–ऊदल, लोरिक और कुँवर विजई वगैरह वीरों की गाथाऍ सुन–सुनकर उनके बारे में जिस भारी भरकम स्वरूप की धारणा होती है, इस वृद्ध का आकार–प्रकार, कुछ–कुछ उसी कोटि का लगा जैकिसुन को। बरगद बाबा को इस तरह सदेह सामने पाकर उसे प्रसन्नता भी बेहद हो रही थी।"[2] अन्यत्र बाबा कथा कहता है–"मंदिर से जरा हटकर बरगद का एक भारी पेड़ था। उसके बरोज धरती को कब के छू चुके थे और बाकी पतली डाली में विकसित होकर फिर से ऊपर उठ गये थे। वह वृक्षराज इस तरह अपनी बीसियों बरोज धरती धंसाकर अविराम रस ग्रहण कर रहा था। मंदिर बनते समय वहीं कई टेकियां खड़ी हो गयी होगी और मजदूरिनों ने उन्हीं से चूर चूर–कर ईटों का चूरन तैयार किया होगा। कई वर्षो तक यह सिलसिला चला होंगा, मंदिर के निमार्ण में निश्चय ही कई वर्ष लगे होगें। ईटों के चूरन की सुर्ख ढेरी पर

---

[1] विजय बहादुर सिह– नागार्जुन और उनका रचना संसार, पृ० १२८।
[2] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ, पृ० १४–१५।

वह निरीह निरपेक्ष हो गया था। जीर्णोद्धार होने लगा तो कारीगरों नें मेरे दुर्भाग्य के प्रति गहरी संवेदना प्रकट की। और तो वे कर ही क्या सकते थे, मंदिर के पिछवाडे वाले खुली जगह में छोटा सा एक गड्ढा खोदकर उसमे मुझे उन्होनें लगा दिया।"[१]

लोक–कथा में नागार्जुन ने उन सभी चीजों वस्तुओं व देहाती जीवन का वर्णन किया है जो उनके अंचल में विद्यमान थी। रात के आखिरी पहरो में भैसों की पीठ पर बैठे हुए चरवाहों के मीठे गीत गाना, चौदह–चौदह, सोलह–सोलह, साल की अल्हड़ लड़कियों का गाय भैसों की चरवाही करना, शरीर पर गुदने गुदवाना, जवान औरतों का बाबा बटेसरनाथ के कधों पर हाथ डालकर आत्मीयता प्रकट करना, फसलों का फूटना, खलिहानों का खिलखिलाना, शादी–विवाह, मंडन–छेदन, जनेऊ–उपनयन, तीर्थब्रत करना, बारातों में हाथी, घोडा, ऊँट, बैलगाड़ी, पालकी, तामदान...। न जाने कितने अद्‌भुत पुराने–नये दृश्य है जिन्हें इस लेखक ने यहां टांक दिया है।"[२]

लोक–कथा से ही संम्बन्धित एक प्रसंग जिसे बाबा बटेसरनाथ में वर्णित किया गया है, जिसके अन्तर्गत ग्रामीणों की तांत्रिक में व्यक्त श्रद्धा–भाव को व्यक्त किया गया है। ग्रामवासी जादू–टोना, भूत–प्रेत आदि पर अधिक विश्वास करते हैं। नागार्जुन ने भी उसी विश्वास की पुष्टि लोककथात्मक–शैली के अन्तर्गत यह प्रसंग जोड़ा है–

"जद्‌दू के लड़के की शादी पचपन वर्ष की आयु तक नही हुई। वह अपने बरहम बाबा को पांच बार बकरे की बलि दे चुका, तब भी कोई लड़की वाला उसे पूछने नही आया। अब अपने खानदानी ब्रह्म के बारे में मद्धू की श्रद्धा डिगने लगी। ज्योतिषी, साधु–संत ओझा–गुनी, औघड़–औलिया जो भी मिलता उससे मद्धू अपनी शादी की बाबत पूछा करता है। आगे फिर मद्धू डोमड़ा का गुण–गौरव पहले ही सुन चुका था। अब अपने ब्रह्म से उदास होकर वह उसके पास पहुंचा। सारी बातें ध्यान

---

[१] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ, पृ० २७।
[२] विजय बहादुर सिंह– नागार्जुन और उनका रचना संसार, पृ० १३०–३१।

से सुनकर औघड बोला– "तुम्हारा बरहम पाजी है। बरगद का सहारा उसे जब तक रहेगा तब तक तुम्हारी शादी नही होगी। कहो, तो चलकर मै उसे कैद कर लाऊँ।" मद्धू राजी हो गया। कुछ दिन बाद डोमड़ा रूपउली आया।

आधिक लाल भी ब्रह्म की ओर से उदास थे। छोटी जात वालों की पाठकों के उस खानदानी बरहम में उतनी दिलचस्पी नही थी। जितनी कि उनके अपने देवताओं– भुइयां महाराज, सलहेस राजा, और दीना भद्री वगैरह में– कंकाली माई का नाम लेकर औघड नें एक ही सांस में देसी ठर्रे का अद्धा चढ़ाया, महाप्रसाद तैयार किया था, जी–भर उसे भी पी लिया इतमीनान से चरस का दम लगाया। फिर चिमटा और झोली संभालकर मेरे करीब आया..."[१] फिर "तब तक भारी–भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। सभी दम साधकर औघड़ का करतब देख रहे थे और मैं खूब खुश हो रहा था।

उस कील को औघड़ नें मेरे सीने में जरा–जरा ग्यारह दफे ठोक–ठोंक कर निकाल लेता और देखलेता, ग्यारहवीं बार बोला–...चकरपाइन पाठक! अब तुम इस कील की हिरासत में आ गए बाबू! चलो अब मेरे साथ...।

औघड़ वह कील साथ लेता गया। रूपउली से उत्तर मकरमपुर के नजदीक जीबछ की पुरानी धार के किनारे पर एक बुड्ढा पीपल था, उस कील को बाबा जी ने उसी के सीने में ठोंक दिया... हथोड़ी की चोट से जब समूची कील ठुक चुकी तो औघड़ भभाकर जोरों से हंसा था। रूपउली से पचासों जने तमाशा देखने गये थे।

इस तरह मुझे उस ब्रह्म–राक्षस से छुटकारा मिला और अगले ही वर्ष मद्धू पाठक का ब्याह एक लंगड़ी लड़की से हो गया था।"[२] इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में लोक–कथात्मक–शैली का वर्णन जितनें सरल और सहज ढंग से मिलता

---

[१] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ, पृ० ७३।
[२] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ, पृ० ७५।

है। वह उनकी औपन्यासिक कला को ही पुष्ट करता है। उपन्यासकार की भाषा की सफलता का प्रमाण है इसकी वर्णन विश्वसनीयता जो नागार्जुन को हांसिल हैं, साथ ही वे बीच–बीच में 'मुस्कान की बुकनी' जैसे लोक सौन्दर्य वाले विम्ब लजकोटर जैसे टिपिकल देहाती प्रयोग और 'इसटीसन' जैसे ध्वनि विकृतियाँ अपना लेते हैं जिनसे उनकी भाषा की रंगीनी और विविधता का पता लग सकता है।"[१]

"आंचलिक उपन्यास जीवन का यथार्थ रूपण है। इस यथार्थ की पकड़ और परिचय भाषा द्वारा ही सम्भव है। अतः अंचलिक उपन्यास के यथार्थ और उसकी भाषा का घनिष्ठ संबंध है। अंचल विशेष के जीवन को यर्थाथता से कथाबद्ध करना आंचलिक उपन्यासकार का ध्येय रहता है। मानक भाषा या परिनिष्ठित भाषा को आंचलिकता प्रदान की जाती है। खड़ी बोली के अन्तर्गत स्थानीय शब्दों के प्रयोग द्वारा रसात्मकता का निर्वाह आंचलिक भाषा है। खड़ी–बोली को स्थानीय छौंक देकर जायके दार बना दिया गया है।[२]

इस प्रकार की भाषा के संदर्भ में रेणु जी के विचार आंचलिक भाषा–रचना की उद्देश्यात्मकता को स्पष्ट करते हैं। "देखिए, यों जब साधारण जनता की बात कहनी हो, तब वे लोग बोलते हैं, तो जाहिर है कि अपनी गाँव की बोली में बोलते हैं... मुझे लिखना पड़ रहा है उसको हिन्दी में।"[३]

नागार्जुन की सभी शैलियों में एक नयापन सदैव बना रहता है। उनके विवरण प्रधान कथानकों में सूचनाओं के बदले नाटकीय शैली का प्रयोग अधिक है। आम, लीची, तालमखाने, और मछलियों की किस्में गिनाते हुए वे जितने सूचना–समृद्ध लगते है, वहीं मार्मिक प्रसंगों के संदर्भ में वे सघन दृश्यात्मक–शिल्प का उपयोग करते दिखाई देते हैं।

---

[१] विजय बहादुर सिंह– नागार्जुन और उनका रचना संसार, पृ० १४३–४४।

[२] नया प्रतीक, जून१९७७, पृ० १० में लेख।

[३] डा० चन्द्रभानु सोनवड़े– कथाकार फणीश्वर नाथ रेणु, पृ० १३।

नागार्जुन भाषा में क्रिया और संज्ञा के बीच नया संयोग स्थापित कर भाषा को नयी भंगिमा देते है और यह भंगिमा समकालीन समाज की वास्तविकता का साक्षात्कार करा देती है। नागार्जुन ने जीवन संघर्ष के दौर में भाषा–शास्त्रीयता और प्रेषणीयता के सामंजस्य का अद्भुत उदाहरण पेश करते हैं। लेकिन यह तय है कि नागार्जुन की भाषा में आकर्षण अर्थ–गौरव से आया है, शब्द चमत्मकार से नहीं। हॉ यह जरूर है कि उनकी भाषा अर्थ–गौरव को वहन करने में जरा भी पीछे नहीं है।

"जिस दबाव में उन्होनें अपनी गद्य–रचनाएं की उसमें उन्होंनें संक्षिप्तता और उद्देश्यपरकता दी, इसीलिए उनके गद्य का स्वरूप भी अपने तमाम समकालीनों से भिन्न है।। उनकी कई कविताओं को देखने से लगता है कि वे गद्य जैसी ही अभिव्यक्ति लिए हुए है। यानी सीधा, सपाट, सीधे अपनी बात कहने वाला ढंग। उनके गद्य का सौन्दर्य समय और विषय–वस्तु की सच्चाई पर आधारित है। जिस तरह उनकी कविताओं के बारे में कहा जाता है कि जो छंदों–बद्ध उनमें कहीं कोई खोट नही है, उसी तरह उनके गद्य में भी भाषागत, रचनागत, विन्यासगत कोई दोष नही है।"[१]

---

[१] अनिल सिन्हा– नागार्जुन का गद्यः एक जरूरी टिप्पणी, पृ० १५६।

अध्याय—चतुर्थ

आँचलिकता के सन्दर्भ में औपन्यासिक तत्वों का अन्वेषण

आंचलिकता

ऑचलिकता अपने आप में एक जीवित संस्कार है, सह निरंतर गतिशीलता के साथ ही रीतिवादी जीवन के प्रति नवीनता का स्रोत भी है। यह आधुनिक उपन्यास विधा की एक नयी उपलब्धि है। यह उपलब्धि नयी और पुरानी दोनों पीढ़ियों के वैचारिक तथा भावनागत संघर्ष के प्रभाव स्वरूप उत्पन्न हुई है। परिवर्तन की गति तथा नूतन का प्रमाण है। इसी नूतनता की भाँति यह आंचलिकता भी जो नये सृजन से अनुप्रेरित है, आधुनिकता का ही भावबोध कराती है। परिणाम स्वरूप आंचलिकता आधुनिक साहित्य का एक विशिष्ट अंग है।

'अंचल' शब्द से आशय किसी प्रदेश विशेष से है। अर्थात वे उपन्यास जो किसी विशेष ग्राम, प्रांत या भूखंड से संबंधित कथा को लेकर चलते हैं, आंचलिक विशेषण से विभूषित किये जा सकते हैं। जनपद या ग्राम क्षेत्र विशेष से आवद्ध होने की प्रवृत्ति ही आंचलिकता है। अतः आंचलिक उपन्यास उन उपन्यासों को कहते हैं, जिनमें किसी विशेष जनपद अंचल (क्षेत्र) के जनजीवन का समग्र चित्रण होता है। 'समग्र' का अर्थ है– भाषा, वेषभूषा, उत्पादन के साधन, प्रकार विनिमय, संक्षेप में आर्थिक जीवन, उस आर्थिक जीवन पर आर्थिक वर्गों और जातियों के परस्पर संबंद्य, सांस्कृतिक, धार्मिक विश्वास, विवाह, मृत्यु आदि। आचार, शिष्टाचार, चरित्र, शिक्षा– जीवन दर्शन, सामाजिक समस्यायें, राजनीतिक जीवन एक अंचल का दूसरे अंचल से संबंध, अंचल की विशिष्ट और सामान्य परम्परा और प्रगति, इन सब विषयों का जब किसी उपन्यास में चित्रण होता है और जब उपन्यास को पढ़कर हमारे सम्मुख उस

अंचल विशेष का समग्र जीवन अवतरित हो जाता है तब हम उस उपन्यास को आंचलिक उपन्यास कहते है।" [१]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आंचलिक उपन्यासों में वर्तमान जीवन की परम्परायें किस प्रकार अतीत की परम्पराओं और मान्यताओं से प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जुड़ी हुई है इसका विवेचन तथा उस जन जीवन की भाषा, वेषभूषा, उत्पादन के साधन, प्रकार–विनियम वर्ग और जातियां तथा उनका परस्पर संबंध धार्मिक विश्वास, जन्म से लेकर मृत्यु तक के आधार, शिष्टाचार, चारित्रिक आदत, मनोरंजन के साध, व्यसन कलायें, भोजन–पात्र तथा अन्य मान्यताएं, शिक्षा–दीक्षा, जीवन दर्शन सामाजिक उत्सव और समारोह आदि के अतिरिक्त इन उपन्यासों में उस अंचल विशेष की भौगोलिक स्थिति राजनीतिक महतव, नदियों, जंगलों, पेडों, पौधों, भूमि की बनावट और परिवर्तन, फसलें और उनसे वहां के जन–जीवन का संबंध, बदलते हुए सामाजिक मूल्यों आदि का विश्लेषण रहता है।

इस प्रकार किसी देश के स्थान, प्रांत, प्रदेश,जनपद, क्षेत्रीय इकाई की विशेषता, प्रवृत्ति और महत्व के आधार पर रचित काब्य, कहानी, नाटक, उपन्यास, चित्रकला आदि के साथ आंचलिक विशेषण जोड़ा जाने लगा। कहने की आवश्यकता नहीं है कि हिन्दी के आंचलिक कथा साहित्य की रचना का सूत्रपात इसी कोटि के विदेशी साहित्य की प्रेरणा तथा प्रभाव से ही हुआ और क्षेत्रीय या स्थानीय कथावस्तु पर रचित तथा अंचल विशेष के यथार्थ वातावरण, परम्परागत जीवन शैली, आचार–ब्यवहार, मान्यता, भाषिक, अभिब्यक्ति, लोकवृत्ति और मनोविज्ञान आदि से सम्बन्धित नाना तत्वों तथा उपादानों से रंगे चरित्रों को उसकी समग्रता के साथ आत्मीयतापूर्ण ढंग से चित्रित एवं वर्णित करने वाले उपन्यास के लिए आंचलिक विशेषतया स्वीकृत होकर सर्वमान्य भी हो गयी।

---

१ डा० कड़वे– 'हिन्दी उपन्यास में आंचलिकता की प्रबृत्ति'

ऐतिहासिक दृष्टि से अंग्रेजी अरनाल्ड बेनेट और हार्डी के उपन्यासों से आंचलिकता का यह आंदोलन प्रगतिवादी साहित्य से जुड़ा रहा है, जिससे पनपदीय भाषाअओं में साहित्य रचना का आंदोलन चल निकला। इस आंदोलन का उद्देश्य ग्रामांचलीय जनजीवन की ओर जाकर उसकी समसयाओं का यथार्थ चित्रण करना था। इस उद्देश्य से रचित उपन्यास आदर्शवाद के विपरीत भारतीय ग्राम्य जीवन की विरूपताओं तथा दुर्बलताओं को उभारते हुए उसके वास्तविक स्वरूप का उद्घाटन करते हैं।

आंचलिक यथार्थवाद के समर्थन में आदर्श ग्राम्य जीवन की मान्यता तथा चित्रण की औपन्यासिक प्रवृत्ति के प्रति विद्रोह की चेतना ऐसे उपन्यासों की मूल प्रेरणा है। इसमें जनपदीय, संस्ककृति, दृष्टि, लोकतात्विक चेतना और समस्या के प्रति लेखक की आग्रहशीलता, आत्मीयता और संवेदनशीलता अधिकाधिक दिखलाई पड़ती है। वैसे, इन विशेषताओं, प्रवृत्तियों और विषयों को लेकर स्थानीय, परिवेश, भाषा, बोली, रहन–सहन, व्यवहार, आचार–विचार, विश्वास, वेशभूषा, खान–पान का चित्रण रिन्दी उपन्यासों में पहले से होता आया है। किंतु उसमें निशुद्ध ऑचलिक उपन्यास बहुत कम है।

सन् १९५४ ई० में सबसे पहले फणीश्वरनाथ रेणु ने "मैला आँचल" की भूमिका में उसे आंचलिक उपन्यास की अभिधा प्रदान करते हुए हिन्दी कथा साहित्य की दहलीज पर उसकी प्रथम प्रस्तुती की उद्घोषण की थी। अपने उपन्यास की संक्षिप्त भूमिका में रंणु ने, सुमित्रानंदन पंत की एक काब्य पंक्ति के आध्धार पर, अपने उपन्यास को आंचलिक उपन्यास कहा। इसकी कथा–भूमि पूर्णिया के लिए रेणु ने 'कथानक' शब्द का प्रयोग किया है। इसकी भौगोलिक हदबंदी की ओर संकेत करते हुए वे लिखते है 'पूर्णिया विहार राज्य का एक जिला है, इसके एक ओर है, नेपाल, दूसरी ओर पाकिस्तान (बाद में बांग्लादेश), और पश्चिमी बंगाल। विभिन्न सीमा–रेखाओं से इसकी बनावट मुकम्मल हो जाती हो जाती

है, जब हम दक्खिन में संथाल परगना और पश्चिम में मिथिला की सीमा–रेखाएँ खीच देते है। मैने इसके एक हिस्से के एक ही गॉव को पिछड़े गाँवो का प्रतीक मानकर इस उपन्यास कथा का क्षेत्र बनाया है–"[1] छोटे–छोटे अपरिचित अंचलो की यह खोज ही ऑचलिकता का मूलकारक बनकर सामने आई। छोटे से अंचल को, जैसा कि मैला ऑचल के सन्दर्भ में रेणु ने कहा है, संपूर्ण राष्ट्र का प्रतीक मानकर यह छोटे से गोल शीशे में पूरा ताजमहल दिखाने वाला आग्रह था।

अपने उपन्यास की अंतर्वस्तु की ओर संकेत करते हुए जब रेणु उसमें शूल और धूल तथा कीचड़ और चंदन एवं सुंदरता और कुरूपता–एक साथ और एक जगह ही सब कुछ होने की बात करते हैं, तो वस्तुतः वे अंचल की संपूर्णता की ही बात कर रहे होते हैं। रेणु जी अंचलके संपूर्ण अंतर्बाध्य व्यक्तित्व को सम्पूर्ण निष्ठा के साथ उद्घाटित करने की बात भी करते हैं। यह निष्ठा ही वस्तुतः अपने लिए चुने गये अंचल से लेखक को एक रागात्मक और आत्मीय सूत्र से जोड़ती है। यह रागात्मक उत्कट रूप धारण करने पर उस अँचल के प्रति एक रोमानी भाववेश में बदलती दिखाई देती है।

प्रेमचंदोत्तर उपन्यास काल में आँचलिकता एक आंदोलन बन गया था उपन्यास लिखने की विधा का, इस नयी कथा–प्रवृत्ति ने जिस प्रकार हिन्दी साहित्य में उपन्यास के परम्परा प्राप्त रचना सिद्धान्त को प्रभावित किया है, उसी प्रकार उसके बिषय विस्तार के लिए नवीन क्षेत्र के द्वार भी उन्मुक्त कर दिये हैं। आंचलिक उपन्यास में यह अंचल एक स्वतंत्र और सम्पूर्ण व्यक्तित्व बनकर उपस्थित रहता है।

उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब अमेरिकी उपन्यासकारों बिट हार्ट और हैरेट वियर स्टो आदि ने सुदूर अमेरिकी अँचलों को अपनी रचनाओं को केन्द्र में रखकर उपन्यास लिखे तो उनका विशेष आग्रह इस बात को लेकर था कि अँचल के

---

[1] भूमिका, मैला ऑचल प्रथम सस्करण १९५४

व्यक्तित्व पर लेखक का मध्यवर्गीय सोच हावी नहीं होना चाहिए। अँचल का वैशिष्ट्य पात्रों के माध्यम से, उनके जीवन और व्यवहार से उभरकर आना चाहिए– लेखक के विचार की भूमिका वहाँ नगण्य रहनी चाहिए।

जब टॉमस हार्डी ने 'वैसेक्स' जैसे एक काल्पनिक क्षेत्र को केंद्र में रखकर अपने उपन्यासों की रचना की तो उनका जोर उस क्षेत्र के सम्पूर्ण वैशिष्ट्य को ही रूपायित करना था। हार्डी के पात्र उस अँचल की विशिष्टताओं से ही निर्मित और परिचालित पात्र है– लेखकीय हस्तक्षेप के उदाहरण वहॉ विरल है। अभिप्राय यह है कि उपन्यास के तत्व अँचल के तत्वों के मेल में लाये जाते है। और इस प्रक्रिया को सफलता पूर्वक पूर्ण करने का दायित्व लेखक की क्षमता, अँचल के सम्बन्ध में इसकी गहन अनुभूति, आँचलिक जीवन तथा परिवेश के प्रति उसकी समझदारी, संवेदना, सहानुभूति, एकाग्रता, एकरसता, पहुँच और उस क्षमता को कलात्मक परिणत देने की योग्यता पर निर्भर है। अँचल विशेष के विषय में सुनी–सुनाई या पढ़ी–पढ़ाई सूचनाओं को लेकर कल्पना के सहारे उसके वैचित्र्य भरे वृतान्त की ही सृष्टि की जा सकती है और आर्थिक विषमताओं के अभिकरणों– साहूकार, जमीदार, कारिन्दा, पुरोहित, पुलिस के हथकण्डों और अत्याचारों की अधूरी कहानी पढ़ी जा सकती है परन्तु उसके यथार्थ जीवन के चित्रण के लिए आवश्यक लेखकीय अनुभूति तथा साहचर्य संभूत स्वाभाविकता, आत्मीयता, रागात्मकता, गहनता और परिवेश की सूक्ष्म चित्रकारी के लिए आंचलिक तथ्यों की विवरणात्मक व्याख्या मीमांसा तो बनावटी नहीं हो सकती। इसीलिए नन्द दुलारे बाजपेयी ने "अपरिचित भूमियों और अज्ञात जातियों के वैविध्य पूर्ण चित्रण करने वाले उपन्यास को आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी है।"[1]

इसलिये यह आवश्यक है कि आँचलिक उपन्यासकार का अपने कथा क्षेत्र से अत्यन्त निकट का परिचय तथा सम्बन्ध हो और वह किसी न किसी सीमा तक

उसके जीवन विधान में अपनी भावात्मक या क्रियात्मक साझेदारी रखता हो। वह उसके जडी भूत और गतिशील जीवन का साक्षी हो, उसके शिव तथा अशिव पक्षों का भोक्ता हो। तभी वह उस अंचल की समग्र चेतनाएवं क्रियाशीलता का समाहार कर अपनी कृति द्वारा उसके सच्चे प्रयोक्ता एवं प्रवक्ता का दायित्व पूरा कर सकता है।

उपन्यास के समस्त तत्वों में यद्यपि कथानक या कथावस्तु का सर्वाधिक महत्व होता है,क्योंकि इसी के आधारभूत ढॉचे पर घटनाओं की बुनावट, पात्रों को चरित्र योजना और उद्‌देश्य की प्राप्ति संभव होती है। किन्तु ऑंचलिक उपन्यास में शीर्ष महत्व देशकाल, वातावरण और परिवेश के विशिष्ट चित्रण को दिया जाता है। चित्रण की यही विशिष्टता उपन्यास के अन्य तत्वों की अपेक्षा ऑंचलिकता की सिद्धि के लिए एक सीमा तक जिम्मेवार होती है।

पूर्वनिर्मित किसी नैतिक उपदेश की चर्चा आंचलिक उपन्यास में नहीं होती है। यद्यपि उपन्यासकार नैतिकता की खोज करने वाले को उसमें पात्रों की भावनाओं के चित्रण द्वारा पर्याप्त सामग्री प्रदान करता है। डी० एच० लारेन्स अपने उपन्यासों में पात्रों की भावनाओं पर जिस ढंग से हिट करते है, वैसा अन्य उपन्यासों में नही दिखाई पड़ता। उनकी 'बार्डरलाइन' कथा की नायिका के संकल्पों, विकल्पों की चर्चा करते है, यहॉ अंत में वह अपने पति की प्रतिक्रियाओं को भी चित्रित करने में सफलता प्राप्त की है। भावनाओं का तीव्र संघर्ष इस कथा का प्राण है। ऑचलिक कृतियों में किसी अचीन्हे वर्ग के लोगों की भावनाओं का तीव्र संघर्ष चित्रित होता है। जीवन से साक्षात् हीनता की स्थिति में ऑंचलिकता के नाम पर लिखा गया साहित्य केवल बाजारूपन फैशन–परस्त ऑंचलिक मात्र होती है। यहॉं पर लेखक के सांस्कृतिक दृष्टिकोण के साथ नागार्जुन 'बाबा बटेसरनाथ' के माध्यम से 'रूपउली' ग्राम का अतीत एवं वर्तमान जीवन्त रूप में प्रस्तुत करते है, अथवा 'रामदरश मिश्र'

---

[1] आयार्च नंद दुलारे बाजपेयी–सारिका मासिका अक्टूबर १९६१

'पानी के प्राचीर' द्वारा गोरखपुर के पास की जिन्दगी सही ढंग से रेखांकित करते है, वह कदापि न संभव होता यदि लेखक वहॉ के जीवन की प्रवहमान धारा के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े न होते।

अंचल विशेष की भाषा का ज्ञानी ही आँचलिक उपन्यास का सर्जक हो सकता है। इसके लिए जरूरी होता है कि सर्जक वहॉ का बाशिन्दा हो अथवा वहॉ दीर्घकाल से प्रवास कर चुका हो। कभी–कभी स्थानीय बोली की शब्दावली के लिए नीचे फुटनोट का भी सहारा लिया जाता है।

उपन्यास में आँचलिकता के संश्लिष्ट चित्रण के लिए उपन्यासकार में वह कला होनी चाहिए, जिससे वह अॅचल विशेष से सम्बन्ध रखने वाले उन सभी तत्वों को कथ्य के रूप में व्यक्त करने में सफल हो सके। जो वहॉ के ब्यक्तियों के चित्रता को पूर्णता दे सके। 'राल्फ फाक्स' का कथन है कि उपन्यास गद्यात्मक कथा मात्र नहीं है, वरन् वह मानव–जीवन को अभिव्यक्त देने वाला गद्य है जिसमें ब्यक्ति को सम्पूर्णता में ब्यक्त करने का प्रयास सन्निहित होता है।"[१]

आंचलिकता का सर्जक प्रकृति के नानारूपों को अपनी चेतना में भरकर अंचल–जीवन का जीवन्त चित्रण करता है। इसके लिए आवश्यक होता है कि लेखक के मन पर उस प्राकृतिक परिवेश की गहरी छाप हो । लेखक पर यह छाप जितनी गहरी होगी, उस अंचल की मानवीय स्थिति के चित्रण में उतनी ही अधिक सघनता भी होगी। ताल–तलैया, गढ़ पोखर, बाग–बगीचे, नदी–नाले, सीवान, भीटों पर खिले पलाश, पीपल–बरगद की सघन छायाएँ, खपरैलों के मकान, बाँसों के झुरमुट तथा हनुमान जी के पुराने मन्दिर आदि ग्रामांचल के चित्रण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। बचपन की मधुर स्मृतियों से लेकर युवा–जीवन के संघर्षो तक यह प्रकृति गांव के बाशिन्दों की चिर संगिनी बनी रहती है। इन प्राकृतिक उपादानों को लेखक व्यक्तियों की भावनाओं से संयुक्त कर चित्रित करता है।

वस्तुतः लेखक अपनी रचना का स्रोत प्रकृति की इन्ही छटाओं से ही जुटाता है, यह एक ऐसा रचनागर्भ है जो कभी नही सूखता है। प्रकृति के प्रति वहॉ के लोगो की दृष्टि और लेखक की दृष्टि में काफी अन्तर होता है। प्रकृति ग्रामवासियों के सुख–दुख की दृष्टा होती है, चिर संगिनी होती या यो कहे कि वह परोक्ष रूप से सहभागिनी होती है और लेखक के व्यक्तित्व की वहॉ दुहरी भूमिका होती है। एक ओर वह स्वयं अन्य व्यक्तियों की तरह प्रकृति का एक अभिन्न अंग होता है और साथ ही साथ प्रकृति और ब्यक्ति के संबधो का ब्याख्याकार होता है। जाहिर है कि लेखक यहॉ कल्पना के रंग से अपने चित्रण को रंग नहीं सकता। यथार्थ के चित्रण के लिए वास्तविकता का साक्षात्कार होना जरूरी है।

लेखक को नवजागृति के प्रकाश में करवटे लेते हुए ऑचलिक समुदाय में परिवर्तन की भूमिका स्वयं गढ़नी पड़ती है। स्थान–क्षेत्र–विशेष के कुत्सित एवं सौन्दर्य पक्ष का उद्घाटन करते हुए लेखक को किसी अतिवादी दृष्टि से बचना पड़ता है। पतन के गर्त में पड़ी हुई जाति का चित्रण करते हुए लेखक को निराशावादिता से दूर रहकर आस्था एवं संकल्प के बल पर उत्कर्ष का आह्वान करना चाहिए। लेखक जब किसी ग्राम में व्याप्त अधोपतन, नैतिक विपन्नता की चर्चा करता है, तो वहॉ उसका उद्देश्य उस मूल्यहीनता का उल्लेख करना होता है, जिसके कारण लोंगो के नैतिक मानदंड में गिरावट आ जाती है। राजनीतिक प्रश्नों की चर्चा करते हुए भी यहॉ लेखक तटस्थता बरतने की चेष्टा करता है, अन्यथा किसी मतवाद के प्रति उसकी पक्षधरता से उसकी संवेदनशीलता एवं मानवीयता का ह्रास होता है। उसे किसी पार्टी का तोहमत लगाना नहीं रहता है। ऑचलिक कथा में राजनीतिक भूमिकाओं का चित्रण बहुत कलात्मक समन्वय की अपेक्षा करता है। इस प्रकार यहां रचनाकार का उद्देश्य किसी मत के प्रति आग्रह ब्यक्त करना नहीं होता है।

आंचलिक रचनाओं में केन्द्रीय कथा का अभाव होता है। छोटी–छोटी घटनाओं तथा छोटे–छोटे ब्यक्तियों के चित्रण से परिपूर्ण होता है। साधारण पात्र ही मुख्य

नायक की भूमिका निभाते हैं। कहने का आशय यह नहीं है, कि यही केन्द्रीय नायक होते हैं। यहां केन्द्रीयता पूरी तरह नकार के भाव में रहती है। गॉव के साधारण पात्रों के जीवन में भारतीय–युग जीवन की प्रवहमान धारा के वे बिन्दु सहज ही देखे जा सकते हैं, जो देश में परिव्याप्त सन्नाटे को सार्थक अभिव्यक्ति देते है। 'गोदान' में गोबर में गोबर बलचनमा (बालचन्द का बिगडा रूप) में नये संस्करण प्राप्त करता है। साधारण पात्रों से असाधारण स्थितियों का चित्रण कराना आंचलिक कथाकारों की प्रमुख प्रवृत्ति रही है।

नागार्जुन के उपन्यास में उपलब्ध आँचलिक तत्त्व

एक सामान्य उपन्यास में मूलतत्त्व कथावस्तु,पात्र, संवाद, चरित्र–चित्रण, देश–काल, भाषा–शैली एवं उद्‌देश्य होते है, जबकि आंचलिक उपन्यासों में मूलतत्व कुछ अपनी ऑचलिकता की तरह ही विशेषता लिए हुए होते है। जो मूलतत्व ऑचलिक उपन्यास में माने जाते हैं, वे निम्नलिखित है–

१ – कथानक एवं कथावस्तु की ऑचलिकता का आधार।

२ – संवाद में ऑचलिकता का योग।

३ – पात्र के चरित्र–चित्रण में ऑचलिकता ।

४ – लोक संस्कृति का चित्रण।

५ – देश–काल के अंतर्गत राजनीतिक, धार्मिक और भौगोलिक स्थिति का चित्रण।

६ – जन–जागरण की भावना का संकेत।

८ – भाषा शैली एवं उद्‌देश्य में ऑचलिकता।

हम नागार्जुन के उपन्यासों में उपलब्ध आंचलिक तत्वों का क्रम से कथानक, संवाद, पात्र, चरित्र–चित्रण, लोक संस्कृति, देश–काल, जनजागरण, भाषा शैली व उद्‌देश्य को क्रम से विवेचना करते है।

नागार्जुन के पहले छः उपन्यास 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'बाबा बटेसरनाथ,'' 'बरूण के बेटे', 'नई पौध' और 'दुखमोचन' आंचलिक उपन्यास है, रामदरश मिश्र तो ''नागार्जुन के सारे उपन्यास आंचलिक कहे जाते है, और उनमें कही वैसा विखराव नहीं है जैसा कि 'मैला–आंचल,' 'बूँद और समुद्र,' 'पानी के प्राचीर' आदि में है।''[1] मानते है।

कथानक एवं कथावस्तु का आंचलिक आधार

कथानक अंचल केन्द्रित होता है। उसका प्रारम्भ और अन्त मुख्यतया जनपद विशेष से होता है। कथानक में ''जीवन के बहुरंगी चित्रों और विविध पक्षों के अनुभूत सत्य को अभिव्यक्त करना कलाकार का धर्म होता है। आंचलिक उपन्यास मैथिल के जीवन के सच्चे दस्तावेज होते हैं।''[2] आंचलिक उपन्यासों का कथानक प्रायः शिथिल होता है तथा अपेक्षाकृत धीमी चाल से चलने वाला, क्योंकि अंचल युक्त वातावरण के बहुवर्णनों की स्थिरता तथा कला की गत्यात्मकता प्रकृति में विरोध है।

'बाबा बटेसरनाथ' का कथानक कोई मानव शरीर धारी नहीं, बल्कि एक बूढ़ा बरगद का पेड़ है जिसके प्रति गांव के लोगों की भावना वैसी ही है, जैसी अपने किसी बड़े–बूढ़े के प्रति होती है। और इसके लिए वे लोग उस पेड़ को साधारण 'बरगद' नाम से नहीं, अपितु आदरसूचक शब्द 'बाबा बटेसरनाथ' नाम से पुकारते है। 'बलचनमा' का कथानक भी एक अंचल विशेष से रखता है। जिसके अन्तर्गत एक कृषक परिवार का शोषण पूंजीपति जमींदारों द्वारा दर्शाया गया है। 'मालिक के दरवाजे पर मेरे बाप को एक खंभेली के सहारे बांध दिया
गया है। जांघ, चूतर, पीठ और बांह–सभी पर हरी बांस की हरी कैनी के निशान उभर आये हैं। चोट से कहीं–कहीं खाल उधड़ गयी है और आंखों से बहते हुए

---

[1] राम दरश मिश्र– हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा पृष्ठ–२२६
[2] डा० कला मेहता–हिन्दी के ऑचलिक उपन्यास पृष्ठ –१०२

आंसुओं के टंघार गाल और छाती पर से नीचे सूखते चले गये है–"[1] इस प्रकार के शोषण से बलचनमा का पिता मर जाता है। यहां मुख्य कथा बलचनमा के इर्द–गिर्द उसी से सम्बद्ध होती है।

'रतिनाथ की चाची' जिसकी मूल प्रेरणा स्वयं लेखक के जीवन की कुछ मार्मिक घटनाएं हैं, जिन्हें उसने देखा ही नहीं भोगा भी है। भोगने के दौरान निरन्तर तनाव से गुजरा भी है। यही इसका आधार है। 'गौरी' जो उपन्यास की नायिका है, यही केन्द्र में है, कथा इसके ही परिधि पर चक्कर काटती है। यह एक विधवा ब्राह्मणी है, जिसे अपने देवर जयनाथ की कामवासना के शिकार हो जाने के परिणामस्वरूप जीवन भर घर–परिवार की प्रताड़ना सुननी पडती है। महिलाएं, कोख के जाए बेटे तक इसके लिए उसे माफ नहीं करते। एक अकेला रतिनाथ है जिसके मन में अपनी विधवा लांछित और अपमानित चाची के लिए भरपूर आत्मीयता और आदर है। 'बलचनमा' में नागार्जुन ने कथानक को बलचनमा की कई स्मृतियों से सजाया है। जैसे मालिक–मालिकाइन की अत्यन्त निम्नस्तरीय कृपणता और अत्याचार, "अरे, यह तो मेरे बखारों को खुक्ख कर देगा। डेढ़ सेर इस जून, डेढ़ सेर उस जून। छोकड़े का पेट तो देखो, कमर से लेकर गले तक मानो बखिया है। कैसा बेडौल, कितना भयानक, मइया री मइया।"[2] वह जब बहुत खुश होती तो सूखा या बासी पकवान, सड़ा आम, फटे दूध का बदबूदार छेना या जूठन की बची हुई कड़वी तरकारी देती हुई मुझे कहती–"बलचनमा, ऐसी चीज तेरे बाप–दादे ने भी नहीं खाई होगी।"[3] बलचनमा, सुखिया का भूत भगाना, "भूत या जिन्न अक्सर बॉझ औरत को ही पकड़ता है। हमारी मलिकाइन के यहां, उस लौड़ी पर साल में एक–दो बार इस तरह का दौरा आया करता और तब दामो ठाकुर की गुहार होती।.........एक बार उसने अन्दर से खूब जोर लगाकर किवाड़ों को पीटना शुरू किया। मलिकाइन ने अनंत बाबू

---

[1] नागार्जुन–बलचनमा–पृष्ठ ५।
[2] नागार्जुन– बलचनाम–पृष्ठ ६।
[3] नागार्जुन– बलचनमा– पृष्ठ ६।

को बुलाया। वह खूब हट्टे–कट्टे थे।...वह भी मर्दों की तरह पैंतरे बॉधती थी... लेकिन वह तमाशा मैं देख नहीं सका, न दूसरे देख सके। क्योंकि बाहर से किवाड लगा दिये गये।"[1] उसका धान रोपना, बीमार बैल के प्रति सहानुभूति, उसकी प्रथम रेल–यात्रा, आश्रम की दिनचर्या आदि।

'दुखमोचन' मे नागार्जुन की भावना ग्राम–सेवा के आदर्श से युक्त थी। इसका कथानक सीधा एवं सरल है। जटिलता का अभाव है। जटिल मोड़ लाकर घटनाओं को ऊबड़–खाबड बनाने की कोशिश नहीं है, सारा उपन्यास दुःखमोचन के आदर्श ही आदर्शों की राम–कहानी है। नित्याबाबू और टेकनाथ के द्वारा प्रस्तुत विरोध थोथा और हास्यास्पद है।" वस्तुतः लेखक का ध्यान दुखमोचन की आदर समाज–सेवा के प्रचार में लगा है।

'वरूण के बेटे' में लेखक ने कथानक के साथ बाढ़–पीड़ितों द्वारा मालगाड़ी के डिब्बे खाली न करने से उत्पन्न रेलवे अधिकारियों से संघर्ष, मंगल–मधुरी प्रणय–दृश्य, मधुरी का ससुराल जाना, खुनखुन का शराब पीना, दरभंगा जाकर मछली बेचना, मगर का शिकार करना, मोहन मॉझी और मधुरी द्वारा बाढ़–पीड़ितों के लिए सहायता शिविर चलाना आदि छोटी–छोटी घटनायें संजोयी हैं।

कथानक की घटनाओं को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। किन्तु कथानक और पात्रों के चरित्र–विकास में ताल–मेल नहीं बैठ पाया है। जमींदार घर बैठे–बैठे ही विरोध करते हैं। उनमें विरोध और संघर्ष का संकेत दरोगा, अंचलाधिकारी और मजिस्ट्रेट के आने से ज्ञात होता है। "जीप आकर सामने रूक गयी। अंचलाधिकारी, दरोगा, पुलिस के दो जवान, अंचलाधिकारी का अर्दली और ड्राइवर छहो उतरे।"[2]

---

[1] नागार्जुन–बलचनमा, पृष्ठ २७
[2] नागार्जुन – वरूण के बेटे–पृष्ठ ३१०, नागार्जुन की चुनी हुई रचनाए संपादक शोभाकांत।

साम्यवाद के प्रति प्रबल आग्रह, विरोधियों को कमजोर बताने और गरीब वर्ग में एकदम राजनीतिक चेतना का सूत्रपात कर देने से कथानक विश्रृंखलित हो गया है। "प्रजा समाजवादी पार्टी का एक और एक लोहिया–समर्थक यानी दो सोशलिस्ट, ईमानदार किन्तु उपेक्षित एक कांग्रेसी......हंसिया–हथौड़ा वाली लाल पताका का फर्माबर्दार एक किसान सभाई यानी कामरेड मोहन मॉझी"[1]

कथानक के गठन में लेखक द्वारा यह बताने का आग्रह कि कांग्रेसी अन्यायी और भ्रष्टाचार के पुतले हैं, और गरीब मजदूर की भलाई हंसिया–हथौड़े वाले ही कर सकते हैं। इस संघर्ष में निषाद–महासभा, नहीं किसान–सभा जैसी जुझारू जमात ही हमारी सहायता कर सकती है........"[2]

पूर्व नियोजित मार्ग पर पात्रों को अपनी इच्छानुसार चलाना, कथानक की शिथिलता के लिए उत्तरदायी है। क्योंकि आंचलिक उपन्यासों का कथानक प्रायः शिथिल होता है तथा अपेक्षाकृत धीमी चाल से चलने वाला होता है, क्योंकि अंचलयुक्त वातावरण के बहुवर्णनों की स्थिरता तथा कला की गत्यात्मकता की प्रकृति में विरोध है। दूसरे वातावरण विधान की प्रकृति के कारण कुछ ऐसे दृश्यों का समावेश भी हो सकता है, जिनका कथानक से घनिष्ठ सम्बंध नहीं होता और कथा उनके बिना भी गतिशील हो सकती है, तीसरे ब्यक्ति विशेष की नहीं, सम्पूर्ण अंचल की कहानी अनेक पात्रों को अपनी–अपनी कहानी करने के कारण भी उससे परंपरिक कहानी का संगठन स्थिर नहीं रह सकता।"[3]

'नई पौध' के कथानक में नागार्जुन ने समस्या यद्यपि पुरानी उठाई है, लेकिन वरूण शक्ति के प्रति आश्वस्त रहना उसका एकदम नया विचार है। नये खून को प्रोत्साहन देने की चर्चा वैसे भी आज–कल बहुत सुनाई देती है। उपन्यासकार ने

---

[1] नागार्जुन– वरूण के बेटे–पृष्ठ ३२२ नागार्जुन की चुनी हुई रचनाए संपादक शोभाकांत।
[2] नागार्जुन– वरूण के बेटे –पृष्ठ २८७ नागार्जुन की चुनी हुई रचनाएं संपादक शोभाकांत।
[3] डा० सत्यपाल चुघ–प्रेम चंदोत्तर उपन्यासों का शिल्पविधि पृष्ठ ५५७

समस्या को विविध घटनाओं के संगुफन के माध्यम से उठाई है। "सभी बहने, मॉ–बाप को शराप दिया करती थी। कोई गूँगे के पल्ले पड़ी थी तो कोई बौडम के पल्ले। उनमें से चार को भाग्य ने वैधब्य के बीहड़ जंगल में डाल दिया था। एक पगली हो गयी थी, एक को उसके आदमखोर पति ने किरासन तेल की मदद से जलाकर खाक कर डाला था।"[1] चतुरा चौधरी के बिन व्याहे लौट जाने की कथा या फिर सहुआइन अमृत की कथा, कहीं टुनाई पर खेती का भार आ जाने की चर्चा, कहीं मुंशी दुर्गानन्द बाबू के अदालती दॉव–पेंच का जिक्र किया है। शेख का चेहरा भारी हो उठा तो मुहर्रिर की टोन बिल्कुल बदल गयी– "अजी, जास्ती नहीं। बीस–पच्चीस में उस तारीख का सारा काम निबटा दूँगा, आप कुछ फिकिर मत कीजिए।..

निकालिए ए, गो रूपइया! सिरिस्तेदार और समान ले जाने वाला सिपाही–दोनों को अठन्नी और चवन्नी चटानी पडेगी"[2]

विश्वेसरी के विवाह की मूल समस्या से भावी घटनाओं का सूत्र फिर से जोड दिया गया है। "रात की घटना को भूलकर लोग अपने–अपने काम में लग गये थे। हलवाहे बैलों को आगे किये कंधे पर हल सम्हाले अपनी–अपनी दिशा में जा रहे थे। हेहुआ भी उनमें था, वह बूलों का अपना हलवाहा था।"[3] वाचस्पति का परिचय और दिगम्बर की उससे मित्रता बताये जाते समय ही पाठक को पृष्ट ११५ से वाचस्पति के दूल्हा बनने का अनुमान हो जाता है।

"नई पौध" के कथानक में केंन्द्रीय विषय "प्राचीन जर्जरित रूढ़ियों का खण्डन करते हुए नई पीढ़ी से समस्या का निदान दिलाया गया है।" इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में भारतीय महिलाओं, विधवाओं, परित्यकताओं, अनाथ–प्रताड़ित और

---

[1] नागार्जुन–नई पौध पृष्ठ १०
[2] नागार्जुन–नई पौध पृ० ६२
[3] नागार्जुन–नई पौध, पृ० ६०

परिवार वंचित युवतियों के साथ–साथ गरीबीवश बूढ़े खूसटों के हवाले हालाल किये जाने वाले बकरों की भॉति कर दी जाने वाली किशोरियों की पीड़ा, का वर्णन करते है। इतना ही नही वे इन पीड़ाओं के पीछे काम करने वाली सामाजिक रूढ़ियो की ओर भी इशारा करते हैं।

२. संवाद में आँचलिकता का योग

आँचलिक उपन्यासों के संवादों में जनपदीय एवं स्थानीय भाषा या लोक शब्दो का आधिक्य स्थानीय यथार्थ को गाढ़ा करने तथा पात्रों के शिक्षा सभ्यता, के स्तर को दर्शानें के लिए है। अपनी बोली या भाषा के माध्यम से पात्र किसी स्थानीय एवं विशेष भू–भाग के होने का आभास दिलाता है।

अगर ग्रामीण निम्न वर्ग की भाषा होगी तो वह तद्भवता से युक्त होगी, "आज से आप इस निभागे की माँ–बाप हुयी गिरहथिन । आप का जूठन खाकर इसका भाग चमकेगा" फिर जब बलचनमा का सबूरी मंडल से संवाद को "खाली बखत में इधर–उधर भटकना ठीक नही। चरवाहे को चाहिए कि अपने पशु के रोएँ–रोएँ को गौर से देखे। लापरवाही से कई तरह के कीड़े पड़ जाते हैं– अठौड़ी, किलनी, जूँ, चिल्लड़– कभी–कभी कुकुरमच्छी भी इन्हें तंग करती है।"[१] और उच्च वर्ग की भाषा थोड़ा भिन्न है जैसा कि मझले मालिक के शब्दों को देखते है" ललचनमा जब तक जिया, जी जान से उसने मेरी सेवा की और इनको तो देखिए।" पंडित जी की भाषा– "जसोधर बाबू, छोकड़े के रोआँ– रोआँ से नमक हरामी टपकती है। देखों न कैसे मुलुर–मुलुर ताकता है। "इस पर मझले मालिक ने कहा– "हाँ गुरू बड़ा ही पाजी है, कभी पकड़ मे नही आता है। पहुना आये थे, उनका नौकर बीमार पड़ गया। मैने इस ससुर को कहला भेजा कि आकर मेहमान की मालिस कर जाय। साला आया नही..." दादी बोलती है– "कल का बच्चा है बाबू ? दिन भर का थका

---

[१] नागार्जुन– बलचनमा पृ० ७, ६

माँदा, चूर–चूर, रात को बेसुध होकर सो जाता है।'' ''चुप रह कुतिया''– मालिक गुर्राये। पंडित ने सिर हिलाया और गुन गुना उठे– राड़ं एड़ं पवित्रं हूँ।''[१]

इनकी भाषा में बनावटीपन नही होती । और नही ज्ञान की ऊहाफोह होती है। ये बातों को कभी– कभी मुहावरों के माध्यम से ब्यक्त करते हैं। ''सूखे कोहड़ों के लिए क्या बसंत क्या,सरदी।'' 'कान पाथकर' आदि।

एक ओर जहां से संवाद आंचलिक पात्रों की अशिक्षा और मंदबुद्धि का परिचय देते है, तो दूसरी ओर वहॉ उनकी हास्य–प्रियता और मानवीयता का भी दिग्दर्शन कराते हैं।...''वह कान्फ्रेंस क्या थी; शिवजी की बारात पूरी थी।''[२] बरगद बाबा के शब्दो में ''पीछे दास जी ने साहित्य सेवा आरम्भ की। कई एक आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखे, जो छपे तो अवश्य परन्तु प्रकाशक की गोदामों और स्थानीय बुकसेलरों के शो–केसों तक सीमित रह गए।'' उनके पात्रों के कथोपकथन में व्यंग्य की यही छटा देखी जा सकती है। कथोप–कथनों का पैनापन 'रतिनाथ की चाची' में दृष्टब्य है।'' थोड़ा रूककर वह फिर बोली ''ऊपर चलिए, हमारी कोठरी को अपनी चरण–धूलि से...''

जयनाथ ने टोंका, ''प्रतिदिन भोरे–भोरे जहॉ की गलियॉ झाड़–बुहार कर साफ कर ली जाती हो, वहॉ भला चरण–धूलि? ''धूल न सही, चरण तो पड़ेगे।''[३]

पंडित जी भी संध्या पूजन करते समय भी अपने मतलब की बात 'डूड़ा' की भाषा में करते है। सिर्फ शब्द–विशेष द्वारा ब्यंग्य करना भी नागार्जुन की व्यंग्य शैली की विशेषता है। ''इन बातो को वैदिक जी वेद–पाठ के अन्दर समझते थे। नयेआगंतुकों की पहली कमाई में से इस तरह कुछ–न–कुछ ले लेना अच्युतानंद जी की अच्युत नीति थी।''[४]

---

[१] नागार्जुन– बलचनमा पृ० ११, १४
[२] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ, पृ० १०८
[३] नागार्जुन– रतिनाथ की चाची, पृ० ७६
[४] नागार्जुन– रतिनाथ की चाची, पृ० ६४

इनकी भाषा से हम उनके रहन–सहन, वेशभूषा, खान–पान आदि का भी पता लगा सकते है। उनके संवादों में हास्य रस की मिठास के साथ–साथ ब्यंग्य और कटाक्ष की फुहारे भी मिलती है। इन पात्रों के वार्तालाप में तुलसी और कबीर की उक्तियॉ भी देखने को मिलती है। इन संवादों में विदेशी शब्दों का जैसे अग्रेंजी, उर्दू, फारसी आदि का प्रभाव भी वर्तमान में रहता है, यथा– "बूट पटककर गोरा कड़का –"बुक–बुक (बक–बक) कर्टा है! शट–अप! या फिर माइ गॉड, इतने हथियार!"[१]

इस प्रकार संवाद में आंचलिकता के मिश्रित स्वर बराबर चलते रहे। कभी हास्य के रूप में तो कभी ब्यंग्य के रूप में। उदाहरण के लिए "ये पात्र पूंजीपतियों को बगुले की तरह सादो बाताते है" इस शब्द में कितना ब्यंग्य है यह उपन्यासकार की कुशल–बुद्धि का परिचायक है– "ऑचलिक उपन्यासों की तरह यह विशिष्टता ही इसे सहजता प्रदान करती है, कुशल कलाकार इसका खुलकर प्रयोग करते है।"[२]

३. लोक संस्कृति का चित्रण

लोकसंस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान ऑचलिक उपन्यासों में होता है। सामान्य तथा लोक संस्कृति से तात्पर्य 'जन–समाज की परम्परागत मान्यताओं और रीति–रिवाजों से है। लोक की वेशभूषा, भाषा, रहन–सहन, आचार–विचार; धार्मिक प्रथाएं तथा प्रणालियां भी संस्कृत का अभिन्न अंग है। लोक–नृत्य की चित्रण, लोकोक्तियों, मुहावरों, लोकगीतों का प्रयोग उपन्यासों को अँचल की गंध से भर देते है। पात्रों के माध्यम से, कहावतों, मुहावरों, सामूहिक–नृत्यों के अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीतों, पूजा–पाठ आदि का समावेश लोक–संस्कृति में होता है। लोकगीतों की तान, भैस की पीठ पर बैठकर किसी चरवाहे ने रात के आखिरी पहर में छेड़ी–

"उमर बीत गई

---

[१] नागार्जुन– बाबाबटेसर नाथ, पृ० १०१

बाल पकने लग गए

पिछले बारह वर्षों से

इस ऑचल में गांठ बॉध रखी है मैने

आने का लेता है तो भी नहीं नाम

निठुर मेरा दुसाध..........

राजा सलहेस प्रीतम मेरे।

तेरे नाम पर गॉठ बांध रखी है

अपने ॲचल में मैने

ओर निठुर ! निर्मोही!!"[1]

धार्मिक प्रथाएं, देखना हो तो ॲचल में कैसे उल्लेख है, यथा– "रेशम की झूलें, कोढ़िला के बने सिर मौर और मण्डप, जरी गोटे की मालाएँ, पीतल–कॉसे की घण्टियॉ, लाल–इकरंगे का टुकडा... धूप–दीप, फूल–फल, अच्छत–दूब, और गंगाजल, बेल और तुलसी के पत्ते...मनौतियॉ चढ़ाने वाले श्रद्धालु घडी–दो–घड़ी की पूजा–प्रार्थना के बाद"[2] या फिर जैकिसुन का गुनगुनाना–

उठ जाग मुसाफिर भोर भई

अब रैन कहां जो सोवत है

जो जागत है सो पावत है

जो सोवत है सो खोवत है

उठ जा ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ग"

इस प्रकार लोक संस्कृति के ये तत्त्व उसे समृद्ध करते है।

"इस प्रकार"आंचलिक उपन्यासकार किसी विशेष–भू–भाग के रीति रस्म, रहन–सहन, त्योहार–पर्व, तीर्थ–मेले, लोकनृत्य, गीत, परम्परागत मान्यताएं, विभिन्न

---

[3] राजकुमार त्रिपाठी–साहित्य संदेश –पृ० १६

[1] नागार्जुन– बाबाबटेसरनाथ पृ० ३५, ३६

[2] नागार्जुन– बाबाबटेसरनाथ पृ० ६६

प्रकार की रूढ़ियॉ, किस्से–कहानियॉ, कथा, बोली–वाणी, लोकोक्तियॉ, मुहावरे आदि"[1] पर सूक्ष्म निरिक्षण करता है। डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय तो कहते है –"इनके पास ध्वनि यंत्र है, जिनके माध्यम से उन्होंने इस अॅचल के गॉवों की आवाज पेड़–पत्तों के हिलने की ध्वनि, नाक सिकुड़ने और छींकने की आवाज हसुंलियों और झांझनों के बजने, कंगनों की खनक तक मूर्तकर दी है"[2]

इस प्रकार नागार्जुन ने अपने उपन्यास में अंचल की सम्पूर्ण दशाओं का यथार्थ रूप में चित्रण करते है। अॅचल विशेष की भाषा 'ग्रामीण, शहरी तद्‌भव तत्सम', रहन–सहन, खान–पान 'चिवड़ा–दही', रीति–रस्म 'मधुश्रावणी', 'डीह, टोल, में सल्हेस', 'बिकोआ', 'चतुर्थी' (विवाह के बाद चौथी रात पहले की तीन रातें वर–वधू को ब्रह्मचर्य के कड़े नियंत्रण में बितानी पड़ती है।)" सभी कुछ नागार्जुन अपने उपन्यासें के पात्रों में ढाल देते हैं।

डा० सत्यपाल के अनुसार "लोक संस्कृति अथवा लोकतत्व का प्रभूत उपयोग स्थानीय रंगत में है। लोक संस्कृति का प्रभूत प्रयोग स्थानीय रंगत को और गाढ़ा करता है। ये लोक उपादान है, लोकाचार, लोक–पहेलियां, कहावते, मुहावरे और खेल आदि"[3] नागार्जुन के उपन्यासों में प्रयुक्त लोकगीत मिथिला की संस्कृति ओर जन–भावनाओं के प्रतिविम्ब है।

बलचनमा में "सखि हे मजरल आमक बाग?

कुहू–कूहू चिकरए कोइलिया

झींगुर गावए फाग।

कन्त हमर परदेश बसइछथि

बिसरि राग–अनुराग।

विधि भेल बाम, सील भेल बैरी

---

[1] राजनाथ शर्मा– सातित्यिक निबंध पृ० ८०२

[2] डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय– आधुनिक कहानी का परिपार्श्व पृ० १४५

फूटि गेल ई भाग।

सखि है मजरल आमक बाग......"

इस प्रकार गीत के द्वारा चीखती हुई कोयल, आम के मौर से लदे वृक्ष, झीगुंर का संगीत हमें शहरो से कोसों दूर ग्राम की किसी अमराई में ले जाकर खडा कर देता है। इसी तरह 'जिनगी–भेल पहाड–अमिर भेल काल'[१] गीत में मधुरी के कसकते यौवन का उफान तड़फ रहा है। कहीं मछुए श्रमिक गाते है–

बबुआ, खइयउ न ।

आव ने खइयउ बउआ जै सिड़.मोतीचूर मिठाइ हओ।..

बबुआ, खाओ ! खाओ न !"

अपने क्षेत्र की बोली–बानी, संस्कृति, रहन–सहन आदि का वास्तविक प्रतिविम्ब नागार्जुन के उपन्यासों की विशेषता हैं कारण स्पष्ट है, क्योंकि नागार्जुन उसी क्षेत्र की उपज थे, उस क्षेत्र को उकेरना उनकी थाती रही और इसीलिए सूक्ष्माति–सूक्ष्म बातों की जानकारी उन्हें रही। डा० मदान के शब्दों मे "देहाती जीवन की साधारण घटनाओं को सूचित करने में तथा उसके सजीव चित्रण में, जमींदारों के निरंकुश व्यवहार में, नये जीवन के स्पंदन में, अॅचल विशेष के मुहावरे को पकड़ने में, तद्भव शब्दों के प्रयोग में, पग–पग पर परिवेश की गंध से उपन्यास का ताना–बाना बुना गया है।"[२]

नागार्जुन ने अपने ऑचलिक उपन्यासों में ग्रामीण संस्कृति के सभी तत्वों को न केवल सहेजा है, अपितु उसे सवॉरा भी है। चाहे वह झील–नदी हो या पेड़–पौधे, पशु–पक्षी हो। "उग्र जीवन की भाषा, वेश–भूषा, उत्पादन के साधन, वर्ग और जातियॉ तथा उसका परस्पर सम्बन्ध धार्मिक विश्वास, जन्म से मृत्यु तक के संस्कार, शिष्टाचार, चरित्रगत स्वभाव, मनोरंजन के साधन, ब्यसन, कलाएं, भोजन–पान,

---

[३] डा० सत्यपाल चुघ– प्रेम चंदोत्तर उपन्यास की शिल्पविधि पृ० ५५८

[१] नागार्जुन– बरूण के बेटे पृ० २७५

[२] डा० इंद्रनाथ मदान– आज का हिन्दी उपन्यास

जादू–टोना, अंधविश्वास तथा अन्य मान्यताएं, शिक्षा–दीक्षा, जीवन–दर्शन, सामाजिक उत्सव और समारोह आदि के अतिरिक्त अंचल विशेष की भौगोलिक स्थिति, राजनीतिक महत्व, नदियॉ, पेड़–पौधे आदि की बनावट और परिवर्तन, फसलें और उन्नति वहॉ के जन–जीवन का सम्बन्ध बदलते हुए सामाजिक मूल्यों आदि का विश्लेषण है।"[1]

जहॉ 'रतिनाथ की चाची' और 'नई पौध' में अंचल के सामाजिक रीति–रिवाजों का चित्रण मिलता है, वहीं 'बाबा बटेसरनाथ' में मिथिला प्रदेश के धार्मिक अंधविश्वासों का निकटता से परिचय दिया गया है। उपन्यास में ब्यक्त बलि प्रथा यथा– "पंडित के अनुसार यजमान दोनों हाथ जोड़कर बकरे से कहता है–

"यज्ञ के निमित्त पशुओं की सृष्टि की विधाता ने
यज्ञ के निमित्त ही उन्हें मार गिराया जाता है
इसी कारण मैं तुम्हें मरवाऊँगा
यज्ञ की हिंसा, हिंसा नहीं हुआ करती....."

पानी न बरसने पर किये गये टोटको का वर्णन आदि है। यथा– "ग्वालों, अहीरों और धानुको ने यही चार दिनों तक भुइयां महाराज का पूजन किया......राजा इंदर नहीं खुश हुआ।"[2] ऑचलिक उपन्यास प्रमुख रूप से लोक–संस्कृति को प्रस्तुत करता है। "आंचलिक उपन्यासों में कथ्य जंगलों में भौतिक प्रगति सभ्यता का प्रभाव देखा जा सकता है। देश के विभिन्न जंगलों की संस्कृतियां हमें वहां की प्रमुख सांस्कृतिक धारा को समझने में सहायता देती है।"[1]

लोक संस्कृति की दृष्टि से देखा जाय तो 'बलचनमा' मिथिला की ग्रामीण संस्कृति का जीवन्त दस्तावेज है। नागार्जुन तो पाठकों को ले जाकर वही छोड़ देते हैं और पाठक वहां बलचनमा को अपना अनन्य साथी समझने लगता है।

---

[1] डा मक्खन लाल शर्मा–हिन्दी उपन्यासः सिद्धान्त और समीक्षा पृ० २१८
[2] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ– पृष्ठ ५४

'दुखमोचन' में आंचलिक विशेषताएं सामान्य रूप में आयी है। इस प्रकार नागार्जुन के सारे उपन्यासों में उपज, खान–पान, जनता का जीवन–स्तर, प्राकृतिक सौन्दर्य, यथा– "जेठ की पूनम चॉदनी क्या बरसा रही थी, गाढ़ा कढा दूध बर्फ की तरावट लेकर भूतल को शीतल बना रहा था। दिन की झुलसी हुई प्रकृति इस अमृत–वर्षा से जुड रही थी।"[2] रीति–रिवाज धार्मिक मान्यताएं उभर कर सामने आयी है, पक्षियों का कलरव, चूँजों की चहचहाहट यथा "चें–चें–चूँ–चूँ" भी सुनाई देती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि बाबा नागार्जुन ने ऑचलिक उपन्यास साहित्य को यथार्थता ओर श्रेष्ठता की जिस उदात्तता पर पहुँचाया उसमें उनकी लोक–संस्कृति की महती भूमिका रही। क्योंकि डा० सिंहल के शब्दों में– "आंचलिक उपन्यास समाज के क्षेत्र–विशेष के सांस्कृतिक परिवेश को प्रस्तुत करता है। सामाजिक उपन्यास में देश के सामान्य सांस्कृतिक जीवन की झॉकी मिलती है, किन्तु ऑचलिक उपन्यास प्रमुख सांस्कृतिक धारा में स्थित "द्वीप सरीखे प्रायः स्वतः पूर्ण ॲचलों की लोक–संस्कृति को अपना कथ्य बताता है।"[3]

४ पात्रों के चरित्र–चित्रण में ऑचलिकता

चरित्र–चित्रण की दृष्टि से ऑचलिक उपन्यासों की महत्वपूर्ण विशेषता समूह पात्र के चित्रण में है, 'रतिनाथ की चाची' में मुख्य पात्र गौरी देवी और अन्य सहायक पात्रों में जयनाथ, उमानाथ, रतिनाथ, जयकिशोर और उसकी मॉ है। नागार्जुन ने गौरी कां चरित्र बड़ी संजीदगी और कोमलता से चित्रित किया है। तमाम विरोधों के बावजूद भी वह शान्त और गम्भीर बनी रहती है। वह रतिनाथ को प्यार करती है, उसकी छोटी–छोटी चीजों का ध्यान रखती है और अंतिम समय में भी उसे ही दाह–संस्कार के निमित्त आदेश दे जाती है।

---

[1] डा. शशिभूषण सिंहल– हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियां पृ० ११६

[2] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ पृ० १२

[3] डा. शशिभूषण सिंहल– हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियां पृ० ११६

उमानाथ की मार खाकर भी वह रिरियाती ही देखी जाती है –"नही भैया, कोने मे कुल्हाड़ा रखा है, उठा लाओ मुझे खंड–खंड कर दो । मैं खुद इसीलिए नही डूब मरी कि तुम्हारे हाथों से सद्‌गति मिलेगी तो मेरे सारे कुकर्म धुल जाएँगें।"[१]

गर्भपात के बाद उसने अपनी दिन–चर्या बदल ली । यह रतिनाथ के शब्दों में देखें "तुम देवता होती जा रही हो"। और सचमुच जब ग्राम में मलेरिया फैलता है तब चाची अपने विरोधियों की भी सेवा करती है। जयनाथ के प्रति चाची का वही भाव रहता है जैसा कि एक समझदार माँ का अपने बीमार बालक के प्रति। "वह मृत्यु की छाया से घिरकर भी महायुद्व में रूस की विजय की कामना करती है जिससे उसकी सामाजिक चेतना का परिचय मिलता है।"[२] उसका सारा जीवन विवशता, करूणा और दर्द से ओत–प्रोत है। वह दर्द जो उसके लिए कभी न भुलाया जा सकने वाला दास्तान बन गया है। वह कहती भी है "किसी भी युग में स्त्री को अमृत पीने का सुयोग नही मिला, पुरूष को अमृत पिलाकर वह स्वयं ही विषपान करती आयी है।"[३]

रतिनाथ ही एक ऐसा चरित्र है जो चाची की ब्यथा पर आंसू बहाता है। पिता जयनाथ से दुत्कार, चाची से वात्सल्यता का भाव उसे मिलता है। कठोर अनुशासन में रहने के बावजूद भी वह कुसंगति में फँस जाता है। तथापि वह भावुक प्रकृति का

बालक है, चाची की अस्थियों को गंगा में प्रवाहित करते समय वह सोचता है" अमावस की उस रात कौन था चाची?एक घनी और अँधेरी छाया तुम्हारें बिस्तर की तरफ बढ़ आई, वह क्या थी चाची? सदा के लिए तुम्हारे सिर पर कलंक का टीका लगा गया, वह कौन था चाची ? शील और शालीनता की प्रतिमें..[१]

---

[१] नागार्जुन –रतिनाथ की चाची पृ० ७२
[२] नागार्जुन –रतिनाथ की चाची पृ० १५०
[३] नागार्जुन –रतिनाथ की चाची पृ० ६१
[१] नागार्जुन –रतिनाथ की चाची पृ० १५५

सामन्तयुगीन परम्परा एवं रूढ़िवादी मैथिल ब्राह्मण सभा का प्रतिनिधि जयनाथ है। "वह सामाजिक चेतना से विहीन पौरूषहीन व्यक्ति है।" वह गौरी देवी के चरित्र को भ्रष्ट करता है। वह एक भ्रष्ट और निरामिष ब्यक्ति है। यद्यपि जयनाथ की कहीं–कहीं भावुकता भी परिलक्षित होती है।

इन मुख्य पात्रों के अलावा कुछ अन्य पात्र है, जिनमें गौरी की मॉ एक सुशील और सह्वदय महिला है। जयकिशोर मिचिला प्रेम में विभोर सज्जन पुरूष है। दम्मो–फूफी त्रेता युग की मंथरा सरीखे है। वह बड़ी चालाक व वाक् पटु स्त्री है।

वस्तुतः मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है। अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों के अनुरूप ही पात्र का चरित्र उभरताहै। गौरी के साथ अनर्थ हो जाने के बावजूद भी उसका चरित्र जिस तरह नागार्जुन ने उभारा है वह एक मील का पत्थर है। क्योंकि उपन्यास के अन्त आते–आते चाची के सारे दोषों और कलंकों का परिहार हो गया है।

इस प्रकार "शुभंकरपुर की गौरी राजनीति की बातें, नारी जाति के युगों से चले आते त्याग के प्रति उसका दार्शनिक विवेचन उसे ग्रामीण नारी को स्थिति

से ऊँचा उठा हुआ सिद्ध करता है। ऐसे स्थानों पर नागार्जुन के ये पात्र आरोपित प्रतीत होते है।"[२]

चरित्र–चित्रण की दृष्टि से देश प्रधान या ऑचलिक उपन्यास का वैशिष्ट्य समूह पात्र के चित्रण में है। 'बलचनमा' में लेखक ने अपनी इसी उद्देश्य को पूर्ति हेतु अनेक पात्रों की सृष्टि की है, यथा– मालकिन गुनमन्ती, सुखिया नौकरानी, सबूरी मंडल, मॉ, दादी, रेबनी, छोटे मालिक, दामोठाकुर, धनवन्ती चाची, मनियार चाचा, मित्र चुन्नी, विधवा जानकी, महेन्द्र बाबू, फूल बाबू, अनीता, लंकालता, शुभंकर ठाकुर, सुगनी, डा० रहमान, लतीफ, कामेन्द्र प्रसाद नारायण सिंह, स्वामीजी, रामखेलावन,

---

[२] प्रकाश चंद्र भट्ट– नागार्जुन – जीवन और साहित्य पृ० १६६

पचकौडी, कपिलेसर, विपिन बिहारी, हमीदा, ब्रजविहारी, बल्लीबाबू, जमींदार, सादुल्ला खॉ, व भोला झा आदि।

नागार्जुन का अनुभव–संसार विशाल है। बलचनमा अपनी स्मृतियों को संजीदगी से व्यक्त करता है। "चौदह बरस की उम्र में मेरा बाप मर गया" से आत्मकथात्मक कथा शुरू होती है और यह कथा तमाम चरित्रों, चित्रणों की पगडंडियों से होकर बलचनमा के जमीन पर लुढ़कने तक समाप्त होती है– यथा– "पहले ने अब मेरे सिर पर जोर से लाठी मारी–एक नहीं दो बार....मैं बेहोश होकर जमीन पर लुढक गया।"[१]

'बलचनमा' के रूप में नागार्जुन ने एक बामपंथी चरित्र को उभारा है। वह सरल प्रकृति ओर परिश्रमी, दृढ़ चरित्र बालक है। मलिकाइन के जूठनों को खाता है, गाली सुनता है, भैस चराने जाता है, और सबूरी मंडल से पशु–पालन की विधि सीखता है। जैसे– "खाली बावत में इधर–उधर भटकना ठीक नहीं। चरवाहे को चाहिए कि अपने पशु के रोएँ–रोएँ को गौर से देखें।" उसके जीवन के दृश्यों को देखने पर कारूणिक चित्र उपस्थित होता है। जमींदार का जूठन खाना, ठंड के दिनों में ठिठुरना, बकरी की मींगणियॉ जलाकर आग तापना या फिर गुड़ बनाने की भट्ठी के सामने रात बिताना, मॉ और दादी के द्वारा आम की गुठलियों को चूर–चूर कर फॉकना, ऐसे विशद एवं कारूणिक दृश्य है जैसा कि बलचनमा स्वयं कहता है– "हमारा बचपन मालुम नहीं कै घड़े ऑसुओं से सींचा गया है।" "मेरी हड्डी–हड्डी, नस–नस और रोएँ–रोएँ पर उनका मौरूसी हक था। पालने–पोसने, सड़ाने–गलाने और मारने–पीटने का भी उन्हें पूरा हक था।"[१]

उसमें बचपन से ही उच्च–वर्ग की नीचता के प्रति आक्रोश है। रेवनी प्रकरण में वह जमींदार से कहता है– "बेशक ! मैं गरीब हूँ। तेरे पास अपार सम्पदा है, कुल

---

[१] नागार्जुन– बलचनमा– पृ० १७२

है, खानदान है, बाप–दादे का नाम है, अडोस–पडोस की पहचान है, जिला–जवार में मान है और मेरे पास कुछ नहीं है। मगर आखिरी दम तक मै तेरे खिलाफ डटा रहूँगा।"[2] अगर 'बलचनमा' को प्रेमचन्द के 'गोबर' से तुलना किया जाय तो अतिशयोक्ति न होगा। गोबर भी जमींदारों की भक्ति भावना पर इसी प्रकार आक्रोश ब्यक्त किया या "अगर काम करना पड़े तो सब भक्ति–भाव भूल जाय।"[3]

ऐसा नहीं है कि बलचनमा में क्रांति की, नफरत की ज्वाला धधक रही है। उसमें हास्य विनोद का भी भाव है, वह जब चुन्नी से कहता है– "तुझे तो न अपनी भैस से फुरसत मिलती है न मेहरिया से । भैंस खोलता है तो मेहरिया बॅधी रहती है। मेहरिया को चराता है, तो भैस बॅधी रहती है।" जब चुन्नी चुप रहता है, बोलता नहीं है तो पुनः वह हास्य विनोद करता है– "भाभी ने दुलत्ती झाड़ी है क्या ? चोट लगी हो तो चलो मै मालिश कर दूँगा। पटने से सीख आया हूँ।"[4]

अॅचल की सामाजिक–राजनीतिक और भौगोलिक दशाओं का भी पात्र के चरित्र पर प्रभाव पड़ता है। इसी के मध्य में रहकर ही पात्र अपना जीवन निर्वाह करता है। लोकगीत, लोक–नृत्य, तुकबंदी, किस्से, गालियॉ, भजन–कीर्तन, मुहावरे, टोने–टोटके, जंत्र–मंत्र इन सबका ऑचलिक उपन्यास के पात्र के चरित्र के विकास में महत्वपूर्ण हाथ रहता है। नागार्जुन मानव–मन की अभिब्यक्ति बडी सशक्त है, वे चरित्र–चित्रण कला में दक्ष है।

'बाबा बटेसरनाथ' में बरगद बाबा ही पात्र है। यह तो पूरा रडार है, इसे सारी बाते ज्ञात है– "वह अॅचल विशेष के पूर्वेतिह्यस और उसी के सन्दर्भ में भारतीय इतिहास को बताने वाला ही नहीं, लेखक के राजनीतिक दृष्टिकोण की अभिब्यक्ति

---

[1] नागार्जुन– बलचनमा पृ० १७
[2] नागार्जुन–बलचनमा–पृ० ७४
[3] प्रेमचंद– गोदान–पृ० ५
[4] नागार्जुन–बलचनमा–पृ० ७०

का माध्यम भी है।"[1] बाबा के विचार यथार्थ और उच्च है "वह 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय, लोकानुकम्पाय के आदर्श को रचनात्मक रूप देने में आस्था रखता है। वह भावुक ह्दय है।"[2] कविता–संगीत से उसे रागात्मक लगाव है। इनके अतिरिक्त पात्र हैं– जैकिसुन,जीवनाथ,दयानाथ, जैनरायन, उग्रमोहनदास एम० एल० ए०, जुनाई पाठक, श्याम सुन्दरदास एडवोकेट, दारागो रामफल सिंह आदि।

"जैसे विचित्र मिट्टी के प्रकारों में लगाए गए नये पौधों में भिन्न–भिन्न सौन्दर्य और सुगंध होती है वैसे ही नये और आकर्षक पात्र आँचलिक उपन्यास ने हमें दिए हैं।"[3]

टुनाई और जै नारायण लालची किसान है इनके शोषक रूप को नीलाम्बर और जमींदार दास जी समर्थन देते हैं। उग्रमोहनदास कुछ समय के लिए हमारे सामने आते है, पर उपन्यासकार ने क्षेत्र की ग्रामीण समस्याओं के प्रति उनकी स्वार्थलिप्त बेरूखी स्पष्ट कर दी है। इन नेताओं के पास झूठे आश्वासनों, कोरे वायदों का पिटारा है, जिसे वे दयानाथ को देना चाहते है। एक ही व्यक्तित्व है जो पाठकों के सम्मान का पात्र बनता है वह है एडवोकेट श्यामसुन्दरदास इसका व्यक्तित्व जनसहयोगात्मक ग्रामीणों से सहानुभूति रखने वाला, तथा प्रकरण की निःशुल्क पैरवी करने के कारण समृद्ध है।

यह कहानी बरगद बाबा ने सीरियल की तरह पूरा कह दिखाया है। वह स्वयं अपनी उत्पत्ति से लेकर अपने शैशव काल, बाल्यकाल व आगे, सौ साल तक की घटनाओं को बयान करता है। उस सिनेमा चल–चित्र (बरगद बाबा) का दर्शक (श्रोता) जैकिसुन है।" बेटा, मैं न तो भूत हूँ, न प्रेत। मैं इस बरगद का मानव रूप हूँ–" फिर आगे कहता है। "तेरी उम्र है अभी बाईस वर्ष की। टुनाइ पाठक पचास

---

[1] डा० सत्यपाल चुघ–प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों के शिल्पविधि

[2] प्रकाश चंद्र भट्ट– नागार्जुन – जीवन और साहित्य पृ० १७६

[3] डा० मक्खनलाल शर्मा–हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा

को पार कर गया है, जैनरायन भी पचपन से कम का नहीं होगा। पुश्त–दर–पुश्त इनकी लीलाएँ मुझे मालूम है।"[1]

इस प्रकार बाबा बटेसरनाथ नागार्जुन की विचारधारा का उद्‌घोषक बन उपस्थित होता हे। बाबा की चारित्रिक विशेषताएं इतनी सशक्त है कि वह पाठको के मन पर प्रभाव छोड़ जाती है। भूकम्प की दुर्घटना से अपाहिज बना बाबा जिसे रूपउली का एक–एक बच्चा प्यार करता है वह स्वयं कहता भी है कि मुझ पर सभी का समान अधिकार है।"

पीड़ित जनों के प्रति बाबा की सच्ची सहानुभूति है। वह बकरों की बलि देने की घटना से बडा क्षुब्ध होता है। वह राजनीतिक घटनाओं की जानकारी रखता है। उसे साम्राजयवादी शक्तियों और पूजीपतियों से नफरत है वह महारानी विक्टोरिया का उपहास करता है। "बनियों की रानी द्रवित हुई तो क्या हुआ?"[2]

'दुखमोचन' उपन्यास में यही दुखमोचन ही मुख्य पात्र है। नागार्जुन ने इनका चरित्र–चित्रण उनके कार्य–कलाप व वार्तालाप द्वारा सफल बनाने की भरपूर कोशिश की है। दुखमोचन ही प्रधान नायक है। इसका चरित्र मानवीय गुणों की खान है इसके चरित्र के विविध पहलू इसमें हमें दिखाई देते है–

(क) उसे अपनी बच्चियों से हृदय से प्रेम है। टुनु की बाल सुलभ चेष्टाओं में

वह दिल–चस्पी लेता है। भाभी द्वारा टुनु के लिए कथन कि "पीठ पर सास के झाड़ू बरसेंगें, इसके तो–?" पर वह दुखमोचन कहता है–खाल न उधेड़ लूँगा उस सास की।"[1]

गॉव के युवकों के प्रति अपने प्रेम को व्यंजित करता है, वह सांस्कृतिक कार्यक्रम के लिए गॉव के युवक मिहिर को आर्थिक सहायता देने की बात करता है।

---

[1] नागार्जुन–बाबा बटेसरनाथ–पृ० १७

[2] नागार्जुन–बाबा बटेसरनाथ ६१

(ख) उसका सारा जीवन समाज–सेवा की एक महान गाथा है।जिसे हम 'राम सागर की मॉ के दाह–संस्कार में आने और कीमती सूखी लकडी दाह के लिए दे देने में देखते है। गेहूँ का वितरण करवाना, श्रमदान द्वारा पथ निर्माण–सब उसके समाज सेवा के प्रतीक भर है। भले ही उसे अपने शरीर के प्रति उदासीनता के लिए भाभी के मीठे तिरस्कार यदा–कदा सुनने पडते है। उसकी समाज–सेवा की बेजोड मिसाल तो गॉव में आग लगने के समय हम देखते हैं। विरोधी नित्या बाबू से लेकर पानी भरने वाली मजदूरिन तक के प्रति उसका सम्भाव है।

(ग) उसकी समाज–सेवा की भावना निःस्वार्थ है। उसका प्रमाण आग की क्षतिपूर्ति के रूप में मिली आर्थिक सहायता के लिए नामों की सूची से अग्रज सूखदेव का नाम हटवाना, या फिर फोड़े–फुन्सी की दवाको घर में रखने से रोकना। यह उसकी स्वार्थ निर्लिप्तता का प्रमाण है।

(घ) वह अग्रगामी–सोंच वाला व्यक्ति है,वह प्रगतिशील विचारों का पक्षधर है। कपिल–माया के विवाह में आने वाली जाति–गत कठिनाईयों पर वह विजय पाता है। वह समाज में स्वस्थ और आदर्श परम्पराओं के प्रसारण में सहायक है। वह रूढवादिता का हर जगह खंडन करता है, बैल जल जाने पर वह प्राश्चित में फॅसने से टेकनाथ को बचाता है।"[2]

उसकी निम्न वर्ग के प्रति सम्मान व सहानुभूति की भावना दृष्टिगोचर होती है। इसका प्रमाण दुखमोचन द्वारा गॉव के एक अत्यन्त साधारण ब्यक्ति बोधू चाचा के हाथो ध्वजोत्तोलन करवाना है।

(च) यद्यपि वह आदर्श पात्र है तथापि वह भी–कहीं–कहीं चारित्रिक मानवीय कमजोरियों से ग्रस्त है। गांव वालों ने जब उसके ऊपर आरोप लगााया कि "दुखमोचन ने रास्ते बनवाने में, किसानों के खेत की जमीन का कुछ भाग ले लिया है" और अंचलाधिकारी द्वारा, उसके पथ–निर्माण कार्य के आरोप को सूचित किया

---

[1] नागार्जुन–दुखमोचन–पृ० १७

जाता है। तो वह सडक नपवाकर इस निराधार आरोप की असत्यता सिद्ध कर देता है, लेकिन इससे वह क्षुब्ध हो जाता है, फिर भी कर्त्तब्य–भावना के प्रति समर्पित होने की वजह से अविचलित रह जाता है।

डा० बेचन 'इस पात्र में लेखक ने जितने सद्‌गुणों का आरोप किया है, उसका बोझ वह सम्भाल नहीं पाता है। वह एक व्यक्ति न होकर टाइप बन गया है।''[१] बाबा नागार्जुन स्वयं कहते है– ''दुखमोचन को हम यथार्थवादी पात्र नही, अपितु आदर्शवादी पात्र मानते है।''[२] इस प्रकार दुखमोचन का चरित्र सर्वथा आदर्शवादी हो उठा है।

'दुखमोचन' उपन्यास का महानायक दुखमोचन है, तथापि इसमें अन्य पात्रों का जमावडा भी है, जो कहीं न कहीं किसी न किसी रूप से दुखमोचन की चारित्रिक विशेषताओं में योग का काम करते है। अन्य पात्रों में वेणीमाधव, जयमाधव, कपिल, रामसागर, मधुकान्त, सुखदेव, लीलाधर, टेकनाथ, नित्याबाबू, मुंशी पुलकित दास पुरूष पात्र हैं तो नारी पात्रों में शशिकला, छोटी बहू, चमकी माया अर्पणा आदि हैं। शशिकला भाभी है जिसका चरित्र मातृत्व के गुणों और स्नेहिल उपालम्भों से ओत–प्रोत है। यह एक आदर्श भारतीय नारी है। इनके चरित्र को नागार्जुन ने जो उदरता दी है, वह इनके कार्य–प्रणालियों से ही है। परिवार के सदस्यों की छोटी से छोटी आवश्यकताओं का ध्यान रखती है, आतिथ्य–सत्कार हमें भरतीय–संस्कृतिकी गौरवशाली परम्परा की याद दिलाती है।

लीलाधर शशिकला भाभी के देवर हैं। वे प्रकांड पंडित है। इसी तरह हरखू की मॉ की ईमानदारी, रामसागर का गॉजा प्रेम, टुनु और अर्पणा की बालकोचित चेष्टाएं, मास्टर और नित्यानंद बाबू की कुटिलता इत्यादि पात्रों के चारित्रिक चित्रण

---

[२] नागार्जुन–दुखमोचन–पृ० ७२
[१] डा० बेचन–नया पथ (अप्रैल १६६६)
[२] आइने के सामने इंटरव्यू मे मोहन–राकेश को दिये इंटरव्यू में नागार्जुन

को देखकर लगता है, कि नागार्जुन ने अपनी इस कथारूपी बाग में चुन–चुन कर पात्र रूपी पौधे लगाये हैं।

'वरूण के बेटे' में मछुओं के यथार्थ जीवन चरित्र को चित्रित किया गया है। उपन्यास के पात्रों में भोला, टुन्नी, मंगल, खुरखुन, गंगा सहनी, नकछेदी, गोनड़ बाबा, मोहन मांझी, दारोगा, अंचलाधिकारी, मजिस्ट्रेट आदि। नारी पात्रों में मधुरी, उसकी मॉ, जलेबिया, सिलेबिया, मंइगा, कुसुम कवक्कड़, मंगल की मॉ आदि। खुरखुन निम्न–वर्गीय मछुआ परिवार का मुखिया है। वह कठोर परिश्रमी और साहसी है। उसके साहस, धैर्य एवं शीघ्र निर्णय की क्षमता तब दिखाई पड़ती है, जब वह पानी में घुसकर एक खतरनाक मगर को जीवित पकड़कर बाहर लाता है। वह भावुक ह्रदय भी है। मधुरी के ससुराल जाने पर बेटी की अनेक स्मृतियॉ उसके अन्तस में उठती हैं। दुःख को वह ताडी पीकर भुलाने का प्रयास करता है। जहां नागार्जुन शुरू में खुरखुन को "अधेड और नाटा खुरखुन" कहते हैं वहीं उसके साहसिक व्यक्तित्व का परिचय देते हुए लिखते हैं– "पॉच हाथ लम्बा मजबूत काठी का अधेड़। बालों का पानी समूचे शरीर की लम्बाई का फासला तय करके पैरों के रास्ते जमीन को भिगो रहा था।"[1] मोहन मॉझी पर उसे अपार श्रद्धा है। और मोहन मॉझी एक जागरूक कार्यकर्त्ता है। लोग उसे प्रेम से नेताजी कहते है। उसकी सादगी उसका सच्चा

जनसेवक का होना लोगों का उसके प्रति प्रेम दर्शाता है। "खरखरी सुनाने और सर्वसाधारण जनता का पक्ष लेकर चाहे जो कर गुजरने की लत पड़ गयी थी। अब वह 'हसिया– हथौड़ा' मार्का लाल झंडे वाली किसान–सभा का थाना–सभापति था।"[1] उसका आशावादी दृष्टिकोण– "गढ़–पोखर का जीर्णोद्धार होगा....तब मलाही गोढ़ियारी के ये ग्रामांचल मछली–पालन बयवसाय के आधुनिकतम् केन्द्र हो जायेगें।

---

[1] नागार्जुन–बरूण के बेटे पृ० २६४
[1] नागार्जुन–वरूण के बेटे पृ० २८२

पक्की ऊँची भिडो पर इकतल्ला सेनोटोरियम बनेगा।"[2] बाढ़ पीड़ितों के आश्रय के लिए धरना देना, पिकेटिंग करना, अन्य सहयोगियों को प्रेरणा देना आदि कार्य विभाजन की कुशलता का परिचय देता है।

अँचलाधिकारी के सामने 'गॉव के मछुओं के संकट को दूर करने के लिए' बंदोबस्ती का कागज दिखाता है। वह एक अच्छा वक्ता भी है। किसान सभा को ही सर्बोच्च हितैसी मानता है। वह सबको एक झंडे के तले लाकर संगठित शक्ति से विरोध का मुकाबला करने की सलाह देता है। नागार्जुन ने उसका चित्रण "अपनी प्रगतिशील–विचारधारा, ग्रामोन्नति की योजना और मजदूर वर्ग के प्रति अपनी तीव्र संवेदना को ब्यक्त करने के लिए किया है।"[3]

मधुरी एक अत्यन्त उत्साही नारी–पात्र है। अपने अधिकारों हेतु सजग चेतना और जनसेवा तथा नारी जागरण का संदेश देना उसकी विशेषता है। वह सच्ची प्रेमिका है। मंगल से प्रेम करती है, परन्तु उसके गौने के बाद वह उसके रास्ते से हट जाती है। मजिस्ट्रेट जब स्त्रियों को राजनीति में भागीदारी पर ब्यंग्य करता है तब वह कहती है– "जिनगी और जहान औरतों के लिए नहीं है क्या ?" वह मजिस्ट्रेट की धमकिसों से नहीं डरती है। उसका उत्तर हॅस कर देती है, और स्वयं गिरफ्तार होने के लिए पुलिस वाहन में बैठ जाती है। इसके चरित्र को देखने से लगता है कि भारतीय क्रांतिकारी महिला की अवतार है। वह ग्रामीणों में संघर्ष के लिए तैयार रहने की भावना भर देती है।

'नई पौध' में चरित्र चित्रण की दृष्टि से नागार्जुन ने सूक्ष्म नीरीक्षण पात्रों का किया है। पात्रों की एक–एक विशेषताओं व कार्यो को उद्घाटित करते है। इसमें विसेसरी एक प्रमुख पात्र है। यही वह 'नई पौध' है, जिससे उपन्यास की शुरूआत

---

[2] नागार्जुन–वरूण के बेटे पृ० २८१
[3] डा० प्रकाश चंद भट्ट–नागार्जुन विचार और साहित्य पृ० १८६

होती है। यही वह 'नई पौध' १५ वर्ष की है, जिसके विवाह की समस्या लेकर कथा बढी है।

दूसरे पात्र दिगम्बर मलिक है जो बमपार्टी का नेता है "वह काफी चतुर तो था ही, धनी घर का लड़का होने से लोग उसे आदर और गौरव की दृष्टि से देखते थे। नोजवानों पर भी उसकी अच्छी धाक् थी। धन या शिक्षा से दिगम्बर के अंदर घमंड उस मात्रा में नहीं भरा था जिस मात्रा में नम्रता। छोटी–बड़ी आयु के लड़के ध्यान से उसकी बातें सुनते थे।"[१]

वह कहानीकार है, वह अन्याय और शोषण का प्रतिकार करता है। सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ वह दृढ़ है– "गॉव का एक–एक नौजवान पिटते–पिटते बिछ जायगा पर यह ब्याह नहीं होने देगा।"[२] उसके साथी महेश्वर झा, गोनउड़ा, हेहुआ, बलभद्र मिश्र है। अपने सहपाठी कामरेड वाचस्पति से तर्क पूर्ण बातचीत करके बूढ़े चतुरा चौधरी की अवज्ञा करके कामरेड से विवाह करवाता है।

खोड़ा पंडित एक ऐसा चरित्र है जो पतित, धर्मभ्रष्ट है। वह अपने पुत्रियों और नतिनी के यौवन का मूल्य लेने में भी नहीं चूकता है। "उनकी कृपा से कोई बौडम के जल्ले पड़ी किसी को उसके आदमखोर पति ने किरासन तेल की मदद से जलाकर खाक कर दिया।"[३]

संस्कृत और व्याकरण के विद्वान खोखा पंडित की अनैतिकता किस चरम सीमा तक जा सकती है, इसकी कल्पना करना दुष्कर कार्य है। माहे की जमीन को हड़पना, अपनी १४ वर्षीय नतिनी कोमलांगी का विवाह एक बूढ़े से तय करना, माहे को खड़ाऊ फेंककर मारना इत्यादि कार्य है। उनका सारा ज्ञान और विद्वता तब धूल फॉकने लगती है जब नाराज होते समय वे अश्लील चेष्टाएँ करते हुए निम्नस्तरीय

---

[१] नागार्जुन –नई पौध पृ० ३६
[२] नागार्जुन –नई पौध पृ० ५६
[३] नागार्जुन –नई पौध पृ० १०

गाली–गलौज पर उतर आते है। "बाप चूल्हा फूँकते–फूँकते मर गया और तू हमारे घर में आग लगाने आया है–..... जाता है कि नहीं यहां से सूअर कहीं का।"[१]

मिथिला की यढ़िवादी प्राचीन परम्पराओं के जड़–समर्थक, लोभी ब्राह्मणों का यथार्थ खोखा पंड़ित, घटकराज आदि के रूप में हमें मिलता है। इनका धर्म है–ऊपर से ओढी हुई आडम्बरों की चादर जिसका खुलकर इस्तेमाल वे अपना उल्लू सीधा करने में करते है। यही नहीं अपनी स्वार्थ–सिध्दि हेतु ये सगे पुत्र–पुत्रियों के गले पर भी छूरी फेरने में नहीं हिचकिचाते। एक अन्य पात्र जो सोशलिस्ट विचारधारा का वाहक है जिसकी आस्था समाजवाद में है वह है वाचस्पति जो कहता है–" "व्यक्ति का संकट ही समाज का संकट है– और समाज का संकट ही समूचे देश का संकट है।"[२] विचारधारा के अनुरूप ही वह अपना जीवन ब्यतीत करता है।

जबकि एक अन्य पात्र दुर्गानन्दन जी अपने मुंशीपन में चतुर दिखाये जाते है। यद्यपि इस उपन्यास में नागार्जुन ने पात्रों का आंशिक परिचय ही दिया है तथापि वह उतने से ही उनका चारित्रिक नेखाएं स्पष्ट हो रही है

५–देश–काल के अन्तर्गत राजनीतिक धार्मिक भौगोलिक स्थिति का चित्रण

आंचलिक उपन्यासों में अनेकानेक तत्वों में देशकाल एवं वातावरण का महत्व बहुत बढ़ जाता है। देशकाल की वास्तविक पृष्ठभूमि से ही पात्रों के ब्यक्तित्व में पूर्णता आती है। आंचलिक उपन्यासकार नागार्जुन के उपन्यासों में मिथिला का जीवन्त प्रतिबिम्ब देखा जा सकता हैं वहां की परम्परा, वहां की बोली– बानी, परिवेश, रीति–रिवाज, खान–पान, उपज एवं प्राकृतिक सौन्दर्य के रम्य दृश्यों से उनके उपन्यास सजीव बन पड़े है।

---

[१] नागार्जुन –नई पौध पृ० ४८
[२] नागार्जुन –नई पौध पृ० १२२

देश काल ही ऐसा तत्व है, जो सबसे ऊपर रह सकता है और इसी में ऑचलिक उपन्यासकार का मूलाधार, उसकी साहित्यिक शक्ति एवं सम्प्रेषणीयता का अस्तित्व निहित है। "भौगोलिक परिस्थितियॉ अॅचल के बहिरंग एवं अन्तरंग दोनो को प्रभावित करती है। लेखक अॅचल विशष के स्थानों, पर्वो और चतुर्दिक सीमाओ, वारिश, बाढ़, जलवायु, प्रकृति, नदी–नालो, भूमि आदि का ऐसा परिवेश देता है कि अंचल का मानचित्र रूपायित होकर पाठक के अन्तस् पर अंकित हो जाता है।"[1]

नागार्जुन के कथा साहित्य में देश–काल की दृष्टि से मिथिला का जो परिचय मिलता है, उसे निम्न भागों में रखा जा सकता है–

खानपान एवं उपज–सम्बंधी विवरण

मिथिला में पैदा होने वाले अनाजों–मडुंआ तथा चावल की विभिन्न किस्मों के नाम नागार्जुन ने रतिनाथ की चाची में गिनाया है, यथा– आउंस, गम्हड्डी, तिरहुतिया, कनकजीर, असिनी, अंगनी और सूखापंखी। क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली सब्जियों के विवरण से ज्ञात होता है, कि वहां अनेक प्रकार की सब्जियां उगाई जाती थी। रतिनाथ की चाची में आमों की किस्में "बंबई, मालदह, किसुनभोग, कलकतिया, फजली, दड़मी, जर्दालु, साहपसिन(शाहपसंद), सुकुल, सिपिया, कपुरिया, दुर्गीलाल, काकेरवा, बचुआ, राढ़ी, भदई। मोहन ठाकुर की भदई। मालदह आमों का राजा है। बनारस की तरफ यही लॅगड़ा कहलाताहै। बंबई सबसे पहले पकने लगता है।"[1] बलचनमा में भी फलों के नाम गिनाये गए है। लताम(अमरूद), जामुन, कटहर, खीरा कुसियार(गन्ना), ककड़ी, खरबूजा, तरबूजा आदि वहॉ उत्पन्न होते है। गरीबी के दिनों में भुखमरी के समय भोजन का वर्णन बटेसरनाथ कहते है –"घर में औरतें ईट का

---

[1] डा० सत्यपाल चुघ– प्रेम चंदोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि पृ० ५५८

[1] नागार्जुन –रतिनाथ की चाची पृ० १३६

चूरन बनाती पहले, पीछे उस चूरन को महीन पिसान तैयार कर लेती। आम, जामुन, अमरूद, इमली वगैरह की पत्तियॉ उबालकर पीस ली जाती..।"[२]

मिथिलांचल में मछली भी मुख्य खाद्य–पदार्थों में गिनी जाती है। 'वरूण के बेटे', 'रतिनाथ की चाची', 'नई पौध' में विभिन्न प्रकार की मछलियो– रोहू, पोठी, इचना, कबई, मोदनी, मुगुंरी, ललमुहा, गरचुन्नी, बुआरी, भाकुर, आदि नाम है। भोजन में ये प्रिय होती है–

"जयकिशोर मछली के आगे और किसी भोज्य पदार्थ को महत्व नहीं देते थे।"......"पीठ, पेट, पुछरी, शिर–रोहू के अंग–अंग में पृथक–पृथक स्वाद होता है,..... भात तो दो चार ही कौर खाए होगें; रोहू के आगे भात–दाल को कौन पूछता है ?"[३] इसी प्रकार नाश्ते में भीगा चूड़ा और दही, घी में भुने ताल–मखाने और गुड़ का शर्बत अभी–भी ग्रामीण क्षेत्र की शान है। यात्रा आदि में अक्सर लोग "चिउड़ा, अचार, पकवान" झिल्ली–कचरी, लाईमूढ़ी, लावा–फुटहा, पूड़ी, मिठाई, मखान–मेवा, दाख–किसमिस, गडी–छुआड़ा इत्यादि ले चलते है।"

मिथिला प्रदेश में सिंघाड़ा, तालमखाना, कमल और कुंई के फूल, कमल गट्टे, कमलनाल, कड़हड़, केसौर, सारूख आदि पानी फल पैदा किये जाते है। इस तरह का वर्णन उपन्यासो में दृष्टिगत है। खाने के बाद आमतौर पर सुपाड़ी भी खाते थे। पंडिताइन ने जयनाथ को पानी पिलाने के बाद "सुपारी के दस–बारह खंड तश्तरी में सामने रख दिये।"[४] रत्ती को भी भोजन करने के बाद 'मुख शुद्धि के तौर पर सुपारी का एक छोटा सा टुकड़ा चबाना उसके अभ्यास में शामिल हो गया था।" सुपारी का टुकड़ा थमाते हुए चाची ने आले की ओर इशारा किया और कहा, "यहॉ आठ–दस सुपारी रख जाऊँगी, सरौता भी रहेगा।"[१] इसके आलावा धूम्र आदि का भी उल्लेख

---

[२] नागार्जुन –बाबा बटेसरनाथ पृ० ५६
[३] नागार्जुन –रतिनाथ की चाची पृ० १३१
[४] नागार्जुन –रतिनाथ की चाची पृ० ४२
[१] नागार्जुन –रतिनाथ की चाची पृ० १३

मिलता है। सुशीला के सिगरेट पीने का वर्णन "वह जब आवेश में आती तो लगाती, सिगरेट पर सिगरेट फूँकने।" है।

वहाँ के लोगों के पहनावे भी आँचलिकता का बोध कराते है। "अतिथि अभ्यागत आते तो पहले दरी या कंबल न रहने के कारण उन्हें खजूर की चटाई" दिया जाता था। विदाई के समय बाजार से काफी सामान मँगवाकर दिया जाता है। "चार जोड़ी, ओढ़ने की दो चादरे, दो तौलिया, हाफ जूता, दो जोड़ पैजामा, बनियाइन, कमीज, तसर का कोट, रेशमी की पाग, छड़ी–छाता, बारह आने–भर सोने की अगूंठी, कंबल, दरी, तोसक, उलैच(बिछाने की चादर), दो तकिया, फूल की बड़ी थाल, लोटा और गिलास, दाल खाने का बड़ा कटोरा। इसके अलावा रसोई में काम आने वाला बर्तन पीकदान, इतनी सारी चीजों से रामपुरवाली ने जमाई की विदाई का आयोजन किया।"[2] सुमित्रा बहन का भेष तो एकदम सादगी "मारकीन की पतली धोती, गले में रूद्राक्षों की माला, कपार पर गंगौर (गंगा की मिट्टी) का ठोप" भरा था। जबकि बलचनमा को आधुनिकता की सुगंध दिलायी गयी। "पहिले ही दिन मालिक ने मुझे एक निकर खरीद दिया, आधी बाँह की कमीज भी।"[3] इस प्रकार हम देखते हैं कि नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों में देश–काल का एक–एक चित्र को उकेरा गया है। छोटी सी छोटी वस्तु से लेकर जीवन के सभी आवश्यक अंगों के तत्त्वों का समावेश मिलता है।

रीति–रिवाज, परम्पराएं तथा धार्मिक अंध–विश्वास

मिथिलांचल के लोगों की धर्म के प्रति अत्यधिक आस्था है,उन्हें परम्परा के प्रतिमोह है तो, आधुनिकता की चकाचौध से भी वे अछूते नहीं है। उनके पारंपरिक संस्कारों, रीति–रिवाजों ओर चले आते धार्मिक क्रिया–कलापों को देखकर ऐसा लगता है, जैसे सम्पूर्ण देश सम्पूर्ण जीवन के अंग वही समेटा गया है। अभी भी मैथिल

[2] नागार्जुन –रतिनाथ की चाची पृ० १०२
[3] नागार्जुन –बलचनमा पृ० ४३

ब्राह्मण का विवाह 'सौराठ की सभा' में तय होता है। सौराठ वह स्थल "विवाह संबंध निश्चित करने के लिए जहॉ एक होते है, उस स्थान का नाम सौराठ हैं।" यहॉ विवाह के इच्छुक वर इकट्ठे होते है जिनका चयन कन्या पक्ष वाले करते है। मैथिल ब्राह्मणों की पंजीयन सूची "करणाट वंशीय राजा हरिसिंह देव चौदहवी शताब्दी में मिथिला के ब्राह्मणों की पंजी (फेहरिस्त) बना गए। तब से लेकर वह प्रथा चली है।"आज भी है। अभी-भी पैदा हुए बच्चे का नाम, गोत्र, वंश आदि पंजीकारों द्वारा उसमें अंकित कर लिया जाता है। पंजीकार अब भ्रष्टाचार भी करते हैं। यथा "पंजीकार वीरभद्र मिश्र ने ताल-पत्र पर सिद्धांत लिख दिया। उन्हें दो रूपये उसकी लिखवाई मिली। यह रकम कन्या वाले ने दी थी, क्योंकि उसका वंश कुछ निम्न कोटि का था।"[१]

वर-वधू को विवाह के बाद तीन दिन कड़े ब्रह्मचर्य में बिताने पड़ते थे; अगले दिन की रात 'चतुर्थी' उनके मिलन की रात्रि होती थी। 'विकौआ' प्रथा भी वहां प्रचलित थी। वह प्रथा उन्हे कहा जाता था, जो अपनी कुलीनता बेंच-बेंचकर अपनी जीविका चलाते थे।"[२] एक-एक ब्यक्ति बाईस-बाईस शादियॉ करते थे, तीन-चार दफे बिकने वाले 'बिकौआ' आज भी मैथिल ब्राह्मणों में यदा-कदा मिल जाते है।

मिथिलांचल में "श्रावण शुक्ल तृतीया नवविवाहिता वर-वधू के लिए तयौहार की तिथि है। तीज और हरितालिका ब्रत का यह त्यौहार किसी न किसी प्रकार समूचे भारत की सुहागिनों का एक सामान्य पर्व है। मिथिला में यह नव वधुओं के सौभाग्य का महान पर्व समझा जाता है। घृत-मिश्रित बाती की हलकी लौ से वर-बधू के पैरों को छू देता है। वह 'ईस' कर उठती है। सखी उसके पैरों पर दही-शहद अथवा शीतोपचार की और कोई वस्तु या मक्खन मिलती है।"[१] विवाह के समय ससुराल में "ऑगन में औरतों ने कमीज, कोट और बनियाइन खुलवाकर उमानाथ को गहरी

---

[१] नागार्जुन -रतिनाथ की चाची पृ० १२५
[२] नागार्जुन -रतिनाथ की चाची पृ० २०

निगाह से देखा। एक मुहफट खवासिन बोली – "ऑख मूँद लो भइया, धोती भी खुलेगी।"[2] विवाह के बाद कुछ दिन तक जमाई ससुराल में ही रहता है। लौटते समय अनेक खाद्य–पदार्थ उसके साथ दे दिये जाते है, जो आस–पास के घरों में 'बयने' के तौर पर बँटवाये जाते है।" पॉच भार आए थे । केला,दही, चूड़ा, मिठाइयॉ, पकवान, गरी–छुहारे, मेवा–मखान। चाची ने कुछ नहीं रखा, सारा बटवॉ दिया।"[3]

मिथिलॉचल में शादी के बाद गौना लाने की प्रथा भी प्रचलित है। जैसा कि बलचनमा कहता है – हमारी विरादरी में शादी कच्ची उमर में हो जाती है। शादी न कहकर उसे सगाई कहना ही ठीक होगा। छः वर्ष की उमर में शादी हो गयी थी और तो कुछ याद न रहा।......शादी और गौना के बीच एगारह साल का अन्तराल था। "[4] चूँकि कम उम्र में शादी होने पर विदाई असंभव होती थी, इसलिए गौना का प्रावधान बनाया गया था। गौने के पहले वर का ससुराल जाना वर्जित था। "गौना से पहले ससुराल जाना हमारी विरादरी का कायदा नहीं है।" रेबनी का भी गौना कई वर्ष के अंतराल में जाता है। वधू की मॉग में सिन्दूर भरकर विवाह विधि पूर्ण मानी जाती है। बड़े लोग दूब अच्छत छींटकर उन्हें आशीर्वाद देते है।" विदाई के समय औरतों का रोना "गौने वाली का तो मानों कंठ ही फूट गया था।" वर–वधू एक ही डोली में बैठकर ऑगन में प्रवेश करते है।" विवाह के समय नाई हवन की लकड़ियॉ लाता है। मिट्टी का पक्का हाथी विवाह के अवसर पर सामने रखा जाता है। दीप और मंगल कलश भी सामने रखने की रस्म है।" कुलदेवता की पिंडी पर मातृ का पूजन और गणेश स्मरण किया जाता है।" कोई भी शुभ कार्य करने के पहले यज्ञ आदि किये जाते है। पंडितों को दान–दक्षिण भी दी जाती है। पशुबलि की प्रथा भी वहॉ उचित समझी जाती है।"[1]

---

[1] नागार्जुन –रतिनाथ की चाची पृ० १३६
[2] नागार्जुन –रतिनाथ की चाची पृ० १२५–२६
[3] नागार्जुन –रतिनाथ की चाची पृ० १३६
[4] नागार्जुन –बलचनमा पृ० ६४
[1] नागार्जुन –नई पौध, पृ० ६२, बाबा बटेसरनाथ पृ० ६५

इसके अलावा भूत–प्रेत में बड़ा विश्वास रखते है, पानी न बरसने पर तमाम तरह के टोंटके किये जाते है। यथा –"ग्वालों, अहीरों और धानुकों ने यही चार दिनों तक मुइयॉ महाराज का पूजन किया, दस भेड़े बलि चढाई....तालाब से मेढ़क पकड लाये गये, उन्हें ओखलियों में मूसलों से कुचला गया। लेकिन मेध नहीं आया।"[२]

भूतों में "पाठक बाबा की ध्वजा जब से यहॉ खड़ी हुई तब से मेरे प्रति सभी की भावना बदल गयी।" किसी के घर में कोई तो पाठक बाबा का पूजन अवश्य कर लेता। मनोरथ पूरा होने पर मनौतियॉ चढ़ाता। बारह महीनों में बीस–पच्चीस बकरे भी बलि चढते थे – "मनौतियां चढ़ाने वाले श्रद्धालु लोग घड़ी दो घड़ी की पूजा करने के बाद घर चले जाते है।

तीज त्योहार पर स्त्रियॉ गीत गाती है। वहॉ चौपड़ के समान ही एक प्रकार का खेल खेला जाता है, जिसे 'पंचीसी' कहते है।" भाद्र शुक्ल की चौथ के दिन नैवेद्य निवेदन पूर्वक, उगते चॉद को देखने का त्यौहार मनाया जाता है, जिसे 'चउड़–चन' कहते है।" वधू के प्रथम मिलन के अवसर पर वर 'मुँह बजावन' की रस्म के मुताबिक भेंट देता है।"[३]

निःसन्देह नागार्जुन ने मिथिलॉचल के जन–जीवन को बड़ी पैनी दृष्टि से देखा है, और वहॉ की क्षेत्रीय संस्कृति को समझने में उनकी पैठ बहरी गहरी है। उनके लोकानुभव की समझ व उससे तादात्म्य स्थापित कर लेना, यही बुनियादी विशेषता है।

प्राकृतिक सौन्दर्य

मिथिलांचल की रम्य प्रकृति की सुषमा का वर्णन कर नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में प्रकृति–चित्रण को भी महत्व दिया है। वे उस प्रकृति–सुषमा का सजीव

---

[२] नागार्जुन –बाबा बटेसरनाथ पृ० ५४–५५
[३] नागार्जुन –नई पौध पृ० १४३,

चित्रण विधिवत् करते है। मिथिलाचल ऐसा स्थल है जो अपनी प्राकृतिक सुषमा से सहज ही हमारा मन मोह लेने की क्षमता रखता है। अनन्त प्रकृति की रूप–राशि तथा किसानों के श्रम से रचित–ग्राम प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य दोनो के अनुपम चित्रो से अपने कथा साहित्य को समृद्ध करने का श्रेय नागार्जुन को है। वे ग्राम वधू की कजरारी चितवन, चन्दनवर्णी धूल, ताल–तलैया, पोखर, ताल, मखाने, गन्ने का अनेक बार चित्रण करते है। "उनके उपन्यासों में मिथिला के ताल–पोखर की मचलती नील लहरियॉ, खेतों की इठलाती–बलखाती हरीतिमा, चन्द्र जयोत्सना का झीना ऑचल, आम और बरगद की छतनार छाया सभी कुछ देखा जा सकता है।"[१] इस तरह "नागार्जुन ने अपनी समूची सर्जना में जितनी केन्द्रीयता मनुष्य और मनुष्य जीवन को दी है, उतनी ही केन्द्रीयता उसमे निरन्तर बाह्य प्रकृति को भी प्राप्त हुई है।"[२] कहने का आशय यह है कि प्रकृति–चित्रण के ये स्थल लेखक के प्रकृति अनुराग, भाव–विभोर हृदय के पूर्ण उद्घाटक बनकर उपस्थित हुए है।

'रतिनाथ की चाची' में मिथिलांचल की प्राकृतिक चित्रण का चित्र "आगे के खेतो में धान के हरे–भरे पौधे लहरा रहे थे, उनसे परे आमों के नील निविड़ कुंज थे, उनसे भी परे सुदूर उत्तरी आकाश में हिमालय की ध्वल–धूमिल चोटियॉ थी, जो उगते सूरज की पीली किरणों से उद्भासित होकर स्वर्ण–श्रृंग सी लग रही थी।"[३] एक अन्यत्र वर्णन "शरद् ऋतु की चॉदनी मे नील निर्मेघ आकाश बिखरे नक्षत्रों की अपनी जमात के साथ बलुआहा पोखर के श्यामल वक्षस्थल पर जब प्रतिफलित हो

उठता है।" फिर "दिन भर की प्रचंड गर्मी, दोपहर रात तक की ठिठकी हरा और उसके बाद रात्रि–शेष में जब दक्षिण पवन ग्रीष्म ऋतु की शांत शिथिल अलग

---

[१] प्रकाश चद्र भट्ट– नागार्जुनः जीवन और साहित्य पृ० २२०
[२] शिवकुमार मिश्र–व्यक्ति और सर्जना के कुछ विशिष्ट पहलू, सपादक रामनिहाल गुंजन पृ० ३३
[३] नागार्जुन –रतिनाथ की चाची पृ० ३८

प्रकृति–नदी के सिमटे हुए ऑचल को फहराने लगता, तो घिवड़ी के विशाल वृक्ष की निस्पंद टहनियॉ उच्छ्वसित हो उठती"[1] है।

इसी प्रकार बाबा बटेसरनाथ में प्रकृति चित्रण का चित्र "पूर्णिमा का शशी ऊपर उठ आया था। चॉदनी अपना धवल–पाण्डुर रूप पकड़ चुकी थी", ऐसा ही दूसरा चित्र बाबा बटेसरनाथ में "स्निग्ध शीतल और धव पाण्डुर आलोक धरती को दिग्–दिगन्त तक उद्भासित कर रहा था। नीचे पृथ्वी ऊपर आकाश–दीप्त प्रकृति का उदार परिवेश वह क्या था– ग्रीष्मांत की रजनी का सौन्दर्य श्रृंगार था मानो।" "आश्विन की पूर्णिमा आ पहुँची धानों की मंजरियो के सूक्ष्म–सुरभित फूल अपना मन्द मधुर परिमल शरद–समीर को लुटाने लगे, अब उनसे दुधिया दाने निकल आए। नुकीले दानों वाली बलियो का वह विचित्र वैभव हेमन्त की अगवानी में अभी से झूम उठा।[2]

दुःखमोचन में प्रस्तुत प्रकृति–वर्णन से नागार्जुन का मिथिलांचल प्रेम ब्यक्त हो रहा है :

"यह देस–कोस, यह माटी–पानी, पहली वर्षा के बाद धानों के ये अंकुर, आमों से लदी ये अमराइयॉ, घौदों में लटके पकने को आतुर जामुन, गुलाबी फल–भार से विनम्र लीची की तुनक टहनियॉ, श्याम सलिल पोखर, ग्रीष्म की संजीदा और बरसात की बेहुदी नदियॉ।"[3]

'वरूण के बेटे' के रमणीय प्रकृति सौन्दर्य को देखकर लगता है कि प्रकृति की क्रोड़ में बैठ कर नागार्जुन ने इसकी रचना की है, "गढ़–पोखर का प्रशान्त नील–कृष्ण विशाल वक्ष हौले–हौले लहरा रहा था। हेमन्ती दिनान्त के प्रियदर्शी रवि

---

[1] नागार्जुन –रतिनाथ की चाची पृ० ४६
[2] नागार्जुन –बाबा बटेसरनाथ पृ० ११४
[3] नागार्जुन –दुखमोचन पृ० १३

की पीताभ किरणें उसकी लोल–लहरियों पर बिछकर अपने को नाहक ही पैना बना रही थी।"[1]

प्रकृति और मनुष्य में रागात्मक सम्बन्ध होते है। प्रकृति के स्वरूप के अनुकूल मानव मन भी बन जाता है। फिर ऑचलिक उपन्यासों में तो प्रकृति चित्रण और अधिक चित्रात्मक होता है। कारण स्पष्ट है, कि प्रकृति का वास्तविक सौन्दर्य हमे गॉवों में दिखाई देता है, और ऑचलिक उपन्यासों का एक भाग केन्द्र गॉव ही है। ऑचलिक उपन्यास "टूटते हुए भारतीय ग्रामीण जीवन की आंतरिक लय को पकडते हैं, क्योंकि नगर जीवन से सम्बन्धित उपन्यास में "ज़िन्दगी की धडकन यह महसूस नही होती।"[2]

इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यास में प्रकृति साथ–साथ लगी चलती है। वे प्रकृति से रस ग्रहण करते हैं। नदी–नाले, हरे–भरे मैदान, बादल–वर्षा सब कुछ भरपूर मात्रा मे मिलता है।

सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक स्थिति

बहिरंग चित्रण मे स्थानीय वेश–भूषा, खान–पान और उनकी बोली का समावेश होता है जबकि अन्तरंग चित्रण में सामाजिक, राजनैतिक स्थिति, धार्मिक तथा सांस्कृतिक स्थिति का समावेश रहता है। अन्य उपन्यासों की तरह ऑचलिक उपन्यासें में भी पूँजीवाद की छाया मॅडराती है, किन्तु वह नगरों की शोषण वृत्ति और राजनीतिक हथकंडों से अलग है। इसमें लेखक गांवों के ब्यापार–वाणिज्य, जंगलों–खेतों और कुटीर–उद्योगों आदि का वर्णन करके यह बता देता है कि वहां की जनता की आर्थिक स्थिति कैसी है, और वह किस प्रकार बदलने या उन्नत करने का प्रयत्न कर रही है। जमींदार उनसे वे जमीन छीनना चाहते है, 'बलचनमा' की मॉ,

---

[1] नागार्जुन –वरूण के बेटे पृ० २२२
[2] डा० इद्र नाथ मदान– आज का हिन्दी उपन्यास पृ० ६०– ६१

जरा खजौली चलना होगा। तुम्हारे घर से पश्चिम हमारा जो भिट्टा खेत पड़ता है, उसमे केरबी आम के कलम लगाना चाहता हूँ, तुम्हारी कुछ जमीन वहीं पड़ती है। वह अगर दे दो तो खेत बिल्कुल चौकोर हो जायेगा।"[१] जिन्हे कृषक वर्षो से बो रहे है। फलस्वरूप किसान–आन्दोलन का मार्ग अपनाते हैं। सभाएं होती हैं, नारे लगाते हैं– 'जमीन–किसकी–जोते, बोये उसकी।" मजदूर किसान एकता–जिंदाबाद !' वरूण के बेटे नारे लगाते है : 'गढ–पोखर हमारा है।'

'बलचनमा' सामाजिक और राजनीतिक क्रांति का प्रतीक है। इसका सारा जीवन निम्न–वर्गीय मजदूर के सामाजिक और राजनीतिक शोषण का फ्लैश है। "सूखे कोहडो के लिए क्या बसंत, क्या सरदी ?"[२]

'बाबा बटेसरनाथ' में देश की सामयिक राजनैतिक परिस्थितियों का यथार्थ अंकन है– बाबा बटेसरनाथ जैकिशुन को बीते हुए असहयोग आंदोलन की कथा सुनाते है– "उन दिनों असहयोग की धूम मची हुई थी....कोई अपनी नौकरी से इस्तीफा दाखिल कर रहा था.... ।"[३]

"राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम की धारा लोकचेतना के समतल मैदान मे उतर आयी थी। गांधी जी ने भविष्यवाणी कर दी थी कि वर्ष भर में स्वराज मिल जायेगा।" नागार्जुन जी ने टिप्पणी की है, कि असहयोग का वह जमाना अद्‌भुत था। देश का हर हिस्सा नई चेतना से स्पन्दित होकर ॲगड़ाईयॉ ले रहा था।"[४] इसके बावजूद गॉधी जी का असहयोग आंदोलन उनके सुझाए अहिंसक मार्ग पर ठीक–ठाक नहीं चल रहा था।"

---

[१] नागार्जुन –बलचनमा पृ० १५

[२] नागार्जुन –बलचनमा पृ० १५

[३] नागार्जुन –बाबा बटेसरनाथ पृ० ६४

[४] नागार्जुन –बाबा बटेसरनाथ पृ० ६७

भारत के विभिन्न प्रातो में असहयोग आंदोलन की भिन्न–भिन्न स्थितियॉ थी। 'बाबा बटेसरनाथ' में बाबा बताते हैं कि 'बंगाल के नौजवान गॉधी के असहयोग और सत्य–अहिंसा में आस्था नही रखते थे।'[1] वे दुश्मन को पछाडने के लिए सारे नुख्शे अपनाना चाहते थे।

नागार्जुन भारतीय राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन से न केवल गहरे रूप से जुडे थे, बल्कि उसमें राजनीतिक साहित्यिक रूप में सक्रिय योगदान भी दिया। वे कांग्रेस के वर्ग–चरित्र को पहचानते है। तभी तो 'बलचनमा' का कथन समसामयिक राजनीति के लिए अर्थपूर्ण और सटीक बन पड़ा है कि 'कलकत्ता–बम्बई के सेठ–साहूकार भी भीतर ही भीतर गांधी जी का पक्ष ले रहे थे। उनको साफ–साफ लगता था कि स्वराज्य होने से सबसे जास्ती भलाई उन्ही की होगी।'[2]

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व देश में क्रांतिकारी उभार स्पष्ट दिखायी दे रहा था। लेकिन आजादी के तुरंत बाद यहॉ मुनाफाखोरी, चोरबाजारी, भ्रष्टाचार, तस्करी, अराजकता, बेरोजगारी, असह्य गरीबी आदि ने यह बता दिया कि हमारा भी ध्यान रखो वरना सारे कीर्तिमानों को मैं ध्वस्त कर दूँगा। 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास का राजनीतिक माहौल स्वतंत्रोपरान्त की सरगर्मियों का जीवन दृष्टा है। स्वतंत्रता से पूर्व ओर स्वतंत्रता के बाद नेताओं में जनता से मिलने के उद्देश्यों में भारी परिवर्तन आया। यथा– "कत्ल के झूठे आरोप मे बन्द दयानाथ जब एम०एल०ए० उग्रमोहन से मिलता है, तो एम०एल०ए० के टाल–मटोल करने से उसकी सोंच एकदम बदल जाती है। आजादी; छिः आजादी मिली है, हमारे उग्रमोहन बाबू को, कुलानन्द को, कांग्रेस के टिकट पर जो भी चुने गए हैं, उन्हें मिली है आजादी। मिनिस्टरों को तो ऊंचे दर्जे की आजादी मिली है। सेक्रेटेरिएट के बड़े साहबो को भी आजादी का फायदा पहुॅचा है।"

---

[1] नागार्जुन –बाबा बटेसरनाथ पृ० १००
[2] नागार्जुन –बलचनमा पृ० ६७

नागार्जुन ने अपने उपन्यास के माध्यम से समाज का वह अछूता, अनदेखा दृश्य पाठकों के सामने रख दिया है, जिसे प्रायः देखकर भी अनदेखा किया जाता रहा। वे 'अनेकता मे एकता' की दार्शनिक दीवार खडी करके भारतीयता का जयघोष करते है, राष्ट्र की दमित सौंधी गंध को विकीर्ण करते है। नागार्जुन के 'बलचनमा' तथा 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यासों के प्रणयनमें मर्यादित सांस्कृतिक दृष्टि का उन्मेष हुआ है चूँकि 'आज के इलेक्ट्रॉनिक युग की सभ्यता मशीनी हो गई है। विज्ञान की प्रगति ने मनुष्य से उसकी मनुष्यता छीन ली है। मानवीय संवेदनाओं मानवीय मल्यों और गुणों एवं मानवीय भाव लोकों में नीरसता परिलक्षित होने लगी है। इसमें प्रदर्शन कृत्रिमता, आडम्बर, अपरिचय पर हमारे संस्कार बन गये है। इस हेतु से नागार्जुन के उपन्यासों ने सांस्कृतिक विशिष्टता को पुनः जीवित करने का प्रयास किया। समस्त भारत भूमि हमारा घर, हमारा कुटुम्ब है, इसकी पुनः स्थापना का प्रयत्न किया है।"[१]

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । अतः उसका चिंतन समाज सापेक्ष होता है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। वह भी सामाजिक स्थितियों का प्रतिबिम्ब करता है। नागार्जुन का उपन्यास साहित्य और सामाजिक व्यक्तित्व का आत्म व्यंजक व विस्फोटक मात्र नही वरन् समाज के प्रभावों से उद्भूत होते हुए अपनी जीवनी शक्ति के कारण सामाजिक चेतना का प्रेरक एवं प्रसारक भी है।"[२]

बलचनमा में उस समाज का चित्रण मिलता है जिसमें सामन्तशाही, जमींदारवर्ग उस कर्मठ, जुझारू और संघषशील वर्ग का खून चूस रहा है, जो अपनी मेहनत व सेवा से इस वर्ग को खुशहाल बनाता है। लेकिन शोषण की पराकाष्ठा को बर्दाश्त न कर पाने के कारण आगे बलचनमा के अन्तर्गत शोषकों के विरूद्ध आक्रोश और विक्षोभ की ज्वालामुखी को धधकता हुआ दर्शाया गया है। शोषण की पराकाष्ठा को पार करता हुआ निम्न वर्ग जब जगता है तो उसमें एक अजीबोगरीब आन्तरिक

---

[१] आलोचना पत्रिका— अप्रैल—जून—१९८१ में प्रकाशित अंश से साभार।

[२] नागार्जुन का उपन्यास साहित्य— समसामयिक संदर्भ, डा० सुरेंद्र कुमार यादव पृ० ८८

शक्ति जगती है। तब वह शर्मा जी के रूप मे बोलती है , रहिमन चाक कुम्हार के मॉगे दिया न देय

बिल में डंडा डाल के, जो चाहे गढ़ि लेय,,

अब वह किसान भाइयों को संगठित करने का आह्वान करता है" किसान भाइयों मांगने से कुछ नही मिलेगा, अपनी ताकत से अपना हक पा सकते है"[१] अब रोने धोने का समय नही है। हजारों साल से तो रो रहे हो लेकिन हमारी आपकी कौन परवाह करता है सरकार परवाह उसकी करती है जो चोर डाकू है। सरकार की आपकी जरा भी फिक नही है वह मानो खुद ही इशारा करती है–किसानों, चोरी करो और डाका डालो तभी तुम्हारा गुजर होगा" वस्तुतः निम्नवर्गीय सामाजिक पीडाओं का लेखा–जोखा नागार्जुन के उपन्यास है। 'बाबा बटेसरनाथ' में अकाल के समय लोगों द्वारा उठाये गये कष्ट तथा जमींदारों द्वारा ली गयी बेगार का वर्णन किया गया है। " रेल कम्पनी के लिए यह सुनहरा मौका था। कम से कम मजदूरी पर ज्यादा से ज्यादा काम करने की वह अनोखी आपाधापी थी बेटा दिन भर की कड़ी मेहनत के बाद एक दुअन्नी हाथ आती थी। चावल तो मिलते नही थे। जुन्हरी और मुड्डुआ–जैसा मोटा अनाज मिलता था।"[२]

नागार्जुन इस क्रांति की मंजिल को जानते है, पहचानते है और स्वयं आस्था भूमिकांति में जताते है। वे बलचनमा से कहलवाते हैं। सेठो, जमीदारों राजाओं, महाराजाओं से जमीन जायदाद और धनसंपदा छिनकर उन लोगो में बांटना है....." जमीन किसकी जाते बोए उसकी, अंग्रेजी राज......नाश हो ! जमींदारी प्रथा......नाश हो ! आदि नारो से गूॅज उठता है। नागार्जुन की आस्था मार्क्सवाद में है और इसीलिए साम्यवादी व्यवस्था में उनके वैचारिक अन्तर्विरोध युगीन परिस्थितियों के बीच जनता और बामपंथियों के भीतरी अंतर्विरोधों की ओर संकेत करते है। डा. नामवर सिंह का

यह कथन सुसंगत है कि समाजवादी का स्वप्न देखने वाले नागार्जुन इस दौर में जनवाद की रक्षा के लिए बराबर खड्गहस्त रहे हैं।[1]

कबीर की आस्था जनता में उसके विकासमान मूल्यों में थी। नागार्जुन की आस्था पैदल चलने वाले वर्ग में है, जिस पर पचास वर्षों से शामत आयी हुई है। उसकी शामत उच्च–वर्ग की वजह से आयी है। डा० रामविलास शर्मा ने इन्ही लोगों की ओर उंगली उठाकर कहा था "पूँजीवादी ब्यवस्था श्रमिक जनता का आर्थिक रूप से शोषण ही नहीं करती, वह उसके सौन्दर्य–बोध को कुंठित करती है, उसके जीवन को घृणित और कुरूप भी बनाती है। फूलों–फब्बारों से सजे हुए बाग–बगीचे पूँजीपतियों और उनकी रखैलों के लिए है, मजदूरों के लिए गन्दी बस्तियों की तंग कोठरियॉ है। समाजवाद का उद्देश्य गॉव और शहर का भेद मिटाना है; खेतों की हरियाली के बीच स्कूल, अस्पताल कायम करना, वहॉ बिजली की सुविधाएं पहुँचाना और शहरी बस्तियों की गन्दगी मिटाकर हरे–भरे पार्को –पेड़ो और फूलों से उसे सुन्दर बनाना है। जो चेतना मनुष्य की इस प्राकृतिक आवश्यकता को समझती है, वही उसे सामाजिक संघर्ष में भाग लेने की प्रेरणा भी देती है।"[2] नागार्जुन का गॉव या शहर बहुत अधिक कालांकित ओर तत्कालिक स्थितियों पर आधारित है।

नागार्जुन साम्राज्यवाद का विरोध ही नहीं करते, बल्कि इससे मुक्ति के लिए संघर्ष भी करते है। द्वितीय महायुद्ध में जब हिटलर ने रूस पर आक्रमण कर दिया था, "इस अशुभ समाचार से रतिनाथ की चाची को खेद हुआ। वह बोली – "कैसा दिमाग है दरिद्दर का। मुदा बच्चा–बच्चा कट मरेगा, तभी रूस दखल होगा। है न बाबू।"

'वरूण के बेटे' उपन्यास में मोहन मॉझी भी लड़ाई में कई बार भाग ले चुका है। उसकी आस्था साम्यवादी दलों में है। वह उसका प्रचार करता है, और साम्यवाद

---

[1] डा० नामवर सिंह आलोचना, अंक ५६– ५७ पृ० २

[2] डा० रामविलास शर्मा आलोचना पत्रिका

की नीतियो के तहत अपने गॉव के विभिन्न जातिपरक संगठनो –मैथिल महासभा, राजपूत महासभा, यादव महासभा आदि का बायकाट करने की घोषणा करता है।"[1]

'नई पौध' का मुख्य पात्र बाचस्पति युवा सोशलिस्ट नेता है। "छः लाख की आबादी वाले तीन–तीन थानों की जनता की तरफ ने इन छः सात वर्षो के अन्दर नौ दफे जेल जाकर थाली कटोरा बजा आया था।" उसकी मॉ शिक्षिका है, गाव की कन्या पाठशाला मे। अपने पुत्र के बारे में उसके विचार गैर–कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं की स्थिति बिल्कुल स्पष्ट करते है। छोकरे की अकल पार्टी ने चाट ली है। कुछ भी नहीं समझता है मेरा बेटा। पढाई लिखाई छोडकर रने–बने भटकता फिरता है, क्या तो किसान–मजूर का राज कैम करेंगे सबको जमीन मिलेगी, सबको काम मिलेगा। टिरिया के मर जाओगे, कुछ नहीं होगा। देख तो रही हूँ, पॉच बरस से कौन लड्डू पेडा मोहन भोग–मालपुआ हाथ लगा है ?"[2] इस प्रकार घर परिवार और तथाकथित युगीन शुभचितकों की डॉट–फटकार सुनते हुए तथा विविध प्रकार की लांछनाओं को आत्मसात् करते हुए भी उन युवकों का साहस नहीं टूटता।

नालियों में कीडे सरीखे जीवन भोग रही, नारियों को पुरूष की हवश का शिकार, नारियों को नागार्जुन ने एक उच्च्य स्थान प्रदान किया है। नारी के उज्ज्वल सम्मानित भविष्य की भूमि मे वे स्वस्थ के बीज को अंकुरित करते है। इतना ही नही नागार्जुन ने ग्राम्य विकास, बेरोजगारी; अन्याय, अत्याचार अधिकारों की लड़ाई आदि अनेको ज्वलन्त समस्याओं को उपन्यासों का उपजीव्य बनाया है। "नई पौध' में एक खास समस्या बेमेल विवाह को उठाया है। लेकिन इसके अन्तर्गत भी यदा–कदा तत्कालीन सामान्य से सामान्य समस्याओं की झलक मिलती है। एक स्थान पर निम्न वर्ग का पात्र छकौड़ी खबास कहता है, अंग्रेज लहू पीता था तो ई लोग (कांग्रेसी

---

[1] नागार्जुन–वरूण के बेटे पृ० २८६
नागार्जुन–नई पौध पृ० १०८

शासक) हड्डी चबाते है पंडित जी।"[1] इस पर गांव के मुखिया पडित जी कहते है, 'धन्य कांग्रेस सरकार कि हमारी इज्जत–आबरू बची हुई है। " तत्काल ही मामूली हैसियत वाला गृहस्थ फतूरी ठाकुर कंट्रोल से उत्पन्न समस्या पर शिकायत रखता है, "अफसर साले घूस खाते है, दुकानदार उनको चॉदी सुँघा देते है।"[2]

नागार्जुन की राजनीतिक विचारधारा निम्न–मध्यवर्ग की विचार धारा नहीं, बल्कि उनकी विचारधाराओं का आधार है, श्रमजीवी किसान मजदूर वे इसी दृष्टिकोण से भारत की आजादी को देखते है। "आजादी के तुरंत बाद यहॉ मुनाफा खोरी, चोरबाजारी, तस्करी, अराजकता, भ्रष्टाचार, असह्य गरीबी, बेरोजगारी आदि ने अपना–अपना पिछला कीर्तिमान खुद ही तोड़ा है। विधान मडल, संसद और सरकारी प्रचार तंत्रों के अनुसार उत्पादन प्रतिवर्ष अधिकाधिक होता जा रहा है, देश की गरीबी इन तंत्रों के अनुसार घटती जा रही है फिर भी यहॉ की जनता असहाय है, भूखी है, लाचार है, अशक्त है, भयभीत है और अशिक्षित है।"[3] यह आजादी के बाद का जीवंत दस्तावेज हैं। यह हमारे समाज के लोलुप और चरित्रहीन नेताओं के कारण ही आज की सामाजिक ब्यवस्था अस्त–ब्यस्त और पतनोन्मुख है। गरीब जनता चाहे गॉवों की रही हो या शहरों की, राजनीतिक दलों ने उसे संगठन की रीढ़ नहीं बनाया। ऐसी भूखी, नंगी, दीन–हीन, पीड़ित शोषित ओर असहाय जनता का राजनीतिक दल वालों ने जमकर उपयोग किया और उसे सड़क पर छोड़कर खुद खूबसूरत छायादार लान में जा बैठे। बाबूजी ने ऐसी ही जनता से जुड़कर और साथ चबेना खाकर उनके लिए साहित्य को अपना एक मात्र लक्ष्य बनाया है। जन सामान्य के सभी गुणों अवगुणों को भरकर अपने में समेटते हुए उनके बीच में रहना चाहते है। जिस किसी भी बात अंततः उनकी राष्ट्रीय चेतना की परिणति उग्र क्रांतिकारी भावना में हुई, जो कि

---

[1] नागार्जुन–नई पौध पृ० ४१
[2] नागार्जुन–नई पौध पृ० ४२
[3] शोभा कांत –नागार्जुन– मेरे बाबू जी पृ० १४२

स्वाभविक थी। एक तो मिथिला का अँचल दूसरे वहां का सामाजिक परिवेश, वे अन्यतम सदस्य थे, राष्ट्रीय क्रांतिकारी आंदेलन का समर्थक होना।

हिंदी में जिस तरह कबीर को विद्रोह का पर्याय मान लिया है, उसी तरह नागार्जुन को भी। कवि के रूप मे उनके रचना संसार की नयी दृष्टि को निर्विवाद स्वीकृति मिली है। लेकिन एक क्षेत्र ऐसा और है जहां नागार्जुन का अपना निजी स्वर बिल्कुल अलग से सुनाई पड़ता है। वह उनका गद्य है– विचारात्मक और रचनात्मक दोनों ही। वे पहले खरी समीक्षा करते है, फिर समाज की बाहरी भूल–गलती का कच्चा चिट्ठा खेलते हैं। वे"अपनी जनवादी आस्था और प्रतिबद्ध राजनीति कला के आयाम में नकली बहस का तर्कवाद नहीं खड़ा करते है।"[1] वरन् अपनी प्रतिबद्ध राजनीति कला को वह सर्वहारा वग्र की वस्तुगत चेतना तक विकसित करते है।

संक्षेप मे, नागार्जुन द्वारा प्रस्तुत सामाजिक और राजनीतिक स्थिति, देश–काल योजना की सफलता के लिए महत्वपूर्ण है। और उसका सही–सही ज्ञान उन्होंने दिया है। इस दृष्टि से असंगति के अभाव दिखने के कारण नागार्जुन के उपन्यास बडे प्रभावोत्पादक बन पड़े है।

जनजागरण की भावना का संकेत

ऑचलिक उपन्यासें के तटस्थ किन्तु यथार्थ चित्रण की प्रवृत्ति, न चाहते हुए भी कभी–कभी नवजागरण की भावनाओं का प्रतिनिधित्वपूर्ण अंकन प्रस्तुत करती है। नागार्जुन के 'बलचनमा', 'बाबा बटेसरनाथ', 'नई पौध' जिसमें जन जागरण की भावना का यथार्थ चित्रण मिलता है। ऑचलिक उपन्यासों में ग्रामीण जनजागरण की भावनाओं में सुखमय नागरिक जीवन की प्रगतिशील विचारों का जन्म होना ही जनजागरण की भावना का संकेत है, शहरी जनता की तरह वेश–भूषा बोलचाल, अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग, रेडियो, फिल्मी गानों और चल–चित्रों का शौक, ट्रैक्टर,

---

[1] विष्णु चंद शर्मा– राजनीतिक तर्क शास्त्र के प्रतिबद्ध कवि पृ० ६३ संपादक राम निहाल गुंजन

स्कूटर आदि का प्रयोग ग्राम जीवन में विशेषकर दिखलाई पड़ता है। नगरों की नैतिक प्रवृत्ति गॉवों में भी घर कर गयी है। वहां नगरों की देखा देखी, भाई–भतीजावाद आत्मस्वार्थ और तानाशाही प्रथा जोर पकड रही है। पूंजीपति वर्ग की शोषण वृत्ति की खून–पसीने की कमाई को समझना तथा मुकदमें बाजी की प्रथा को अपनाना ये सब नवजागरण का ही स्वरूप है।

''बाबा बटेसरनाथ में जन–जागरण के हेतु सामूहिक शक्ति से अवगत वट–वृक्ष जैकिसुन को करा रहा है।''झींगूर एक तुच्छ कीड़ा होता है। सैकड़ों हजारों की तादात में जब ये एक स्वर होकर आवाज करने लगते है तो एक अजीब समॉ बध जाता है। झींगुरों की यह अखण्ड झंकार कई–कई पहर तक चलती रहती है। सामूहिक स्वर की इस एकाग्र महिमा के आगे मेरा मस्तक सदैव नत होता रहा है। और होता रहेगा।[१] लोगों में खासकर युवको में वर्तमान शासन–ब्वस्था के प्रति अनास्था तथा विद्रोह की भावना है। जनमानस का असंतोष वट–वृक्ष द्वारा कहे गये इन शब्दों –''साधारण जनता का स्वर्ण–युग तो अभी आगे आने वाला है बेटा'' से स्पष्ट होता है। वे सब मिलकर किसान–सभा का निर्माण करते है, जिसका कार्य जमीन की बेदखली के खिलाफ गांव के लोगों का संयुक्त मोर्चा। पास–पड़ोस के किसानों से इस संघर्ष में मदद लेना और जरूरत पड़े तो उन्हे भी मदद पहुचाना है।' वट–वृक्ष इस नयी पीढ़ी को आशीर्वाद देता है ओर उनके कार्यो की सराहना करता है। ''तुम लोगों ने तो बस्ती की हवा ही बदल दी। ....मैं आशीर्वाद देता हूँ, रूपउली वालों की यह एकता हमेशा बनी रहे। सुखमय जीवन के लिए तुम्हारी यह सामूहिक प्रचेष्टा कभी मन्द न हो, स्वार्थ की व्यक्तिगत भावना कभी तुम्हारी चेतना को धुधला न बनाये।''[२]

---

[१] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ पृ १६

[२] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ पृ १५३

दुखमोचन' में वर्गचेतना निचले स्तर से शुरू हो रही है। यह घरेलू काम करने वाली नौकरानियों में जन–जागरण का संकेत है। वे अब पुराने रेट पर काम नहीं करना चाहती, एवं काम बंद करके हड़ताल की सूचना देती हैं। "अब मै छः आने माहवारी पर काम करना नही चाहती। जमाना तेजी से बदल रहा है, बबुअन! और है भी तो यह पुराना रेट ......।"[1] यह केवल शशि कला की ही समस्या नहीं है, यह उस आम वर्ग की समस्या है जो अपनी अज्ञानता वश, अपनी गरीबी वश, शोषित होता आ रहा था। अब उसमें भी चेतना का उदय होने लगा है। अब वह जानने लगा है कि पोखर हमारा है। जैसा कि गोनड़ कहता है– "यह पानी सदा से हमारा रहा है, किसी भी हालत में हम इसे छोड़ नही सकते। पानी और माटी न कभी बिके है, न कभी बिकेगें। गरोखर का पानी मामूली पानी नहीं है, वह तो हमारे शरीर का लहू है, जिनगी का निचोड़ है।"[2] मोहन मॉझी मछुआरों को सम्बोधित करता है "गढ़–पोखर हमारे हाथों से न निकले, किसान सभा जैसी जुझारू जमात ही हमारी सहायता कर सकती है। "यह सब भावना सर्वहारा वर्ग में एकदम राजनीति चेतना का सूत्रपात करने के लिए हुआ है। जैसा कि नागार्जुन स्वयं कहते हैं– "देश का कल्याण वर्ग –विहीन समाज की रचना करने से ही होगा। इसके लिए गरीब वर्ग को विभाजित होकर नहीं, झंण्डे के नीचे संगठित हो कर उच्च–वर्ग से लोहा लेना होगा। यह सच है कि उच्च–वर्ग शक्तिशाली है, धन और शासकीय अधिकारियों का समर्थन उसे प्राप्त है, पर किसान जैसी सभी शक्तिशाली संस्था के साथ संगठित होकर यदि संघर्ष किया जाय तो जीत जनता की होगी। निम्न–वर्ग अब अपने शोषण का प्रतिकार करेगा। दबाने से दबेगा नहीं। अपने अधिकारों की भीख नहीं मागेगा, छीनकर ले लेगा। इस प्रकार निम्न–वर्गीय जनता की पीड़ा, अपने अधिकारों के प्रति उसकी सतर्कता और उसका ताकतवर शक्तियों के सम्मुख न झुकना आदि चित्रित

[1] नागार्जुन–दुखमोचन पृ० ७७
[2] नागार्जुन–वरूण के बेटे पृ० २८३

करना लेखक का मुख्य उद्देश्य रहा है।"[1] बलचनमा को तो स्वाधीनता आंदोलन से प्रेरणा भी मिली –"सच जानो भइया , उक्त मेरे मन मे यह बात बैठ गयी कि जैसे अंग्रेज बहादुर से सोराज लेने के लिए बाबू भैया एक हो रहे है, हल्ला–गुल्ला ओर झगड़ा–झंझट मचा रहे हैं, उसी तरह जन–बनिहार, कुली–मजदूर और बहिया खवास लोगों को अपने हक के लिए बाबू भइया से लड़ना पड़ेगा।"[2] बलचनमा भी बदबूदार छेना, जूठन और बची हुई कड़वी तरकारी, सूखा ओर बासी पकवान खा–खाकर तथा जमींदार द्वारा की गयी यातनाएं सहकर बड़ा हुआ है। यही नहीं उसकी मॉ–बहन की इज्जत आवरू पर डाका डाला गया। उसके अंदर भी प्रतिशोध की ज्वाला धधक उठी वह यह प्रण करने पर विवश होता है– बेशक ! मैं गरीब हूँ। तेरे पास अपार संपदा है, कुल है, खानदान है, बाप–दादे का नाम है, अड़ोस–पड़ोस की पहचान है, जिला–जवार में मान है और मेरे पास कुछ नहीं है। लेकिन आखिरी दम तक मैं तेरे खिलाफ डटा रहूँगा। अपनी सारी ताकत को तेरे विरोध में लगा दूँगा। मॉ और बहिन को जहर दे दूँगा, लेकिन उन्हें तू अपनी रखैल बनाने का सपना कभी पूरा न कर सकेगा।"[3] किसान अब अज्ञान और अकेला नहीं है। उसके अंदर भी प्रज्ञा है, वह भी चेतना से संगठित हो रहा है। 'बलचनमा' उपन्यास में लेखक का उद्देश्य बलचनमा के जीवन–संघर्ष के चित्रण द्वारा उस समाजवादी चेतना की ओर निर्देश करना है, जो साधनहीन एवं स्वाधिकार वंचित किसान के अंतर में अन्याय तथा अत्याचार के प्रति विद्रोह की भावना को जन्म दे रही है।"[4]

डा० महावीर लोढ़ा के अनुसार – 'बलचनमा' में लेखक का उद्देश्य बलचनमा के माध्यम से दीन–हीन सर्वहारा वर्ग के साधन सम्पन्न शोषक वर्ग के प्रति वर्ग–संघर्ष का चित्रण कर साधनहीन वर्ग में वर्ग–संघर्ष की ज्वाला को प्रदीप्त करना

---

[1] डा० प्रकाश चंद्र भट्ट–नागार्जुन जीवन और साहित्य पृ० १६१
[2] नागार्जुन– बलचनमा–पृ० ८५
[3] नागार्जुन– बलचनमा–पृ० ७४
[4] डा० मंजु लता सिंह– हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग पृ० ३४७

है। वर्ग–संघर्ष का चित्रण कर समाजवादी चेतना को प्रदीप्त करना ही लेखक का उद्देश्य है।"[1] नागार्जुन यह दिखाना चाहते है कि जनता के अन्दर जन जागरण की भावनाएं कब आती है, जब उसका शोषण होता है। सर्वहारा वर्ग में ही चेतना का उदय होता है। साम्यवादी उपन्यासकार होने के नाते उनके उपन्यासों में वर्ग–संघर्ष पूरे वेग के साथ उभरता है, उन्ही के शब्दों में– शोषक और तानाशाही शक्तियों के खिलाफ जनमत तैयार करना मेरा पहला कदम हो जाता है। संघर्ष के लिए जो प्रतीक मुखरित होते है, उन्हें उभारता हूँ, ताकि रग–रग में माहौल पैदा हो जाये।"[2]

नागार्जुन तो स्वयं ही सर्वहारा है। इसीलिए वे मानते है "अस्सी प्रतिशत (जनता या किसान) हमारी इष्ट देवता है जो जीवन के आस–पास फैली हुई है। मैं भी उन्हीं के साथ जुड़ा हुआ हूं। समाज के घटना–प्रवाह से विच्छिन्न नहीं हूं। पात्रों के साथ मुस्कराता हूँ, उनसे बात करता हूँ। मै ऐसे वर्ग को प्रतिनिधि नहीं चुनता, जिनमें मै नहीं हूं।"[3]

"वस्तुतः युगीन परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण और किसी भी प्रकार के शोषण के विरोध में आवाज बुलंद करना ही प्रगतिशील चिन्तन का चिन्ह है"[4] इस प्रकार जन जागरण की भावना आंचलिक उपन्यासों के आवश्यक तत्व माने जाते है। इस भावना का प्रतीक विभिन्न उपन्यासों में विभिन्न नायक या चरित्र बने है। जिनके अंदर निहित चेतना ने उनके पीछे एक समूह को चलने पर बेवस कर दिया।

'रतिनाथ की चाची' में ताराचरण जैसा नायक उभरता है, जिसे न केवल क्षेत्रीय समाज सुधार की चिंता है अपितु वैश्विक बोध भी है। वह हिटलर के रूस पर आक्रमण को चाची को सुनाता है, और सार्वजनिक प्रवृत्तियों में ज्यादा दिलचस्पी भी लेता है। बरसात के दिनों में गांव जाने वाली सड़कों की मरम्मत लोगों के अंदर

---

[1] डा० महावीर लोढ़ा– हिन्दी उपन्यासो का शास्त्रीय विवेचन–पृ० ८३– ८४

[2] डा० ब्रजभूषण सिह 'आदर्श' – हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन पृ० ४०६

[3] डा० ब्रजभूषण सिंह 'आदर्श' – हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन पृ० ४०६

[4] राधेश्याम कौशिक 'अधीर' – हिन्दी के आंचलिक उपन्यास पृ० १८६

चेतना को जगाकर पूर्ण करवा देता है तो दूसरी तरफ जर्जर हो चुके किसान भवन का पुनरूद्धार भी करवाता है। पोखरों, में लोगो को सुविधानुसार सफाई करने हेतु प्रेरित करता है। इसके विषय में नागार्जुन लिखते है– 'ताराचरण के रूप में नए नेतृत्व का उदय हुआ था। बूढे पहले कुछ दिनों तक उसे मान्यता देने को तैयार नहीं थे परंतु बाद में उन्हें झुकना पड़ा। बूढ़े समाजपति पुराना अधिकार कायम रखने के कलए हाथापाई करके कई बार शिकस्त खा चुके थे।" खुद ताराचरण कहता है – "जमाना बदल गया है। हम जब अग्रेंजों की नाक में कौड़ी बॉधते है तो राजा बहादुर की बिसात ?"[1]

लेकिन जनप्रतिनिधि उग्रमोहन बाबू के ब्यवहार से वह क्षुब्ध हो उठता है, वह कहता है, "आजादी ! फिः ! आजादी मिली है हमारे उग्रमोहन बाबू को, कुलानन्द दास को....कांग्रेस की टिकट पर जो भी चुने गए है, उन्हें मिली है। सेक्रेटिरियट के बड़े साहबों को भी आजादी का फायदा पहुँचा है।"[2] लेकिन वह हार मानने वाला नहीं था। असे अब गांधी के कांग्रेस से कोई आशा नही थी। वह पोखर पर फणींद्र नारायण झा के हल को चलने नहीं दिया, इसके लिए वह दृढ़ स्वरों में कहता है – "नाहक झगड़ा फसाद बढ़ेगा, तुम अपने हल–बैल वापस ले जाओं फननी! काफी धन सम्पदा भगवान् ने तुम लोगो की दी है, पोखर की कछार पर समूची बस्ती का अधिकार है...."[3] उसने जो भीड़ इकट्ठी की वह सम्पूर्ण समाज की भीड़ थी जिसमें "पंडित शशि नाथ ठाकुर है, हाजी करीम बक्स है, मोसम्मति झुनिया है, अहीरों की बिरादरी के गोनउड़ महतो और सहदेव राउत है, भुट्टू पासवान है, विजय बहादुर सिंह सिसोदिया है, जहदली जोलहा है, सोनमा ढोलिया है अचकमनि मोसम्मात है....... ......खेतिहर है, बलिहार है, हलवाहे–चरवाहे है–कौन नहीं है ?"[4]

---

[1] नागार्जुन–रतिनाथ की चाची पृ० १५२
[2] नागार्जुन –बाबा बटेसरनाथ पृ० १२७
[3] नागार्जुन –बाबा बटेसरनाथ पृ० १३४
[4] नागार्जुन –बाबा बटेसरनाथ पृ० १३४

नागार्जुन जन–आन्दोलन के समर्थक थे और सम्प्रदायवाद का विरोध करने के लिए जन–आंदोलन अचूक अस्त्र है। जनता की मॉगों को लेकर जन–आंदोलन चलाना चाहिए। नागार्जुन ऐसे आन्दोलनों के साथ रहे है। सम्प्रदायवाद और जातिवाद दोनो को निर्मूल करने कि लिए वर्ग–संगठन और वर्ग–संघर्ष जरूरी है। प्रेमचन्द के बाद बहुत कम लोगों ने इतनी जानकारी और सहानुभूति के साथ गांव का चित्रण किया है। 'रतिनाथ की चाची' ऑचलिक उपन्यास का बहुत अच्छा उदाहरण है। गांव का किसान कैसे मजदूर बनता है, उसकी बोली–बानी में क्या तब्दीली होती है, इसका सब अद्‌भुत चित्रण 'बलचनमा' में है। वे रिक्शा चलाने वालों के नंगे पैर में कैसे घट्‌टे पड़ जाते हैं, यहॉ से लेकर मॉ के साथ खुरपी हाथ में लिए घास खोदने वाले चौथी पीढ़ी के प्रतिनिधि तक मजदूरो के बहुत तरह के चित्र उकेरे है।

नागार्जुन किसी टीले पर बैठकर जन–आंदोलन के लिए लोगो को ललकारते नहीं है, न ही किसी साहित्य की कोठरी में बैठकर उस पर दो–चार बातें लिखते है। वे स्वयं आंदोलनो में शरीक होते है वे 'रात–दिन आठों पहर अपनी और अपने जनता की निगरानी में चौकसी करते थे। "यह गड़ासा उसी चौकसी का सबूत था।"[१] उन्होंने जय प्रकाश आंदोलन में भी भाग लिया और उसका तिरस्कार भी किया।

इस प्रकार जनजागरण की भावना आंचलिक उपन्यासों का जो कि आवश्यक तत्त्व है, नागार्जुन के सभी ऑचलिक उपन्यासों में दिखाई पड़ता है, चाहे वह 'बलचनमा' में बलचनमा हो या 'बाबा बटेसरनाथ' में दयानाथ। समूचे ऑचलिक उपन्यासें में इस तरह के पात्रों ने जन–भावना लोगो में, समाज में जगायी और यह ऑचलिक उपन्यासों में जरूरी भी होता है।

---

[१] बाबू राम गुप्त–उपन्यासकार नागार्जुन, श्यामप्रकाशन जयपुर पृ० ११०

भाषा शैली एवं उद्देश्य

लोकभाषा किसी विशेष अंचल का प्राण होता हैं। नागार्जुन के उपन्यास आंचलिक भाषा से युक्त हैं मैथिली शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ हैं। जैसे 'नयी पौध में सतमाय(सौतेली मॉ), टधार (पतलीधार), गादी (चौखट), 'रतिनाथ की चाची' में ओहार (पर्दा), पितियाइन(चाची), अंबियाँ (आम के टिकोरे), पोखर(तालाब), बाबू (पिता), अरिया समाज (आर्य समाज), बहिया(खबास), भिंड (भीट), तस्मई (खीर), पवित्री (अगूँठी), टेन (ट्रेन), उलैंच (बिछाने की चादर), मोहनमाला (सोने का कंठहार), देववाणी (संस्कृत), गंगौट (गंगा की मिट्टी), पंजा (ब्यौरेवार सूची) चिकनई (तेल), साहपसिन (शाहपसंद), कुत्ती(कुतिया), आदि शब्द है। 'बाबा बटेसरनाथ' में गरमजरूआ (गैर—आबाद), ऐपन (आलपना), ओजन (वजन), 'बलचनमा' में चारज (चार्ज), आदि शब्द है।

उदाहरण के रूप मे स्थानीय भाषा अगर देखे तो अदहन हो जाने पर चावल उसमें छोड दिया। उसी में चार—छः आलू चोखा के लिए डाल दिए। सुजनी डाल कर बीच आंगन में लेट रही"[१] " इसी तरह गोरैया का चूजा है यह। माँ अभी कल ही गोफन के ढेले का शिकार हो गई"[२]। "उस मंदिर का बाहरी गारा झड़ गया था। अन्दर का पलस्तर अभी कायम था"[३], बहुत दिनों से बरगद का एक विरवा खोज रहा था।

नागार्जुन का भाषा पर जबरदस्त अधिकार है। उन्होनें भावों की अभिव्यक्ति के लिए मुहावरो तथा कहावतों का आश्रय लिया है। दरभंगा में प्रचलित एक मुहावरा "चाची मुट्ठी बाँधकर खर्च करती तो उसके लिए सौ दो सौ रूपये बचा लेना आसान था"[४]। मुट्ठी बाँधकर खर्च करने का अर्थ है कृपणता से खर्च करना। एक अन्य

---

[१] नागार्जुनः रतिनाथ की चाची, पृ० २७
[२] नागार्जुन बाबा बटेसर नाथ पृ० १६
[३] नागार्जुन बाबा बटेसर नाथ पृ० २३
[४] नागार्जुनः रतिनाथ की चाची, पृ० १११

मुहावरा "बाबू कोयले की खान का हीरा है"[1]। कोयले की खान का हीरा का तात्पर्य है निष्कृटतम वस्तु में अत्यन्त सुन्दर होना। इनके अतिरिक्त कान पाथकर नाक काट ली, गांठ बाँधना, ऑखें तरेरना, गुस्सा घोट कै पींना, नजाकत की सोन छडी, गाल फुलाना, नाक में नकेल डालना, बैचैनियो का तूँफान उठाना आदि मुहावरें है।

स्थानीय भाषा का प्रयोग उनके शब्दों का प्रयोग आंचलिकता का प्रतीक हैं और अगर आंचलिक उपन्यास की विशिष्टता कायम रखना है तो इनका प्रयोग अति आवश्यक होता है। इनके बगैर उनमें विशिष्टता का अभाव हो जाता है। प्रायः आंचलिक उपन्यासों में ग्रामीण जीवन के चित्रण में ग्रामीण बोली भाषा का ही प्रयोग होता है। यह आवश्यक भी है क्योंकि उपन्यासों में स्वाभाविकता लाने हेतु इनका प्रयोग होना चाहिए। पात्रों के अनुरूप ही भाषा प्रयोग पर जोर दिया जाता है। ऑचलिक उपन्यासों में जिन व्यक्तियों की चर्चा की जाती है उनकी भाषा साहित्यिक नही बल्कि बोल–चाल की भाषा होती है। और शुद्ध भाषा में वो रस, वो मिठास और वास्तविकता नहीं रहती, जो हमें साधारण बोलचाल की भाषा में प्राप्त होती हैं जैसे– "फूदन मिसिर की विधवा औरत' कहती है– तौल कर लाई हूँ साढ़े सात मन से कुछ जास्ती ही है। फिर भी मलिकाइन, आप तौलवा लीजिए।"[2] महेन बाबू के बाप सिकटेरियट में अफसर थे। आठ सौ रूपैया महीना पाते थे...... महेन बाबू मुझे अपना चाकर बनाकर रखे हुए थे।"[3] " नाहक ही उस बेचारी को तुम तरकुलवा में छोड़ आये हो! मुझे क्यो नही कहा?"[4] आंचलिक उपन्यासों में जिस तरह की प्रादेशिक भाषा का प्रयोग मिलता है उसका रूपान्तरण दूसरी भाषा में करना दुष्कर होता है। कहने का आशय है कि भाषा इस प्रकार की होनी चाहिए जो देश के सभी भागों में सरलता से समझी और जानी जा सकें। उत्तर प्रदेश की किसी ग्रामीण की ठेठ भाषा

---

[1] नागार्जुनः रतिनाथ की चाची, पृ० ७०
[2] नागार्जुनः बलचनमा, पृ० २७
[3] नागार्जुनः बलचनमा, पृ० ५३

[4] नागार्जुनः रतिनाथ की चाची, पृ० ७०

महाराष्ट्र में नहीं समझी जा सकती, क्योंकि हर प्रदेश की भाषा और बोली पृथक् होती है। लोक भाषा में तद्भव शब्दों को वरीयता दी जाती है बजाय तत्सम् शब्दों के डा० इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में– "भाषा शैली के क्षेत्र में यह तत्सम् दृष्टि के विरोध मे तद्भव दृष्टि की प्रतिक्रिया है"[1]। दृष्टि से तात्पर्य यहां जीवन दृष्टि से है।

नागार्जुन के उपन्यासों में हमें विविध शैलियों का वर्णन हुआ दिखाई पड़ता है। जैसे वर्णन विवरण आत्मोद्घाटन, स्वप्नकथन और नाटकीय शैली। 'बलचनमा' जैसे उपन्यासें में आत्मकथात्मक शैली(उत्तम पुरूष शैली) पद्धति अपनाई गयी है। बलचनमा अपनी और परिवार की कथा कहता है। जो शुरू में ही मिलता है। "चौदह बरस की उम्र में मेरा बाप मर गया। परिवार में मां दादी और छोटी बहन थी"।

आँचलिक उपन्यास किसी विशेष शैली से बँधा नही होता है। उसमें कोई भी शैली हो सकती है। वैसे सबसे अधिक सजीव और सफल शैली चित्रात्मक शैली हैं। इसमें उपन्यासकार एक फोटोग्राफर की तरह होता है, जो अंचल विशेष के सभी रूपों का बारी–बारी से पाठक के समक्ष एक दृश्य उपस्थित करता है। यद्यपि आंचलिकता विशेषकर यथार्थवादी पृष्ठिभूमि पर आधारित रहती है, पर कल्पना की बाहें वह नहीं छोड़ती है।"आंचलिक उपन्यास उस अंचल विशेष का एक एलवम होता है, जिसमें सारी घटनाएं इस प्रकार संयोजित की होती है। जिससे उस अंचल का एक पूर्ण चित्र उपन्यास के माध्यम से उपस्थित हो सके"।

आंचलिक उपन्यास में किसी विशेष वर्ग या जाति के लोगों की भाषा–शैली का चित्रण इस ढंग से होता है, जिससे अन्य भू–भाग या जाति विशेष के लोगो को वह पूरी तरह आकर्षित नहीं कर पाती है। "दोनों भोलंटियर बेखबर सोये पड़े थे, एक की नाक बज रही थी फों फर्र... फर्र.... फोफ्..."बाई बाह का सिरहाना बनाकर मैने आंख बन्द कर ली।"[2]

---

[1] डा० इन्द्रनाथ मदान : हिन्दी उपन्यास पहिचान और परख।

[2] नागार्जुनः बलचनमा, पृ० १७१

"इस्टेसन पर दिन की गाड़ी के वक्त दस–दस हज्जाम दाढ़ी बाल बनाने को तैयार बैठें रहते है। जॉति–पाँति किसी से नहीं पूछते हे।"[1]

इससे इन उपन्यासों को लोग नीरस समझने लगते है। इसमें आधुनिक काल के उपन्यासों की तरह रोमांस और तड़क भड़क नहीं होती है–"धत् चेडैल की–" छिटकर मैने अपने को उसकी बांहों से छुड़ा लिया। ऐसा लगता था कि उसकी भूंखी आंखे मुझे निगल जायेगी। उसने मुस्कराकर कहा –" कुत्ता से भी बदतर है तू जो चुमकारने– पुचकारने पर अगली दोनों टांगों के सहारे खड़ा होकर अपने सिनेही के सीने से सटने को बेताब हो जाता है"[2]। यहां झील सी आंखे नहीं है न ही प्रेम की सरसता या आंख मिचौली है। यहां तो हथेली से मुह बंद करके दूसरी ओर नायक थूकता है।... जैसा कि शारलेट बॉनट ने अपने आंचलिक उपन्यास शैली की प्रारंभिक पंक्तियों में कहा है–" पाठकगण यदि आप यह आशा करते है कि कोई रोमांस जैसे चीज आपको पढ़ने को मिलेगी तो आप भूल में है। अपनी आशाओं को नियंत्रित कीजिए। एक वास्तविक ठंडी और दृढ़ वस्तु आपके सामने आ रही है, एक दम रोमांस से हीन सोमवार की सुबह की तरह"। यही वह मनोंवृत्ति है जो सारे आंचलिक उपन्यास को प्रेरित करती हैं।

आंचलिक उपन्यास साहित्य में अंचलीय लोकभाषा ही लोक संस्कृति को प्रस्तुत करती है। "जिस अंचल की पृष्ठभूमि पर जो आंचलिक उपन्यास विरचित है, उसमें अंचल विशेष की लोक संस्कृति आयेगी ही। और लोक संस्कृति का प्रतिबिम्ब लोकभाषा के प्रयोग के अभाव में नही हो सकेगा। लोक संस्कृति में लोकगीत लोकोक्तियाँ लोकनृत्य, लोक कथाएं लोकअभिनय, लोक–नाट्य आदि आते है। लोकभाषा के प्रयोग के बिना इन्हे कौन कलाकार प्रस्तुत कर सकता है। इन

---

[1] नागार्जुनः रतिनाथ की चाची, पृ० ८३

[2] नागार्जुनः बलचनमा, पृ० ३१

उपादानों के सम्प्रेषण के लिए संस्कृतिनिष्ठ तथा परिष्कृत भाषा का प्रयोग किया भी तो ठीक ऐसे ही होगा जैसे किसी कृषक के मुंह से भाषा के पंडित की बात करना"।[१]

लोकभाषा जैसे– 'बबुआ बालचन'! 'इसके बाद जो बवंडर उठा उसने मेरी जिनगी के बहाव को ही मोड़ दिया।' घर पर कभी सरदी–खोखी होती तो चाह बनवा के पीता था। चीनी न हुआ तो गुड़ ही सही। दादी को एक बार खासी हुई जोर की तो मीठा के बदले नोन डालकर उसने चाह बनवाई"। "अच्छा मलिकाइन.. इतना कहकर चमाइन आंगन से... जरा देख तो लू बबूई को।"[२] "गुज्जी बिटिया खानदानी खबास की बुढिंया आज पानी भरने नही आयी"! अतएव अंचल विशेष के जन–जीवन को प्रतिपादित करने हेतु लोकभाषा का प्रयोग अनिवार्य है।

आंचलिक उपन्यासों में पात्रों की भाषा ही नही लेखक की अपनी भाषा शैली में भी जनपदीय भाषा के शब्दों का खुला प्रयोग होता है। यथा "बाकी औरतें रह रहकर उसकी ओर अजीब निगाहों से ताका करती"[३] "सुबुक आवाज, खानदानी राजपूत की जनाना"[४] यह सब स्थानीय रंगत को लाने के लिए किया जाता है। स्थानीय रंग को आंचलिकता का पर्याप रूप माना जाता है। अंचल विशेष की भाषा जब अपने उपन्यास में लेखक प्रयोग करता है तो उसके सामने उपन्यास की विशेष–सामग्री हेतु अनेक रूकावटें आती है, जिससे वह सामान्य भाषा के माध्यम से सब कुछ नही कह पाता है। कहने का आशय है कि यहां लेखक के बजाय अंचल बोलता है। इस अंचल विशेष की बोली की मधुरता शब्दों में साकार हो जाती है।

रेक्फ फाक्स ने कोवेट के चित्रण में लिखा है–" जब कोवेटे किसी देहात का जिनके मध्य वह जा रहा हो वर्णन करता है तो धरती के आकर तथा उसके रैयों की बनावट तक का चित्र आंखों का सामने मूर्त्त हो उठता है।"[५]

---

[१] विमल शंकर नागर हिन्दी के उपन्यास साहित्य का सामाजिक सांसकृतिक अनुशीलन, पृ० ७०
[२] नागार्जुनः रतिनाथ की चाची, पृ० २३
[३] नागार्जुनः रतिनाथ की चाची, पृ० ५
[४] नागार्जुनः उग्रतारा, पृ० १०
[५] रेक्फ फाक्सः नावेल एण्ड दी पीपल, पृ० १६४

इस प्रकार यथार्थ वादी चित्रण ही उपन्यासों की भाषा होती है। पात्रों के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग करने से उपन्यासों मे स्वाभाविकता एवं सजीवता आती है यथा बलचनाम (बालचन्द) स्त्री (रतिनाथ) "हाँ ठांडा माफिक सोचने से शाब काम शुमिश्ता से हो जायेगी। बाबूजी आप आ गिया शो(सो) अच्छा हुआ। न्यूठलड है न। हूै....." आगे हैः छेड़ आओं (छोड) हिआ आ जाओं हम डी० टी० एस० को फोन करता है। बिहान मिलिटरी आयेगा तब माब को लेसन देगा। हुइां (वहां) जास्ती देर मत ठरा(खड़ा) रहो रे बुड़बक (भोंदू) मिलिटरी शैल रीच.....हीअर अर्ली इन द मार्निग"।इसके अलावा नेपाली पात्र के मूंह से हिन्दी व्याकरण की भूले बड़ी स्वामाविक लगती है। पुलिंग स्त्रीलिंग के ज्ञान का अीाव इनकी भाषामें भे यथा पंडित लीलाधर कहते हैं ।" चेतन की चांदनी पर संशय का कुरा छा गया था। पुनः वे कहते है। "सृष्टि के फल है खिलाकर आत्मा को परितोष होगा।"[1]

बलचनामा की भाषा शैली में लोक प्रचलित तद्‌भव शब्दों का वर्णन है यथा– अच्छात टीसन जिनगी चारज परफेसरों सरम लाज धर गिरस्ती जमीन जजात, कैचा–कौड़ी कपड़ा लत्ता पले पजिल अपनी जिन्दगी में हड़ाही जंकसन का लाटफरिम देखा तो अकि हैरान हो गयी है। श्री बेचन के अनुसार आज दरभंगा की पढ़ी लिखी जनता भी ग्रिवर्सन बाजार को गिलेसन ही कहती है।"

बाबा बटेसर नाथ के कथन उनके हृदय की सात्विक वृत्तियों को व्यक्ति करते है" बैटा मै न तो भूत हू, न प्रेत। मै इस बरगद का मानव रूप हू जिस बनस्पतिराज की फलियों के बीज से मेंरी उत्पत्ति हुई उन्हे बन देखी ने पसन्न होकर यह बरान दिया था कि तुमीरी सन्ततियां मनुष्य के हृदय की बाते अनायास समझ लेगी और अपनी अच्छी के मुताबिक जब चाहे तब मनुष्य का रूप धारण कर सकेगी... "अंग्रेज सुपरिटेण्डेण्ट टूटी फूटी हिन्दी बोलता है माई गाड, इतने हठियार!

---

[1] नागार्जुनः दुखमोचन, पृ० ७०

डैम फूल हम सब जानता है! यह किया है हमको डोखा नेई दो..'' बुक–कुक (बक बक) कर्ता हैं शत–अप!'

कहने का आशय है कि नागार्जुन को विभिन्न पात्रों की भाषा का गहरा अध्ययन है। निम्न स्तरीय ग्रामीण से लकर उच्च्वर्गीय शिक्षित पात्रों की या कह सकते है कि खेत खलिहान से लेकर संसद भवन तक में प्रयुक्त होने वाली भाषा के अध्येता ये! ''कौन पात्र कब क्या कह सकता है, इसकी पकड़ उपन्यासकार नागार्जुन की बड़ी मजबूत है यह उनके जीवन मे प्राप्त गहने अनुभव की देन है। इस सफलनता के पीछे नागार्जुन की यायावरी भी है।

आंचलिक भाषा अपने कथा प्रवाह के सथा समक्ष आने वाले वातावरण के अनूकूल बन जाती है। इससे यह भाषा लेखक के अंचलीय जीवन से तादात्म्य स्थापित कर लेती है। आंचलिक भाषाकारों मे रूप विधायिनी क्षमाता होती है। इन उपन्यासोंमें ध्वनि ख्त्रिण की प्रधानता होने से अंचल से समस्त उपकरण साकार हो उठते है। यथा तकली की आवाज कर्रि किर्र कि र्र र्र र्र र्र।[१] झींगरूं की आवाज–क्री ई ई ई ई ई...'' परिन्दों को रखावाले बागों के अन्दर बार–बार ललकार रहे थे– हा हा ही हो हुई हुई और ले ले ले लेले...... ल ल ल ल, [२] चुहिया की आवज चुह–चुह चुह चुह चूच्चू ह चू भेंलटियारों नेयोरों को देखकर आवाज दी ''चोर–चोर'' चो।,। ओ ओ ओ ओ......'' और ''' दौड़ों । । । । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ और पंखी चलने की आवाज किर्र किर्र.... खिर्र किरिर, किरिर .....।

इस प्रकार आंचलिक उान्यासक का अनगढ़ सौन्दर्य उनकी विशिष्ट अभिव्यंजन शैली को प्रतिपादित करते है। नागार्जुन ने शब्दों से उसी ध्वनि का ठीक ठीक बोध कराते है।

उद्देश्य

---

[१] नागार्जुनः रतिनाथ की चाची, पृ० ७

आंचलिक उपन्यासों में अचल विशेष की भौगोलिक सामाजिक और सांस्कृतिक विशेषताओं का चित्रण करना आंचलिक उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य हैं। यही कारण है कि उपन्यासकार उस अंचल विशेष की भौगोलिक विशेषताओं के साथ साथ वहां के जनजीवन का यर्थार्थपूर्ण चित्रण अपनी रचनाओं में करता है। जैसे प्रेमचंद के उपन्यासों का सबसे प्रमुख और महत्वपूर्ण उद्देश्य है, धर्मभीरूता, अज्ञानता, आर्थिक विपन्नता आदि। जिनके कारण ग्राम जीवन की विशेषकर किसानों का जिनका सामाजिक और नैतिकरूप से शोषण होता है उनके विरूद्ध आवाज उठाकार जनमत तैयार करना है।प्रेमचन्द के उपन्यास ग्रामीण परिवेश में चित्रित होने पर भी पूर्णतया आंचलिक नहीं कहा जा सकता हैं। आंचलिक उपन्यास का आदर्श किसी व्यक्ति चरित्र का निरूपण नही इसमें जन जीवन का निष्पक्ष चित्रण होता है। यदि आंचलिक का हम सांस्कृतिक दृष्टि से आवलोकन करें तो हमें ज्ञात होता है कि इन उपन्यासों का सबसे बड़ा उद्देश्य हमारे देश के विभिन्न आंचलों की विलुप्त होती है। सांस्कृतिक चेतना की सुरक्षा करना है।

आज के युग में आर्थिक सम्बन्धी उत्पादन के साधनों आवागमन के साधनों का तेजी से विकसित होने नदियों पहाड़ो और भाषाओं आदि की सीमाएं टूटने के फलस्वरूप समाज में तेजी से परिवर्तन हो रहे है। ऐसे समय में प्राचीन परम्पराओ और सांस्कृतिक मान्यताओं की राक्षा का प्रश्न और गम्भीरता के साथ युग के सामने उपस्थिति हो गया है और आंचलिक उपन्यास ही इस मांग की पूर्ति में सहयोगी है। नागार्जुन के आंचलिक उपन्यासो का यही उद्देश्य भी है क्योंकि इनके उपन्यास जन जीवन के अंतरंग स्वरूप का निरीक्षण करके उसकों सहृदयता के साथ अंकित करते है।

बलचनमा में भारत की पीड़ित गरीब और शोषित जनता की भावनाओं को

---

[१] नागार्जुन- बाबा बटेसरनाथ, पृ० ११०

वांणी को संगठित किया है। और अपनी ताकत से ही अपना हक पा सकता है। आपकी ताकत क्या है।? एका है। आपकी ताकत् संगठन! कमाने वाला खयेगा— इसके चलते जो कुछ हो।। इन्किलाब... नाश हो।"[1]

जमीन किसी... जोते बोए उसकी। अंग्रेजी राज.....नाश हो। जमीदारी प्रथा.... नाश हो। उसका उद्‌देश्य किसानों मजदूरों को संगठित करने और संघर्ष के लिए आह्वान करने का रहा है। जमीदारों से लोहा लेने के लिए वह उन्हें निडर बने रहने का संदेश देना चाहता है।

यद्यपि बलचनामा एक यर्थाथवादी उपन्यास है। और यथार्थवादी साहित्य की सबसे बडी विशेषता यही है कि वह समाज के मूल में सक्रिय क्रांतिकारी शक्तियों को पहचान कर और उनके द्वारा बढ़ते हुए आन्दोलन का उल्लेख कर पूंजीवाद को पहचान कर पूजीवाद के नाश और निम्नवर्ग क़ी विजय मे पूरी आस्था व्यक्त करें जिससे निराशा तथा जीवन के दाँव हारे निम्न स्तर के लोगों में आशा का संचार हो, और वे अपने को इस योग्य बना सके, कि समाज की विषम परिस्थितियों से बीरता के साथ संघर्ष कर सके।[2] यही कारण है कि नागार्जुन को उनकी गरीबी औरा शोषण से गहरी सहानुभूति रही है। कृषकों में आशा का संचार करना और उन्हो अपनी संगठित शक्ति से परिचित कराना लेखक का ध्येय रहा है।

शर्मा जी समझाते हूुए कहते है— जमीदार बड़ा प्रपंची बड़ा जालिम होता है।[3] अउअल तो पहले वह तुम्हारे अन्दर आपस ही में फूट डालने की कोशिश करता होगा। यहां नागार्जुन कृषकों को क्रांति के लिए तैयार करते है और शोषकों की स्थितियों को बारीकी से बताते है। बलचनाम को सामने रचखकर नागार्जुन भारत के कृषक को वैसा ही प्रगतिशील परिश्रमी साहसी अन्याय के आगे सिर न झुकाने वाला

---

[1] नागार्जुनः बलचनमा, पृ० १५२

[2] डा० त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थ वाद, पृ० ३३

[3] डा० प्रकाश चन्द्र भट्‌ट— नागार्जुन जीवन और साहित्य, पृ० १७८

चरित्रवान और सरल हृदय कृषक बनने की प्रेरणा देना चाहता है। नागार्जुन का दूसरा उद्देश्य उस अंचल की बोली बानी खान–पान, रीति–रिवाज, परिवेश संस्कृति, लोकगीत इत्यादि का परिचय देना भी है। यहां लेखक का लक्ष्य कृषकों की दुखती रंग को सूक्ष्म दृष्टि से पहचान कर जमींदार के शोषण, अत्याचारों अमानवीयता दुराचार आदि का सफल चित्रण करना रहा है। यदि प्रकाश चंद्र के शब्दों में कहें तो नागार्जुन का एक मात्र उद्देश्य रहा है। "उठो अपनें को पहचानों और विरोधी परिस्थितियों को परिवर्तित कर नया समाज बनाओ।"

बाबा बटेसरनाथ में वटवृक्ष जैसा एक चरित्र उपस्थित कर उसके मुख से मजदूरों के शोषण का उल्लेख कराकर वर्तमान वर्ग वैषम्य से जोड़ना है। इस उपन्यास मे भी मजदूर संगठन का मंत्र दिया है। लेखक का उद्देश्य पीड़ित गरीब और शोषित जनता का समर्थन करना उसे जाग्रत करना एवं संघर्ष के लिए प्रेरित करना रहा है। नागार्जुन जानते थे कि श्रमिक वर्ग की संगठित शक्ति के बिना वर्ग विहीन समाज की स्थापना संभव नहीं है। आजादी नेताओं औ उच्चवर्गीय लोगों तक ही आकर रूक गयी है, उसे जन जन तक पहुचाने के सारे मजदर किसार और गीब जनता को संघर्ष के लिए कटिबद्ध होना होगा। क्योंकि गांधीजी की अहिंसा " अब तो बेचारी को खुद ही कांग्रसे वालों ने विनोवा के अनाथालय में भेज दिया है।'

बाबाबटेसर नाथ उपन्यास में अगर सूक्ष्म दृष्टि से नजर डाली जाय तो वह राजनीतिक विचारों के प्रसारण का उद्देश्य है। साथ साथ अंचल की शोषित जनता को प्रकट करना तथा वहाँ की उपज, प्राकृतिक सौन्दर्य परिवेश पक्षीगण धार्मिक अंधविश्वास अंचल के बदलते राजनीतिक दृष्टिकोण आदि का परिचय देना भी रहा है। वरगद ही एक सेटेलाइट था जो कई पीढ़ियों की नेटवर्किंग कर प्रसारण अपने वाणी से कर रहा था।

दुखमोचन मे आदर्शोन्मुख यर्थाथवाद की स्थापना मुख्य उद्देश्य है। इसमें दुखमोचन के माध्यम से एक आदर्शवादी नेता की पहचान स्थापित की गयी है। जिसने जनसेवा का एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया जो चिरकाल तक हमारे नेताओं को प्रेरणा देता रहेगा, उनका मार्ग प्रशस्त करता रहेगा और उन्हें स्वार्थान्धता से बचाता रहेगा। नागार्जुन यहॉ भी अपने को निम्न वर्ग के प्रति प्रेम से अलग नहीं कर पाते है। उनका लक्ष्य इन्हे ईमानदारी और परिश्रमी सिद्ध करना रहा है। वृद्ध बोधू चाचा से ध्वजोत्तोलन कराकर उन्होंने अपने मंतव्य को स्पष्ट किया है झण्डा वन्दन उद्घाटन आदि पर विधायकों मंत्रियों और अन्य उच्चवर्गीय नेताओं का ही एकाधिकार नहीं है। वे यह भी उद्देश्य में रखे है कि अधिकारी वर्ग अक्षम है उनकी सहायता के भरोसे न बैठे ।

डा० सुरेश सिन्हा को दुखमोचन उपन्यास में साम्यवादी विचारों का प्रसारण दिखायी देता है। जबकि डा० वेचन के अनुसार इस उपन्यास की रचना संभवतः आज सरकार की ओर से हो रहे निमार्ण सम्बन्धी प्रचार कार्यो के लिए की गयी है।[1] अगर देखा जाय तो डा० ब्रज मोहन गुप्त ने इनके सही उद्देश्य को पकड़ा है।" प्रस्तुत उपन्यास में एक ग्राम के नवनिमार्ण की कहानी कही भावना और विश्वास के नव निर्माण की कहानी कहना लेखक का लक्ष्य रहा है।"[2]

वरूण के बेटे में समाज के अभावग्रस्त लोगों के जीवन को उभारने निर्धन मछुआ समाज को अपने अधिकारों के प्रति सतर्क रहने और संघर्ष से न घबराने के उद्देश्य है। इस उपन्यास में समाजवादी यथार्थवादी के माध्यम से निम्नवर्गीयस शोषित जनता के संघर्ष को उभारा गया है। देश का कल्याण वर्ग विहीन समाज की रचना करने से ही होगा। यह तथी सीाव है जब गरीब वर्ग झंडै के नीचे संगठित होकर उच्च वर्ग से लोहा लेगा वनिस्पत विभाजित होने के। "यह पानी सदा से

---

[1] डा० बेचन : नया पथ, अप्रैल १९५८ पृ० १६६

[2] डा० ब्रजमोहन गुप्त : आलोचना त्रैमासिक, अप्रैल १९५८ पृ० १६६

हमारा है, किसी भी हालत में हभ इसे छोड नही सकते, पानी और माटी न कभी बिके हैं न बिकेंगे।" यह उद्देश्य का प्रकटीकरण ही है।

कहने का आशय है कि 'निम्नवर्गीय जनता की भीड अपने अधिकारों के प्रति उसकी सतर्कता और उसका ताकतवर शक्तियों के सम्मुख न झुकना आदि लिखित करना लेखक का उद्देश्य रहा है।"[1] ग्रामोन्नति भी भी लेखक के लक्ष्यों में एक रहा है, शासकीय अधिकारियों का लालफीताशाही से परम्परागत परम आंतिरकि स्नेह आक्षमता और भ्रष्टाचार चित्रित करना भी उद्देश्य था। भ्रष्ट जनप्रतिनिधियों का जीक्त चित्रण भी मिलता है। व अर्थात् कांग्रेसी नेता मजदूरी देने के समय लुप्त हो जाते है, चुनाव में धनबल, बाहुबल का प्रयोग करते है, इस संगठन द्वारा "ईमानदारी जन सेवा और एकता " शब्दों की अपने हित में झाली गयी परिभाषाओं का परिचय देना भ मन्तव्य रहा हैं यही नही आंचलिक सौदर्य का परिचय जिसमें अपने देश कोस की माटी–पानी ताल–पोखर हरे–भरे खेत छतनार आम दुधियॉ चांदनी चमकीली मछलियां मडुआ की रोटी आदि विशेषताएं कथाकार ने चित्रित किया है। नई पौध में लेखक का मुख्य उद्देश्य अनमेल–विवाह की समस्या उठाकर नई पीढ़ी से उसका समाधान दिलाना रहा है।

नयी पौध जैसा नाम से स्पष्ट है। नये पौधे अर्थात् देश की नई फसल (नई पीढ़ी) इसी शक्ति को नागार्जुन ने पहचाना और उसका उपयोग भी किया। इन नई पीढ़ी के युवकों को प्रारंभ से ही अन्याय का प्रतिकार करते हुए दिखाया गया है इसीलिए बमपार्टी के युवक बूढ़े दुल्हे को भगाकर नवयुवक वाचस्पति से विवाह कराते हैं

नागार्जुन यहा मिथिलांचल की विशेषताओं का प्रकटीकरण करते हुए वहां की व्याप्त रूढ़ियों और परम्पराओं की मखौल उड़कर उन्हे बेअसरकरते है। वे गावों के

[1] डा० बेचन सिह– आधुनिक हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास, पृ० २००

तरुणें में भी नवीन चेतना प्रस्फुटित हो रहा हैं इसका भी संकेत देते हे। नागार्जुन की प्रगतिशील विचारधारा भी साथ–साथ चलती है। जो नवयुवकों के सहज युवकोचित व्यवहारा का बडे आदर और सहानुभूति की दृष्टि से देखते है "उन्होने युवक वर्ग के हृदय में उठते हुए उफान को समझा है तथा क्रांति और विद्रोह की इस भावना को सही दिशा दी है।"

आज के युग में कौन सी परम्परा हमारे समाज के लिए लाभकारी है, कौन सी रूढि बन चुकी है साथ ही साथ उसको किस ढंग से प्रयोग मे लाना चाहिए और उसमें कितना परिर्वतन जरूरी है, ये सारे प्रश्न एक आंचलिक उपन्यासकार के समक्ष रहते हैं। इन सब परिस्थितियों को अपने उपन्यास के विषय का आलम्बन बनाकर प्रस्तुत करना आंचलिक उपन्यासकार होते हुए मानव मूल्यों को दर्शाया है।

डा० बेचन के अनुसार" इन सभी उपन्यासों में विभिन्न वर्गो के बीच निरंतर चलने वाले आर्थिक सामाजिक संघर्ष को चित्रित करना तथा नवीन सामाजिक संदर्भ मे उभरते हुए नए मानव को प्रतिष्ठित करना ही लेखकर का प्रधान उदेश्य है।"[१]

[१] डा० प्रकाश चन्द्र भट्ट– नागार्जुन जीवन और साहित्य, पृ० १७८

नागार्जुन के उपन्यासों में व्यापकता के तत्व

नागार्जुन के उपन्यासों में आँचलिकता ही नहीं व्यापकता भी है। क्योंकि 'नागार्जुन नें अपने उपन्यास में इस तथ्य को सामने रखकर नहीं लिखे हैं कि उन्हे आँचलिक उपन्यासों का सृजन करना है।"[1] नागार्जुन एक जुट होकर हमें यह करना है कि सामूहिक चेतना को अपने उपन्यासों में उभार कर चले हैं। वे सम्पूर्ण जनता के हृदय–परिर्वतन में आस्था रखते हैं। इनके उपन्यासों में उद्‌देश्य गौण एवं प्रभावहीन नहीं हो पाते। लोक संस्कृति को प्रधानता भी नहीं देते वरन् वह उद्‌देश्य के पीछे केवल सहारा देने का कार्य करती है।

नागार्जुन के हिन्दी के कुल दस उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। यथा– 'रतिनाथ की चाची' 'बलचनमा'. 'बाबाबटेसरनाथ', 'दुखमोचन', 'वरुण के बेटे', 'नई पौध', 'कुम्भीपाक', 'हीरक–जयन्ती', 'उग्रतारा' और 'इमरतिया'। प्रारम्भ के छः उपन्यासों को आँचलिकता की कोटि में रखा जाता है। और बाद के चार उपन्यास व्यापक फलक लिये हुए हैं। जिन्हे हम व्यापकता की कोटि में रख सकते हैं। क्योंकि हम देखते हैं कि 'प्रथम छः आँचलिक उपन्यासों के बाद आँचलिकता की यह धारा क्षीण हुई है और आगे लुप्त प्राय हो गयी है।"[2] प्रारंभ के छः उपन्यासों में जहाँ समस्या भी आँचलिक है, वहीं बाद के चारों उपन्यासों में समस्या व्यापक है। वह किसी अँचल या गॉव की नहीं वरन् सम्पूर्ण देश की है। 'कुम्भीपाक', इमरतिया' 'उग्रतारा', 'हीरक जयन्ती' सामाजिक उपन्यास हैं। इनमें क्रमशः वेश्या समस्या, व्यभिचार बलात्कार के बाद नारी को उचित स्तर दिलाने की समस्या, भ्रष्ट नेताओं और अंत में पाखंडी साधुओं के अनाचारों का चित्रण है।

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में समाज के विभिन्न वर्गों की आर्थिक विषमता का चित्रण कर समाज–कल्याण के लिए समाजवादी आर्थिक व्यवस्था को श्रेयस्कर माना है।

---

[1] नागार्जुन सुरेश त्यागी, पृ० १६४

[2] प्रकाश चन्द्र भट्ट– नागार्जुन जीवन और जीवन साहित्य, पृ० १६५

युग–विशेष का सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन परस्पर घनिष्ठ रूप से संबद्ध होता है। समाज के इन विभिन्न पार्श्वो को अभिव्यक्ति प्रदान करके ही कोई साहित्यकार अपने युग का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ होता है। नागार्जुन ने अपने कथा–साहित्य में अपने युग के न केवल सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक जीवन को अभिव्यक्ति प्रदान की है, वरन् आर्थिक जीवन और उससे संबद्ध समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है।

नागार्जुन के उपन्यासों में व्यापक तत्वों का वर्णन है। जिनमें आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तत्वों का क्रमवार विश्लेषण करते है।

आर्थिक तत्व

नागार्जुन का जनजीवन से गहरा लगाव है। यही लगाव उनके उपन्यासों में मित्र–पत्नी, किसान, मजदूर छात्र सबके साथ एक आत्मीय स्वर विकसित करता हुआ दिखाई पड़ता है।

कृषि सम्बन्धी मान्यताएँ

नागार्जुन ग्रामीण अर्थव्यवस्था का गहराई से निरीक्षण किया है। उन्होनें अपनी औपन्यासिक कृतियों में भारतीय कृषक की आर्थिक दशा का विशद यर्थाथ चित्र अंकित करते हुए उनकी मान्यताओं और व्यवस्थाओं पर प्रकाश डालते हैं। उन्हे लोक–जीवन और खेती–बारी का अच्छा ज्ञान है, इस दिशा में सूक्ष्म दृष्टिकोण का परिचय एक एक पृष्ठ से मिलता है– "बैल बस दो थे। तन्दरूस्त और नाटे कद के। सूरत उनकी सांवलिया थी। हल खींचने में दोनो बहादुर थे। जिन खेतों में धान उपजते है, बैसाख जेठ की पहली जुताई के समय उनकी मिट्टी बेहद कड़ी होती है। जवान हलवाहा हो मजबूत बैल हो, तेज और नुककीली धार हो, तो वे खेत जोते जा सकते हैं। क्वार–कार्तिक या माघ फागुन में हल्की झरझरी मिट्टी वाले खेतों में बूढ़े बैल भी हल

खींच ले जाते है। ये मामूली नहीं परगना–बछौर के तेज, तर्रार बैल थे। पांच सौ पचास रूपये गिनकर सीतामढी के मवेश घाट से दुःख मोचन और वेणीमाधव इन्हे लाये थे।[1]

इसी तरह बलचनमा के भी दृश्य हैं– "मुट्टी पुआल खाते–खाते बेचारे की भूख भोथी पड़ गयी थी... आंखों में कीचड़, कनपटियों के पास नीचे की ओर आंसू के निशान! हाड़ पांजर चर रोएंदार चमड़ी मठ के किसी नाराज देवता ने मानो इस जीव को बीमार बैल की बेडौल और बदसूरत सकल दे दी हो।[2]

बेइमानी

दुखमोचन उपन्यास का पात्र दुखमोचन कहता है; " दुनिया समझती है कि गांव वाले बडे भोले–भाले और शराफत के पुतले होते हैं, लेकिन यहां आकर देख जाये कोई.. .कौन सी बदमाशी छूटी है गांववालों से। लोभ–लालच, छल–प्रपंच, झूठ, बेइमानी ठगी और विश्वासघात...वह कौन सा अवगुन है, जो यहां नहीं है"।[3] 'इमरतिया' उपन्यास में लक्ष्मी के बच्चे की महाष्टमी के दिन बलि दे दी जाती है। जब यह मठवालों को यह समाचार मिलता है कि 'भरतपुरा का थानेदार तहकीकात के लिए जमनियां पहुँचने वाला है........अन्त में यह हुआ कि भगौती खुद ही गौरी को साथ लेकर थानेदार की सेवा में पहुॅच जाए।[4]

यहॉ भी थानेदार को खुश करने के लिए गौरी का इस्तेमाल किया गया। गौरी उसको संतुष्ट करती है। परिणाम स्वरूप भरतपुरा की पुलिस के रेकार्ड में जो चाहते थे वहीं दर्ज हुआ...। "पूजा की आठवी रात में जाने किधर से एक पगली आई। उसकी गोंद में छै महीने का बच्चा था। पुजारी की नजर बचाकर उसने बच्चे को हवन कुण्ड मे डाल दिया। कोशिशें तो काफी की गई, लेकिन बच्चे को बचाया नहीं जा सका। बाबा

---

[1] नागार्जुन – दुखमोचन, पृ० १३
[2] नागार्जुन – बलचनमा, पृ० १५६
[3] नागार्जुन – दुखमोचन, पृ० १४
[4] नागार्जुन – जमनिया के बाबा, पृ० ८८

की बड़ी ख्वाहिश थी की पगली को थाने तक पहुँचा दिया जाय, लेकिन अगले दिन ही वह गायब हो गई। अब कुछ गुडों नें उल्टी बातें फैला दी हैं। सरकार बहादुर से अर्ज है कि वह जमनिया मठ के सन्त शिरोमणि 'बाबाजी महाराज' की प्रतिष्ठा और इज्जत को ध्यान में रखें, साथ ही थानेदार साहब उन गुण्डों पर कड़ी निगरानी रखें, जिनकी नियत साफ नहीं और जमनिया मठ की जायदाद को नुकसान पहुँचाना चाहते हैं...।"[१]

बेरोजगारी

बेरोजगारी का स्पष्ट उदाहरण 'वरूण के बेटे' उपन्यास में मिलता है, मलाही गोढ़ियारी में ले देकर गरोखर था। जिसमें लोग अपना भरण–पोषण करते थे। जब उस पर भी आँच आने लगी तो टुन्नी कोसी योजना में काम के लिए चला जाता है। वहाँ उसके अनुभवों को सुनें और देखें तो आज की सरकारी भ्रष्ट–व्यवस्था का कच्चा चिट्ठा सामाने आ जाता है। भूखा परछी की पोटली बाँध मजदूरी को निकला टुन्नी अपने कपड़े उतरवाकर लौटता है। यह रोजी रोटी की खोज कितना द्रवित और पीड़ा जनक सिद्ध हुई जैसा कि स्वयं व्यथित होकर कहता है– "मिट्टी काटते, ढोते बारह दिन बीत गए छः दाम का भी दरसन नहीं हुआ। उधार खाते, चावल दाल नमक, हल्दी, मिर्च, ईंधन देनेवाला दुकानदार भला क्यों छोड़ने लगा। कुदाल रख ली, टोकर रख लिया, धोती एक उतरवा ली। कमर से अंगोछा लपेटे दो दिन, दो रात भूखा मैं घर लौट आया हूँ। . ..इतना कहकर टुन्नी ने दो सांस ली और धरती पकड़कर दोनो कान छुए।"[२] टुन्नी की यह कथा ग्राम जीवन की आर्थिक विषमता का परिचायक है जिसके कारण अनेक ग्रामीणों को रोजी–रोटी के लिए घर छोड़ना पड़ता है। और अनेक परेशानियों से रूबरू होना पड़ता है।

---

[१] नागार्जुन – जमनिया के बाबा, पृ० ८६।
[२] नागार्जुन – बरूण के बेटे, पृ० २६०।

टुन्नी की यह व्यथा–कथा शहरों में बसे उन तमाम ग्रामीण–अंचल के बाशिन्दों की कथा है। गाँव रोजगार की तलाश में छूट रहे हैं। यह टुन्नी नहीं अपितु उन भारत की सत्तर प्रतिशत आबादी भी बोल रही है। जो बेरोजगार है।

यह कथन सरकारी व्यवस्था पर तो करारा तमाचा मारता ही है साथ ही साथ ग्राम–जीवन की उन स्थितियों की ओर संकेत भी करता है; जिसके कारण टुन्नी जैसे मेहनत कश लोगों को गांव छोड़ने पर अनेक यातनाओं से साक्षात्कार कराता है।

सामंतवाद

सामंतवाद में 'सामंत' शब्द का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'स्वतंत्र पडोसी' के अर्थ में किया गया है। "सर्वप्रथम अश्वघोष (प्रथम शती) 'बुद्ध–चरित' में इस शब्द का प्रयोग जागीरदार के लिए किया है।"[1] इस प्रकार इसका कुषाण–काल में बीज बपन हुआ जो राजपूत काल तक आते–आते यह पूंर्ण पल्लवित और पुष्पित हो चुका था। बी० एन० एस० यादव के शब्दों में "शक–कुषाण युग में हमे सामन्तवाद के न केवल राजनीतिक अपितु सामाजिक तथा आर्थिक कारण भी स्पष्ट रूप से देखने को मिलते हैं।"[2]

भारत में सामन्तवाद को विकसित होने के लिए आवश्यक खाद–पानी मुहैया मिला यह राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर खड़ा हुआ। बाह्य आक्रमणों के कारण केन्द्रीय सत्ता निर्बल पड़ गई तथा चतुर्दिक अराजकता एवं अव्यवस्था फैल गयी। केन्द्रीय शक्ति की निर्बलता नें समाज में प्रभावशाली व्यक्तियों का एक ऐसा वर्ग तैयार किया, जिन पर स्थाई सुरक्षा का भार आ पड़ा। अव्यवस्था के युग में सामान्य जन अपनी जान–माल की सुरक्षा के लिए उनकी ओर उन्मुख हुआ।

---

[1] के० सी० श्रीवास्तव– प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ० ६३०।

[2] बी० एन० एस० यादव– सोसायटी एण्ड कल्चर इन नादर्न इण्डिया, पृ० १३६।

इस प्रकार भूमि तथा कृषि के प्रति इस परिवर्तित दृष्टिकोण के फलस्वरूप विभिन्न वर्णों के लोगों ने अधिकाधिक भूमि प्राप्त करने का प्रयास किया। इस प्रकार समाज में भू–सम्पन्न कुलीन वर्ग का आविर्भाव हुआ। बहुसंख्यक शूद्र तथा श्रमिक जीविका के लिए उनकी ओर उन्मुख हो गये। भू–स्वामियो को अपने खेतो पर काम करने के लिए श्रमिकों की आवश्यकता थी, अतः उन्होनें उनका अधिकाधिक उपयोग किया। 'बलचनमा' उपन्यास में सामंतवादी व्यवस्था का सजीव आकलन हैं, और बलचनमा के माध्यम से खेतिहर मजदूर का प्रतिनिधित्व उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। सामंती जीवन शैली का निरूपण करते हुए लेखक ने उस अंचल की कट्टर जातीयता, वर्ण–अहं, कुलाभिमान, उच्चकोटि की दरिद्रता और अकर्मण्यता आदि का वर्णन किया है। कमाने वाले भूखे थे, और न कमाने वाले खुशहाल।"[1] इसी तरह का जूगल कामत केवट, जो मजदूरी बनिहारी करके निरवाह करता था। अकाल–विकाल बेर–कुबेर रात–बिरात समय–कुसमय जब भी जरूरत पड़ती, मलिकाइन कामत को बुलवा लेती। कर्ज और गुलामी में सिर से पैर तक डूबा हुआ यह आदमी मलेरिया की हड्डी तोड़ बीमारी में गल–पचकर जब मरा तभी छुटकारा पा सका।"[2]

प्रेमचंद ने भी अपने कथा–साहित्य में इसी तरह के अनुभव को वाणी दी है। नागार्जुन की दुनिया भी बहुत कुछ बदली नहीं है। सिर्फ किसान और मेहनत–मजदूरी करने वाली जनता संगठित होकर अपने–अधिकारों की लड़ाई लड़ रही है। तब भी सामाजिक रीति–रिवाजो परम्पराओं रूढ़ियों अंधविश्वासों व पाखण्डपूर्ण प्रसंगों से उसे अभी अलग होना है। कुलीनता के साथ–साथ आर्थिक समृद्धि भी अत्यावश्यक है। अब कुलीनता ही काफी नहीं है। नागार्जुन ने मिथिला की उस विलक्षण विवाह शैली का वर्णन भी किया है जिसमें हजारो विद्यार्थी इकट्ठे होते है। कन्याओं की तरह से उनके अभिभावक बड़ी तादाद में जमा रहते हैं। लेखक यहां स्वयं कहता है– सभा में यदि

---

[1] नागार्जुन– बलचनमा, पृ० २१

[2] नागार्जुन– बलचनमा, पृ० २१

कन्यायें भी शामिल होतीं तो स्वयंवर का यह विराट पर्व न केवल भारत भर में परन्तु सम्पूर्ण विश्व में अद्वितीय कहलाता। तब सोनपुर के प्लेटफार्म और हरिहर क्षेत्र के मेले की तरह सौराठ की यह विवाह सभा भी मशहूर हो गयी रहतीं। यद्यपि अपनी मौजूदा स्थिति में भी ब्राह्मणाों का यह वैवाहिक मेंला अनुपम है।

"भयंकर सम्पन्नता और भीषण गरीबी मिथिलांचल ही क्यों समूचे उत्तर पूर्वी–बिहार की विशेषता है। सम्पन्नता का पता जमीदारों के महाभोजो से लगता है तो विपन्नता का अंदाज मछुआरों के जीवन को देखकर जिसका प्रतिनिधि खुरखुन है। जो पंचमेर मिठाई खाने के बाद भी दो दो सकोरा चाय ढकेल लेता है और गाली सुनकर दांत निकालकर खीं खीं हंसता रहता है। यही नहीं गरीबी का आलम यह था कि कि कच्चा पक्का जो भी मिले क्षुधा भरने के लिए काफी था–

"खुरखुन अन्दर आया तो जंभाइया लेती हुई पत्नी के पास बैठ गया। मछलियों के बारे में बताया और कहा– भूंख लगी है।

अब इस वक्त में तुम्हें क्या दूँ!

बच्चों के लिए कुछ रखा होगा न...? उनके लिए सुबह में फिर कुछ तैयार कर लेना... और नहीं तो चावल ही कच्चे–फच्चे पाव–आधा सेर निकालो, कांक–फूँक लूंगा मधुरी की अम्मां ! कड़ाके की भूख लगी है री।

पेट पर हाथ फेरकर गृहस्वामी अपनी विकराल क्षुधा की तरफ गृह लक्ष्मी का सारा का सारा ध्यान खींच लाया।"[1]

न पाँव में जूते, न बदन पर कपड़े। मिथिला की इस विपन्नता की प्रतिध्वनि उसके रोमांस–गीतों में भी सुनाई पड़ती है। ये गरीब लोग अपने जांगर–पूंजी पर ही ज़िन्दगी का सफर तैं करते आए है।

---

[1] नागार्जुन– बरूण के बेटे, पृ० २६८।

"जिनगी भेल पहा।।।ड़, उमिर भेल क।।।ल!

जुनि फेंकऽ आहे मोर दिलचन,

नेहिया पिरीतिया के जाााल!!

आवऽ आवऽ देखि जा हााााल!!

उमिर भेल कााााााााल!!!!"[1]

अंग्रेज शासकों ने भारतीय सांमतवाद को अपना विचौलिया या सहायक वर्ग बनाकर जिस कृत्रिम औद्योगीकरण की प्रक्रिया शुरू की उसकी आर्थिक बुनियाद उनके हितों के अनुरूप ढाली गयी थी। इसने पारम्परिक ग्रामीण संरचना व ग्रामीण जीवन पद्धति को आर्थिक स्तर पर तोड़ दिया। देहाती गरीब तबका बड़े पैमाने पर शहरों की ओर भागने लगा। गावों के परिवारों का टूटना और बिखरना शुरू हुआ। दूसरी ओर सामंती मूल्यों और विश्वासो तथा सामन्ती सम्बन्धों को बरकरार रखा गया। पारम्परिक जाति–व्यवस्था, वर्ण–पद्धति, छुआछूत धार्मिक–अंधविश्वासों और अमूर्त आस्थाओं को जनतांत्रिक चेतना का स्पर्श नहीं मिला पाया। क्यों? क्योंकि औद्योगीकरण की स्वाभाविक विकास प्रक्रिया सामंतवाद और सामंती संस्कारो तथा मूल्यों को समाप्त करती है। औपनिवेशिक शासन और साम्राज्यवादी पूजी के हितों की मंशा से बनाया गया कृत्रिम औद्योगिक ढाँचा सामन्ती सम्बन्धों को नष्ट नहीं करता । उन्हें बनाये रखता है। उनका अपने पक्ष में इस्तेमाल करता है।

सामन्ती संस्कारों और औपनिवेशिक हितों की दोहरी गिरफ्त में जकड़ी ग्रामीण चेतना के विभिन्न पक्ष 'बलचनमा', 'बटेसरनाथ', 'दुखमोचन' में दिखाई पड़ जाते है।

प्रेमचंद के बाद नागार्जुन ही ऐसे कथाकार हुए जिसे अपनें समाज की वर्गीय संरचना की गहरी जानकारी और उसकी तमाम पेचीदगियों की पूरी समझ थी। सामंती मनोभूमि पर टिके वर्ण–व्यवस्थागत संस्कारों को खत्म नही किया गया। बल्कि पूँजी और

---

[1] नागार्जुन– बरूण के बेटे, पृ० २७५।

धर्म के सहारे उन्हें और भी पुख्ता बनाया गया। भारतीय–किसान अपनी आर्थिक–विपन्नता के बावजूद वर्ण–व्यवस्था के संस्कारों से मुक्त नहीं हों पाया है।

बलचनमा तत्कालीन ग्रामीण चेतना के समस्त मनोभावों, संस्कारों, प्रवृत्तियों और मानसिकता का मूर्तिरूप है। अगर वह जूठन खाता है तो उसकी दादी भी जूठन की बाट जोहती हैं, जो मालिक लोगों के खा लेने पर जूठन बटोर कर ले आती हैं। परिवार के सभी उस जूठन को घेर कर बैठते हैं, सबको अपना–अपना हिस्सा मिलता। अपने बच्चों को ये सर्वहारा–वर्ग के लोग मालिक लोगों की, जूठन खिलाकर उनका फेरन–फारन पहनाकर पर्तपाल करते हैं, कभी अगर मरते हुए दादी की इच्छा पूरी करने के लिए मालिक के गढ़–पोखर से मछली मार लाते है तो मालकिन लोग आम की आधी जली चैली से पीठ दाग देती है। उनका बचपन न जाने कितने आँसूओं से सींचा गया होता है।

इस तबके का जो यर्थाथ व्यक्त हुआ है। उससे जाहिर है कि नागार्जुन को किसानों के वर्गीय चरित्र की पूरी समझ थी। वे सामंतवाद की एक–एक नस को पहचानते थे। बलचनमा का पूरा जीवन सामंती संस्कारों की जड़ता से ग्रस्त है। जमीदार, साहूकार, महाजन के शोषण तले और जाति मर्यादा के दुष्चक्र में पिसते–पिसते अंत में लाठी की मार खा कर गिरता है। जुर्माना, लगान, बेदखली, बहन की इज्जत ये सब उसके चश्मदीद गवाह हैं।

पूँजीवादी अर्थतंत्र के शोषण चक्र में टूटते–पिसते किसान की जिन्दगी के यथार्थ को नागार्जुन उजागर करते हैं। उनके उपन्यासों की यथार्थवादी दृष्टि साम्राज्यवादी और उसके दलाल भारतीय सामंत–वर्ग के शोषक–चरित्र का खुलासा करती हैं। उनकी नजर कृषक तबके पर है वह किसी एक खुरखुन का गढ़पोखर नहीं था, अपितु पूरे गांव की

विपत्ति थी उसका निकल जाना। तभी तो मोहन मांझी से कहलवाते है कि–"गरोखर का पानी नहीं वह तो हमारे शरीर का लहू है जिनगी का निचोड़ है"[१]

यह 'वरूण के बेटे' और 'दुखमोचन' की कहानी नहीं है। न ही किसी बलचनमा को शोषण का शिकार अकेले बनाया जाता है। यह तो सम्पूर्ण भारत की दुर्दशा है। जो उनके अपने अधिकारों को छीनने का प्रयास का था। जिसके लिए वे लाठी डंडा खाने से लेकर जेल जाने तक तैयार थे। उन्हे जीविकोपार्जन हेतु न दबाया जाय कि वे विस्फोट कर जाय अथवा क्रांति करने के लिए बाध्य हो जाये। नागार्जुन का शोषित वर्ग अब सामंतवादी जीवन जीने का आदी नही है। अब तक वह जीवन बहुत जीया। उसे अब यह पानी सदा से हमारा रहा है, किसी भी हालत में इसे छोड़ नही सकते।"[२] "लाश गिरे तो गिरे मगर अपने खेत दूसरो के दखल में नही जाने देगें"[३]

"कमाने वाला खायेगा, इसके चलते जो कुछ हो"[४] अधिकार की मांग और क्रांति करने के स्थिति हो गयी है। और वह लेकर रहेगा।

शोषण

सर्वहारा व्यक्ति का शोषण हर स्तर पर होता है। हर क्षेत्र में होता हैं। कभी उसे पंडे पुरोहित धर्म की आड़ में शोषण करते हैं, तो कभी महाजन लाठी की धौंस से शोषण करता है। शोषण के विभिन्न स्तर नागार्जुन के उपन्यासों में दिखलाई पड़ते हैं।

(क) जमींदार–वर्ग द्वारा शोषण

नागार्जुन के उपन्यासों में गाँवों में कृषक वर्ग के आर्थिक पिछड़ेपन का कारण जमींदारों एवं पूँजीपतियों द्वारा उनका आर्थिक–शोषण मिलता है। यह वर्ग किसानों का

---

[१] नागार्जुन– बरूण के बेटे, पृ० २८३।
[२] नागार्जुन– बरूण के बेटे, पृ० २८३।
[३] नागार्जुन : बलचनमा, पृ० १४६
[४] नागार्जुन :– रतिनाथ की चाची पृ० ८७

सदैव शोषण करता रहा है। धन के बल पर पूँजीपति–वर्ग द्वारा की जाने वाली मनमानी को श्रमिक वर्ग लाचार होकर स्वीकार करता है। समय–समय पर विवाह–त्यौहार एवं अन्य अवसरों पर जनता से लिए जाने वाले नजराने इस आर्थिक शोषण का अंग रहे है। यही नहीं १९३७ में विहार में बनने वाली कांग्रेस सरकार के मंत्रियों की भी यही स्थिति रहीं। कहने का आशय है कि ऊपर से नीचे तक शोषण का सिलसिला बराबर बना रहा। पूँजीपति वर्ग इतना प्रपंची है कि वह पैसे के बल पर कलक्टर, एस०डी०ओ० सभी सरकारी कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त कर शोषण की सतत् धारा को प्रवाहित करता रहा है। मंत्रियों को तो जमींदारों का सक्रिय सहयोग भी मिलता रहा है जैसा कि नागार्जुन 'रतिनाथ की चाची' में व्यक्त करते हैं।–

"मंत्रियों ने पीठ कर दी किसानों की ओर, मुंह कर दिया जमींदारों की ओर। दुनिया भर में बदनामी फैल गयीं कि विहार की कांग्रेस पर जमीदारो का असर है। जवाहरलाल तक ने खुल्लम–खुल्ला यह बात कही।"[1] यह एक ज्वलंत उदाहरण है। 'बलचनमा उपन्यास में बलचनामा तो स्वयं मुक्त भोगी है। उसके पिता को एक साधारण अपराध (बाग से किशुन भोग तोड़ने) के कारण जमीदार के पाशविक अत्याचारों का सामना करना पड़ता है।

"मालिक के दरवाजे पर मेरे बाप को एक खंभेली के सहारे कसकर बॉध दिया गया है जाँघ, चूतर, पीठ और बाँह–सभी पर बांस की हरी कैली के निशान उभर आये हैं। चोट से कहीं–कहीं खाल उधड़ गयी है– चेहरा काला पड़ गया है। होंठ सूख रहे हैं। अलग कुछ दूर पर छोटी चौकी पर यमराज की भाँति मँझले मालिक बैठे हुए हैं।"[2]

इस प्रकार नागार्जुन ने प्रारंभ से ही जमीदारों के नृशंस अत्याचारों एवं उनके द्वारा किये गये शोषण परक कार्यों का चित्रण किया है। बलचनमा के पिता बलचनमा पर

---

[1] नागार्जुन :– रतिनाथ की चाची
[2] नागार्जुन .– बलचनमा, पृ० ५

मार पड़ना, माँ का गिड़गिड़ाना, पुत्र और पुत्र का भयातुर होना, कितनी भयावह करने वाली स्थिति है। यही नहीं बलचनमा के मरने पर मंझला मालिक बलचनमा की मॉ को बारह रूपये कर्ज देकर देकर सादे कागज पर अंगूठे का निशान लगवा लेता है। पैसे देते–देते उनका सूद ही पूरा नहीं हो पाता, मूल तो ज्यों का त्यों बना ही रहता है। इतने से भी संतुष्ट नहीं होता है। इस प्रकार की शोषण परक हथकंडे जमींदारों के लिए आम बात है। 'बलचनमा' उपन्यास जमीदारों द्वारा कृषकों के शोषण की ज्वलंत दस्ता बेज है। यथा– "मालिकाइन का बलचनामा को अपने पुत्र को रुलाने के आरोप में गालियॉ देना। और घर देर से पहुंचने पर क्रोध बस झाड़ू से मारना[१] सड़ी हुई चजें खाने को देना, न खाने पर खना बंद करना"[२] मां को दिये गये बारह रूपये का सूद देते रहने पर भी मूल के बदले में बलचनमा की मां की चापलूसी करके उसकी जमीन आम के कलम लगाने तथा अपना खेत चौकोर करने के लिए बिना रसीद ले लेना[३] ये आम बात है। यही नही मालकिन की नौकरानी तक का उसे कोढ़िया कहकर पुकराना तथा व्यर्थ काम बताते रहना–

"बलचनमा दुकान जाकर देख तो आ कि नहाने का साबुन आया या नहीं। कभी कहती बखार के अन्दर घुसकर देख कि नेवले ने वहां अड्डा तो नहीं बनाया है। कभी उसका हुकुम यों होता बलुआ पाठक की हवेली के अन्दर जो बगिया है, उसमें मेंहदी के झाड़ू है, मलिकाइन के हाथ और पैर कई दिनों से सूने पड़े हैं। जा, मेंहदी के पत्ते ले आ।[४]

मालकिन का चढ़े दामों पर धान बेचना ब्राम्हणी और करीम बख्श को देते समय छोटे तथा लेते समय बड़े बाट से धान तोलना। रात भर मालिक द्वारा बलचनमा से शरीर रात भर मुझसे मुक्कियां लगवाते थे। पहर–भर मुक्कियां लगा–लगाकर मैं थक

---

[१] नागार्जुन :– बलचनमा, पृ०.६
[२] नागार्जुन :– बलचनमा, पृ०.१०
[३] नागार्जुन :– बलचनमा, पृ०.१६

जाता। अपने को भी ऊँघ आती और मुक्कियों की रफ्तार धीमी पड़ती तो गिरहथ सोते ही सोते टोक देते ऊंह और इस तरह मेरी ऊध को तोड़कर आप वह करवट बदल लेते।'' इसे तरह उसे सोने नहीं देते।

मृत्यु के समय दादी की इच्छा पूर्ति के लिए बलचनमा को मछली ले जाने पर नौकरानी सुखिया की शिकायत पर ''मालकिन नें आम की आधी जली चैली से पीठ दाग दी थी मेरी।'' और– 'मालिकान में कोई ऐसा नही था जो बिना गाली दिये मुझे सम्बोधित न करता है। बात–बात में साला। बात–बात में ससुर, पाजी और नमक हराम का तो कहना ही क्या।''[1]

इस जमीदारों के अत्याचार का ज्वलंत उदाहरण है जो एक बलचनमा ही नहीं अपितु बलचनमा सरीखे तमाम शोषित शोषण का शि:कार होते रहे। बलचनामा के पूर्वज सात पीढ़ियों से निरंतर जमींदारों के अन्याय का शिकार होते रहे हैं। समय–समय पर इन अत्याचारों में भी परिवर्तन होता गया है। बलचनमा के परदादा के परदादा के समय मनुष्यों को दास बनाकर दहेज में देने की प्रथा थी। बलचनमा कहता है– ''मेरे परदादा के परदादा को वहीं के एक जमीदार नें दहेज में दामाद के साथ कर दिया था। तब से लेकर यह सातवां पुरखा चल रहा है।[2]

जमीदार वर्ग न केवल उन पर जुल्म ढ़ाता है। अपितु उनकी इज्जत आबरू पर भी हाथ डालता है। उनकी असमत से भी खेलता है। बलचनमा की छोटी बहन रेबनी का हाथ पकड़ता है। असफल होने पर लालच देता है। अनेकानेक उपाय करता है। इज्जत लूटने हेतु– ''पगली कहीं की! आखिर हुआ है क्या तुझे? मैने तो यों ही जरा छू लिया था, और तू करनपिसाची खेलने लगी। तेरी जितनी उमर में ही तेरी मां का गौना हुआ था। और इसी तरह पचीसो बार मैने उसका हाथ पकड़ा होगा...''[3] बावजूद इसके

---

[1] नागार्जुन :– बलचनमा, पृ०.३१
[2] नागार्जुन :– बलचनमा, पृ०.६३
[3] नागार्जुन :– बलचनमा, पृ०.२८

जब इस पूर्णतया असफल हो जाता है तो बलचनाम की मॉ को रेबनी को सौपने के लिए पीटता है– "बोल साली, अपनी बेटी को यहां ले आयेगी कि नही? बोल"[1]। यह जमींदारों के कुकृत्यों का पर्दाफाश करता है। नागार्जुन के उपन्यास 'वरूण के बेटे' में मुलाही गोढ़ियारी गांव पुराने जममींदारो नें मछुओं से जल–कर प्राप्त करने में असमर्थ होकर "झील की समीपवर्ती कछारें किस्तबंदी ठेकों पर सस्ते में उठा दी थी।"[2] जमीदारी उन्मूलन कानून के मुताबिक "व्यक्तिगत जोत–जमीन, बाग–बगीचे, कुआ–चभच्चा और पोखर, देवी–देवता के नाम पर चढ़ी हुई जायदाद परागाह परती परॉत नदियों के पाट और तटवर्ती भूमि जैसी कुछ एक अचल संपत्तियों के मामले में जमीदारी उन्मूलन कानून ने भू–स्वामियों को खुली छूट दे दी।"[3] देपुरा के मैथिल जमींदारो नें जमींदारी उन्मूलन से लाभ उठाकर' आग लगते झोपड़ी जो निकले सो लाभ"[4] की स्वार्थ प्रवृत्ति के कारण उस लिप्सा के आधार पर चुपके–चुपके पोखरों और चरागाहों को बेचना प्रारंभ कर दिया। ये सब छोटे लोगों की जीविका के आधार थें जिन्हें शोषक वर्ग चालाकी से बेचकर लाभ कमा रहा था।

नागार्जुन नें बाबा बटेसरनाथ उपन्यास में भी वट–वृक्ष के माध्यम से शोषण की आनुवांशिक पद्धति अर्थात् पीढ़ी दर पीढ़ी जमींदारों द्वारा कृषकों व मजदूरों पर किए गऐ अत्याचारों व शोषण की करूण कथा को अभिव्यक्ति प्रदान की है। रुपउली गांव में जमींदारों द्वारा ली गयी बेगार एवं उनके अत्याचारों का वर्णन उपन्यासकार बरगद बाबा से कहलवाता है–

"आज तो इन बातों पर सहसा विश्वास नहीं करेगा कोई, किन्तु सौ वर्ष पहले दर

---

[1] नागार्जुन :– बलचनमा, पृ०.६८
[2] नागार्जुन :– वरूण के बेटे, पृ०.३६१
[3] नागार्जुन :– वरूण के बेटे, पृ०.२८१
[4] नागार्जुन :– वरूण के बेटे पृ०.२६१

असल अपने इन इलाकों में जमींदार सर्वेसर्वा हुआ करता था। रियाया से बेठ–बेगार लेना उसका सहज अधिकार था... वह रोब! वह दबदबा! वह अकड़! वह शान्! वह तानाशाही! वह जुल्म! क्या बताऊँ बेटा' छोटी औकात के और नीची जात के लोगों को तो खैर वह कीड़े–मकोडे समझता ही था, अच्छी–खासे हैसियत के भले–खासे व्यक्तियों से वक्त बेवक्त नाक रगड़वाता था जमीदार।''[1]

वह जुल्म का ही समय था जब रियाया से प्रत्येक प्रकार की वेगार ली जाती थी। जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् जमींदारों ने परती, चरागाह तथा सार्वजनिक उपयोग के पोखरों और वृक्षों को बेचकर किस प्रकार अपना व्यक्तिगत लाभ किया, इसका वर्णन इस उपन्यास मे उद्धृत हैं

यही नही अपनी पिपासा को शांत करने के लिए रियाया की हर प्रकार से शोषण करते थे। वे अपनी विलासिता और मनोरंजन का शानदार महल रियाया के खून व पसीनें के गारे से चिना जाना पसंद करते थे। उनके यहां भी सांस्कृतिक कार्यक्रमों विवाहों तीज त्योहारों गाने वजाने का कार्यक्रम होता था। फिर जब उनके बेटे का विवाह होता है जिसमें जनसाधारण को खून पसीना बहाना पड़ता था। रात दिन एक करनें में सेवक उनपक लिए वेगार करते थे। इसी तरह कर एक दृश्य जो रोगटे खड़ा कर देनेवाला है।– अगले वैशाख में राजा के मझले कुमार की शादी हुई शुक्लपक्ष की दशमी थी। बारात इसी रास्ते से गुजरीथी। नौकर चाकर मिलाकर सौ आदमी रहे होगे। कन्धो पर बांस रचाकर सोलह बेगार भारी सी एक तख्ता पोश ढ़ोये जा रहे थे,उस पर दरी और जाजिम बिदी थी। मय साज बाज के एक रंडी उस तख्तपोश पर नाच रही थी–तबला डुग्गी सारंगी मजीरा सब साथ दे रहे थे। ...बारात में साथ चलते बेगारों के कन्धे! कन्धे पर बांसा और बासों पर तख्तपोश! तख्पतोश पर साज बाज समेत एक बाई जी नाच रही है और राजा का बेटा व्याह करनेजा रहा है। इस प्रकर बेगार के रूप में हमेशा

---

[1] बाबा बटेसरनाथ :– पृ०.४७

जनसाधारण का ही शोषण होता था। जिस प्रकार लोकमान्य तिलक 'स्वराज हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' कहते थे उसी प्रकार जमीदार भी वेगार लेना अपना जन्म सिद्ध अधिकार मानते थे।

"यह वही व्यवस्था, उसकी पुलिस, कचहरी और कानून है जिसके खिलाफ प्रेमचंद ने आजीवन पूरी निर्ममता के साथ लिखा और संघर्ष किया है।"[१] इनकी ही अगड़ी कड़ी जागार्जुन थे जिनके उपन्यासों में गोदान की तरह ही जमदीरी शोषण का नंगा नाच दिखलाई पड़ता है। शोषण व बेगार के कारण ही किसान व निम्न वर्ग पिस रहा है।

"इमरतिया' उपन्यास में शिवनगर की रानी साहिबा प्रारंभ में जमनिया मठ के प्रति घोर आदर भाव दिखाती प्रतीत होती है। साथ ही वर्ष में दो बार साधुओं को भंडारा भी देती है। लेकिन अभयानंद जब शिकायत करता है, और इस मठ के सभी साधुओं के गिरफ्तार होने पर वे अब उपेक्षा भाव दिखलाने लगती है। उनका पत्र इस कथन को पुष्ट करता है।– "लालता को सौ रूपये भिजवा दिए है, लेकिन मुकदमें की पैरवी के लिए मै किसी के नाम सिफारिशी पत्र नही दे सकूगी, किसी से इस सिलसिले में मिलना भी नही चाहूँगी...[२] यह रानी की घोर स्वार्थपरता का ही परिचायक है। वे अपने प्रभाव, यश और आर्थिक हितों के विस्तार के लिए जमनिया मठ का भरपूर उपयोग करती है, और संकट की घड़ी आने पर दूध की मक्खी की तरह उपेक्षित कर देती है।

यह एक रानी साहिबा का ही चित्र नही है अपितु उन सैकड़ो ऐसे साहबानों का भी चित्र है जो अपने इच्छाओं लालसाओं की पूर्ति होने के बाद उससे विमुख हो जाती है। अवसर आया तो पुनः बेगार कराने में कोई हिचक नही होती। बेगार प्रथा सामंती समाज की एक ऐसी घृणित एवं शोषक वृत्ति है, जिसके अन्तर्गत कृषकों–मजदूरों से

---

[१] डा० सत्यप्रकाश मिश्र : गोदान का महत्व, पृ० २२

[२] नागार्जुन :– इमरतिया, पृ०.१२५

बिना उनके श्रम का मूल्य दिये काम लिया जाता है। नागाजुर्न के प्रत्येक उपन्यासों में इस घृणित स्वरूप का दर्शन मिल जायेगा। वह चाहे 'रतिनाथ की चाची' हो 'बलचनमा' या फिर 'बाबा बटेसरनाथ'। सभी में वेगार प्रथा का वर्णन कही न कही मिल जायेगा, किसी में कम तो किसी में अधिक ऐसा ही एक स्थल है 'रतिनाथ की चाची' में जिसमें कुल्ली राउत इस बेगार प्रथा का शिकार है। और यदि इस उपन्यास मे किसी भी पात्र को कुल्ली राउत से हमदर्दी है तो वह रतिनाथ है। वह उसके बारे में सोचता है। हमारा जूठन खाकर हमारा पहिरन पहनकर इनके बच्चे पलते है। उन्हे कभी स्कूल और पाठशाला जाने का अवसर नही मिलता। क्या मर्द क्या औरत, इन लोगो का जीवन–यापन बड़ी जाति वालों की मेहरबानी पर निर्भर है। कुल्ली राउत से काम लिया जाता है पता नहीं उसे इसका पारिश्रमिक मिलता है अथवा नहीं। इस प्रकार बेगार प्रथा के द्वारा जमींदार श्रमिकों का शोषण करते हैं।

बलचनमा उपन्यास में बलचनमा कहता है, "यों खास काम मेरा भैंस चराना था, फिर भी और कई काम थे, जैसे बच्चों को खिलाना पानी भरना, बाहर बैठक मे झाडू लगाना, दुकान से नून तेल लाना और मालिकाइन के पैर चापना।"[1] मालकिन बलचनमा से जबरदस्त काम लेती हैं, मालिक तो नींद में सोते–सोते बलचनमा को लाता मारकर, भैस के मच्छर उड़ाने को कहता है। जैसा कि बलचनमा कहता है– "अदालत उनकी, हाकिम उनका, थाना–दरोगा उनका, पुलिस उनकी, गरीबो के लिए सिवाय लात–जूता के और है ही क्या ? अब तो थोड़ा कुछ जमाना बदला भी है, बाकी दस–पन्द्रह साल पहले देहातों में घुप अंधेरा था। जिसकी लाठी उसकी भैंस, यही चलता था। आजकल तो दरोगा–पुलिस लोगों से दबने भी लगे हैं। बड़ी जातवालों की माया तब भी अपार थी और अब भी। बात–बात में अपनी गोटी वही लाल करते है।"[2] गावों में जमींदार ही सर्वेसर्वा हुआ करते थे और वे किसान–मजदूरों से कसकर बेगार लेते थे।

---

[1] नागार्जुन :– बलचनमा, पृ०.६

[2] नागार्जुन :– बलचनमा, पृ०.४७

देश स्वतंत्र होने पर हमारी लोकतांत्रिक सरकार ने बेगारी प्रथा समाप्त की परंतु गावों में कमोवेश स्थिति जस की तस बनी हुई है। अब भी गरीब व मजदूर लोगो से बेगार ली जाती है। निम्न वर्ग दिन प्रतिदिन आर्थिक रूप से कमजोर होता जा रहा है। उच्च्य वर्ग ऊंची पायदान पर ही जा रहा है। यद्यपि सरकार ने गरीबी हटाने के लिए तमाम सरकारी गैर सरकारी योजनाएं चला रही है। लेकिन इसका फायदा कुछ लोगों को ही मिल पा रहा है।

ख– महाजन वर्ग द्वारा शोषण

भारत में महाजनी सभ्यता सामंतवाद का ही परिवर्तित रूप हैं जहा देश में एक ओर जमीदार प्रथा विद्यमान थी। वही दूसरी ओर उद्योगों के विकास के साथ साथ शहरों में महाजनी सभ्यता का सिकंजा मजबूत होता जा रहा था। गांवों में तो जमींदारों की दूहरी भूमिका होती थी। एक तरफ जमींदार के रूप में कृषकों पर अत्याचार करते थे, दूसरी ओर उनकों आवश्यकतानुसार आर्थिक सहायता देकर सदा के लिए ऋण की जंजीरों में बांध लेते थे। मूल का सूद इतना होता था कि चुकाने के लिए उन्हे जीवंत पर्यन्त महाजन की गुलामी करना पड़ता था।" सूद की दर भयानक थी फिर भी किसान उधार लेने के लिए अपनी जिन्दगी गिरवी रख देता था।' पाँच साल हुए होरी ने दुलारी से तीस रूपये हो गये तब स्टांप लिखा गया दो साल में उस पर पचास रूपये सूद चढ़ गया था। मंगरूशाह के पचास रूपये दस साल में तीन सौ हो गये। एक किसान गिरधर ने बीस रूपये लिए थे उसका उसे १६० रूपये भरने पड़े।"[१] यह भी कृषकों की महागाथा है जो शोषण का शिकार बनते थे। नागार्जुन के उपन्यासों में महाजनी शोषण के लोमहर्षक चित्र अंकित किये गये है। 'रतिनाथ की चाची' में शुभंकरपुर के जमीदार दुर्गानंदन सिंह है जो किसानों के साथ लेन–देन का कारोबार भी करते हैं। अपने जमींदारी वैभव के अनुकूल खर्च, उनको इस कारोबार से प्राप्त होता है। आस–पास की

पाँच कोस जमीन उनकी छत्र–छाया में है, और ऊपर से ब्याज का कर्जा। ब्याज की दर प्रतिमास डेढ़ रूपया सैकड़ा था।" राजाबहादुर पुराने अंगूठे को साल–साल नया करवाते जाते हैं। सूद भी मूर बनता जाता। चक्रबृद्धि का यह क्रम राजा बहादुर की शरीर वृद्धि के लिए रसायन का काम कर रहा था।" यही नही दुनिया भर की फरेव करना इन सब का पेशा था कोई भी कुकर्म उनसे छूटा नही था।" तरूणी विधवाओं को प्रेमपाश में फॅसाकर फिर उनकी जायदाद अपने नाम लिखवा लेना और चूसे आम की गुठली की भांति फिर उन्हें फेंक देना, दो खेत वालो में किसान का झगड़ा खड़ा करके मुकदमों में बझा देना और उनमें से एक को खुद का बनाकर लील जाना, सस्ते दामों में ॲगूठे खरीदकर पीछे ज्यादा रकम चढ़ाकर उन्हें अदालत में पेश कर देना अपने उपर में आप ही सेंध डलवाकर पड़ोसी को गिरफ्तार करवा देना"[१] इत्यादि इन सब का पेशा था।"

किसान इन वर्गों के चगुल में इस कदर जकड लिया जाता हें कि मरने के बाद ही उसे ऋण से मुक्ति मिलती थी। बलचनमा का कथन कितना हृदय–विदारक है– कर्ज और गुलामी में सिर से पैर तक डूबा हुआ यह आदमी मलेरिया की हड्डी तोड़ बीमारी से गल–पचकर जब मरा तभी छुटकारा पा सका।"[२] यह ज्वलंत साक्ष्य है। आगे ऋण से मुक्ति न होने के कारण किसानों के हाथों से धीरे–धीरे उनकी जमींन भी निकलने लगी। जमींदारों के शोषण से बलचनमा को यह अनुभव होने लगता है– 'गरीबी नरक है भैया, नरक। चावल के चार दाने छींट कर बहेलिया जैसे चिड़ियों को फँसाता है उसी तरह से ये दौलत वाले गरजमंद औरतों को फँसा मारते हैं। उनके पास धन भी होता है और अकल भी होती है। अपरंपार है उनकी लीला।"[३]

बलचनमा इसी महाजनी शोषण की, कहानी कहता है कि उसकी मालकिन बड़ी चालाक थी। उसने दो प्रकार के 'बाट' रखे थे। लेने के अलग और देने के अलग।

---

[१] रतिनाथ की चाची – नागार्जुन पृ० ८५
[२] बलचनमा – नागार्जुन पृ २१
[३] बलचनमा – नागार्जुन पृ ५६

'शत्रुमर्दन राय को बीच आँगन में खड़ा कर दिया गया।

'बाहों को माथे के ऊपर खड़ा करके एक सिपाही ने बॉध दिया। दो गज के फासले पर दो ईंटें डाल दी गयी। एक ईट पर एक पैर दूसरी ईट पर दूसरा पैर। इस तरह राय जी खड़े किये गये। यमदूत–सी मूंछेवाला एक अधेड़ भोजपुरिया जमादार कोड़ा लिए नजदीक आया। दूसरी ओर से एक और आदमी आया जिसके हाथ में मुॅह–बन्द हाँड़ी थी।

'जमादार का इशारा पाकर वह शत्रुमर्दन के बिलकुल करीब पहुँचा और हाँड़ी का मुॅह खोलकर लाल चींटों का छत्ता निकाल लिया छत्ते में डोरी लगाी थी। उसने खाली हॉड़ी नीचे जमीन पर रख दी और बिलबिलाते लाल चींटों वाला आम के अध सूखे पत्तों का वह घोंसला रायजी के माथे पर टिकाया, ऊपर डोरी पकड़े रहा........

'चींटे हजारों की तादाद में शत्रुमर्दन राय की देह पर फैल गए।

'माथा हिलाकर बेचारे ने बँधे हाथों को ऊपर–ऊपर झटकने की कोशिश की, कि पीठ पर कोड़े पड़े–सपाक्–सपाक! चार बार !!

'खबरदार!' जमादार गरज पड़ा, 'अपनी खैर चाहते हो तो वैसे–के–वैसे खड़े रहो, वरना.......

आँख, नाक, कान, मुँह, होंठ, गर्दन, कपार–और बाकी समूचेबदन से चिपक गए लाल चींटे ? थोड़ी देर तक शत्रुमर्दन राय हाय–हाय होय–होय, हुई–हई करता रहा! एक साथ हजारों की संख्या में चलती–फिरती भूखी–प्यासी जहरीली सुईयों ने लाचार आदमी पर हमला कर दिया था।[१]

'शत्रुमर्दन काफी देर तक छटपटाता रहा......'[२]

---

[१] नागार्जुन : बाबा बटेसरनाथ – पृ० ५०–५२
[२] बाबा बटेसरनाथ – पृ० ५०–५२

इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में शोषण की एक गाथा भी दिखलाई पड़ती है, अत्याचार, व अनाचार सब सामंती ब्यवस्था से उत्पन्न तत्व हैं। जिनके साये में केवल मिथिलांचल ही नहीं अपितु सम्पूर्ण देश है।

(ग) धार्मिक शोषण

धार्मिक शोषण से तात्पर्य धर्म के ठेकेदारों द्वारा किया गया शोषण है। इन ठेकेदारों में पंडित, पुरोहित, साधु, महंत जो धर्म के नाम पर परलोकवाद का सब्जबाग देकर शोषण करते हैं। वे पुनर्जन्म परलोकवाद की भावना भरकर भोली–भाली जनता को शिकार बनाते हैं। यह वह जनता है जो विश्वास करती है–' छोटे–बड़े, भगवान के घर से बनकर आते है।' नागार्जुन के अनुसार धर्म का आज जो स्वरूप है, वह सबल एवं समृद्ध लोंगों के लिए वरदान एवं गरीबों के लिए अभिशाप सिद्ध हुआ है। मार्क्स तो धर्म को 'गरीबों की अफीम' मानता है। निर्बल, असहाय और हीन किसान धर्म के कठोर अनुशासन में पिस–पिसकर सदा अन्याय और अत्याचार के अभिशाप को सहते हैं जबकि समृद्ध लोगों के लिये यह यश–कीर्ति और अस्तित्व को बनाये रखने के लिए सहयोगी सिद्ध हुआ है। समाज के ताकतवर लोगों के लिए धर्म का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जैसा कि 'रतिनाथ की चाची' में नागार्जुन कहते है– 'समाज उन्हीं को दबाता है, जो गरीब होते हैं। शास्त्रकारों को बलि के लिए बकरे ही नजर आयें। बाघ और भालू का बलिदान किसी को नहीं सूझा। बड़े–बड़े दाँत और खूनी पंजे पंडितों के सामने थे, इसलिए उधर से नजर फेरकर उन्होंने बेचारे बकरों का फतवा दे डाला।'[1]

शास्त्रकारों ने भी धर्म के नाम पर गरीबों का ही शोषण किया। धार्मिक पाखंडो और अंधविश्वासों का चित्रण 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में मिलता है। संस्कृत पाठशाला के पंडित जी को राजा बहादुर से धन की प्राप्ति होती है, इसलिए नित्य ही पाठ के आदि, मध्य या अंत में पंडित जी राजा बहादुर का गुणगान कर उनकी श्री

---

[1] रतिनाथ की चाची– पृ० ५४

समृद्धि की अमरता की कामना करना अपना परम कर्त्तब्य समझते हैं। इसी उपन्यास में जयदेव मिश्र के लड़की के विवाह के संबंध में गांव मे विरोध होने पर वो भोला पंडित को एक जोड़ा धोती दे देते हैं और चाँदी के सौ रूपये देकर मामला ठीक कर लेते हैं। यह धर्म की अवसरवादिता का ढाँचा था।

इस प्रकार उपन्यास में कई प्रसंग है जहॉ, 'धर्म के ह्रासोन्मुखी स्वरूप को ब्यंग्यात्मक रूप में प्रस्तुत करते हुए उसे सामाजिक, आर्थिक–विषमता को बनाये रखने वाले अस्त्र के रूप में चित्रित किया गया है।'[1]

इससे यह प्रतीत होता है कि किसानों के शोषण के लिए ईश्वर और धर्म दोनों मिलकर शस्त्र का कार्य कर रहे हैं। इन्सानियत का खून चूसने वाले इन लोगों का सबसे बड़ा, तेज और धारदार औजार ईश्वर है। समाज के ये पंडितो द्वारा लिये उपाधि 'धर्मदिवाकर' सबसे बड़े अत्याचारी हैं। यह ब्राह्मण धर्म भी सामाजिक–आर्थिक विषमता एवं विकृतियों का पोषण करता प्रतीत होता है।

धर्म के नाम पर मठों एवं मंदिरों में भोले–भाले लोगो का शोषण होता है। और शोषण के स्थल 'जमनिया के मठ' सरीखे हैं, जो जमनिया के बाबा बनकर आम–जन के ईमानों, व अंधविश्वासों का फायदा उठाते हैं। बाबा स्वयं कहता है 'अपने दिल की दुनिया का नाटक औरो को क्यों देखने दूँ। बाहर–बाहर से सिद्धई का जितना स्वाँग बनाए रहूँगा, उतना ही अधिक लाभ पहुँचेगा अपने को।'[2]

'समाज की सामन्ती ब्यवस्था में धर्म अपने सही रूप से दूर रहकर मुखौटा धारी बन जाता है, तो इसके आश्रय में अनेक अमानवीय दुष्प्रवृत्तियाँ पनपने लगती हैं। शोषक प्रवृत्तियों तथा धार्मिक संस्थानों के बीच यह अलिखित समझौता समाज की नैतिक जड़ों

---

[1] डा० प्रकाश चन्द्र मेहता– प्रगतिवाद और हिन्दी उपन्यास, पृ० ३६७
[2] जमनिया के बाबा– पृ० २०

की शिराओं को प्रच्छन्न रूप से शक्तिहीन करता है। 'इमरतिया' में जमनिया के बाबा, मठ इसी कारण भ्रष्ट एवं अनैतिक गतिविधियों का अड्डा बना हुआ है।'[1]

नागार्जुन के उपन्यासों में धर्म की जड़ता, उसके रूढ़िवाद, उसके पाखण्ड, उसके शोषण का चित्रण है। नागार्जुन को मस्तराम बाबा जैसे धर्म के नाम पर सामान्य जन को ठगने वाले साधुओ ओर महंतों की आवश्यकता नहीं। उन्हें अभयानंद जैसे साधु चाहिए, जो राष्ट्र–रक्षक तैयार कर सके। उनके द्वारा निर्मित वर्ग–विहीन समाज में शोषक धार्मिक गुरूओं का कोई स्थान नहीं है। वह धर्म के नाम पर 'मनुष्यों की बलि चाहने वाले यक्ष–गधर्व, देव–देवियों और ब्रह्म अब बाहर नहीं रह गये– मोटी जिल्दों वाले पुराने पोथें की बारीक पंक्तियों में बंद है। किसानों की इस दुर्दशा के मूल में किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में– धार्मिक कारण ही प्रमुख है। अतः यहाँ के शासकों और बुद्धजीवियों को धर्म तथा ईश्वर के विषय में नये ढंग से सोचना चाहिए।'[2]

कृषकों की निर्धनता और बेकारी, शोषण और अत्याचार के अनेक विवरण फलक नागार्जुन के उपन्यासों में भरे पड़े हैं। यह सब सामंती व्यवस्था की देन है। सामंत अब नहीं है किंतु सामंती चेतना अब भी समाज से समाप्त नहीं हुई। सामंतो, जमींदारों और महाजनों ने नये मुखौटे धारण कर लिए हैं। पुराने शोहदों का स्थान नये शोहदों ने ले लिया है। पहले सूदखोर और महाजन गॉव की सतह पर दिखाई पड़ते थे, अब उनकी जगह कोआपरेटिव बैंको से गरीब तथा अशिक्षित किसानों को ऋण दिलाने वाले विचौलियों तथा ऋण पास करने वाले अफसरों, बाबुओं ने ले ली है। किसानों को ये सूदखोर भी सौ की जगह अस्सी ही देतें हैं और ये नये रिश्वतखोर भी उन्हें पास किये गए ऋणों का एक भाग काटकर ही पैसा देते हैं। व्यक्तिगत सूदखोरी भी कागज पर, और कानूनन भले समाप्त हो गयी हो, वह अभी भी जारी है। अब कागज नहीं लिखे

---

[1] शिवप्रसाद मिश्र– नागार्जुन के उपन्यासें में सामाजिक चेतना पृ ६१

[2] बाबा बटेसरनाथ पृ० ७१–७२

जाते, अंगूठे नहीं लगवाये जाते पर ऋण दिया जाता है और ब्याज के साथ वसूला भी जाता है।'[1]

इस प्रकार शोषण की एक सतत श्रृंखला है। हर स्तर पर हर समाज में जिसको जहॉ मौका मिलता है वहीं शोषण करता है। पंडित स्कूल में तो महंत मठ पर, जमींदार रैयतो का तो महाजन अपने यहां उधार लेने वालो का, यह एक श्रृंखला है जिसका विशद विवेचन नागार्जुन के उपन्यासों में मिलता है। ये वे तत्त्व है जो गॉव, क्षेत्र, समाज वरन् देश को मजबूत करने वाले शक्तिशाली बनाने वाले कृषक, आम जनता का शोषण करते हैं।

साम्राज्यवादी शोषण

नागार्जुन के उपन्यासों में वह उस शोषक का स्वरूप मिलता है जो साम्राज्यवादी शोषक है, जो मानवता का महान शत्रु है। जिसने 'घास अच्छी चीज है, इसी को बिकवाकर टैक्स वसूलिए।'[2] फर्मान जारी किया। अग्रेंजो ने भूमि पर लगान बढ़ाकर ग्रामीण अर्थब्यवस्था का ढॉचा ऐसा कर दिया कि किसान जमीन का लगान चुकाने के लिए अपनी उपज बेचने को बाध्य हो गया। साथ ही साथ अग्रेंजो की औद्योगिक नीति के कारण गॉवों में भारतीय कुटीर उद्योगों का ह्रास होने लगा। कुटीर–उद्योगों के ह्रास होने के कारण बेकारी भी फैल गयी तथा धीरे–धीरे भूमि पर आबादी का दबाव बढ़ने लगा। इस प्रकार कृषि प्रधान देश के किसानों की दशा दिन–प्रति–दिन सोंचनीय होने लगी। इस प्रकार की शोषण वृत्ति का वर्णन नागार्जुन के 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास में मिलता है–

---

[1] लेख शिव कुमार मिश्र– गोदान का महत्व, सम्पादक डा० सत्यप्रकाश मिश्र, पृ० १८

[2] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष– विपिन चन्द्र, पृ० ५

यह उपन्यास अग्रेंजो के शोषण वृत्ति की कथा कहता है। इस उपन्यास में साम्राज्यवादी शोषण नीतियों व उनके द्वारा ढाये जुल्मों की कहानी मिलती है। अग्रेंजो के शोषण व जुल्म की कहानी बाबा बटेसरनाथ कहते हैं–

'यहॉ से कोस भर पूरब एक साहब आकर बस गया। क्या ही शानदार कोठी बनवायी थी उसने। महाराज बहादुर से दो सौ एकड़ जमीन सौ साल के पट्टे पर नील की खेतीके लिए उसको मिली थीं। दुमका की तरह से मुसहडों के पचास परिवार वह ले आया, कोठी के दक्खिन उनकी बस्ती आबाद हो गयी। उन्हीं लोगों से साहब नील की खेती करवाता था। वे उसके गिरमिटिया मजदूर थे। वह उनका पूरा मालिक था – मेहनत का भी, जान का भी, माल का भी।'[१]

भारतीयों के प्रति ब्रिटिशजाति, जातीय भेदभाव बरतती थी। जनता इस अत्याचार को अपनी नियति मान ली थी। गोरी जाति हर हाल में अपनी जातीय संप्रभुता कायम रखना चाहती है। भारतीय जनता के नागरिक अधिकार अग्रेंज पदाधिकारियों की कृपा पर निर्भर थे। जैसा कि बाबा बटेसरनाथ कहता है– "उन दिनों गोरों का आम लोगों पर भारी आतंक था। शहर हो चाहे देहात, ब्यापार–वाणिज्य का क्षेत्र हो चाहे किसानी–जमींदारी का, जज–कलक्टर होता हो या सेक्रेटेरियट– सब जगह गोरी चमड़ी वालों की तूती बोलती थी। कानून और हुकूमत उनके बूटों की कीलों के नीचे थे। राजाओं के मुकुट और जमींदारों के तुर्रेदार पगड़ी फिरंगियों के रास्ते की धूल के जर्रों को चूमने के लिए बेताब दीखते थे।"[२]

उपनिवेशवाद विभिन्न प्रकार के करों, लूट–खसोट और व्यवसायिक बनियागीरी की धौंस चौतरफा शुरू कर दिया। अग्रेंज सामूहिक रूप से तो शोषण करता ही था वह ब्यक्तिगत स्तर पर भी भारतीयों से अमानवीय ढंग से पेश आते थे। इस

---

[१] बाबा बटेसरनाथ , पृ० ८२
[२] बाबा बटेसरनाथ , पृ० ८२

सन्दर्भ में बाबा बटेसरनाथ का यह कथन ठीक ही है– "एक बीघा में बीस कट्ठा जमीन होती है न। तो प्रति बीघा तीन कट्ठा जमीन में नील की खेती करने के लिए किसान मजबूर किये जाते थे। यह दबाव जमींदारो और सरकारी अफसरों द्वारा डलवाया जाता था। जो नहीं मानता, उसे कई तरह से परेशान करते थे।"[१]

इसीलिए नागार्जुन ब्यंग्य से विक्टोरिया को 'राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरिया' कहते है। वैसे वे महारानी विक्टोरिया को 'बनियों की रानी' की ही संज्ञा देते हुए कहते हैं – "बनियों की रानी द्रवित हुई तो क्या हुआ"[२]

नागार्जुन ने शोषण के चरित्र को उद्घाटित किया है। 'युग की समस्याओं की नाड़ी पर नागार्जुन की बौद्धिक पकड़ बड़ी मजबूत रही है, अतः समस्याओं के बदलते रूपों के यथार्थ चित्र से वे कभी दूर नहीं रहे।'

इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में ब्यापक शोषण के तत्व मिलते हैं, जो जनता की ही नहीं वरन् सम्पूर्ण देश का शोषण करते हैं। उनके उपन्यासों में किसानों की आर्थिक सोंचनीय दशा का तथा इसके कारणों का सांगोपांग, विराट चित्र प्रस्तुत किया गया है "उनकी दृढ़ मान्यता यह है कि साधारण जन रूपी भेड़ की ऊन हर सरकार उतारती रही है और उतारती रहेगी। चाहे वह ब्रिटिश साम्राज्यशाही' हो या स्वतंत्र भारत की लोकप्रिय 'जनतांत्रिक सरकार"।

वर्ग–संघर्ष

नागार्जुन के औपन्यासिक कृतियों में वर्ग–संघर्ष की स्थितिपरक तत्त्व भी मिलते हैं। डा० हेमेन्द्र कुमार पानेरी के अनुसार–"आधुनिक युग में दो प्रकार का अर्थ–संघर्ष मुख्यतः दिखाई देता है– प्रथम, जमींदार एवं किसान के बीच चलने वाला अर्थ–संघर्ष,

---

[१] बाबा बटेसरनाथ , पृ० ८३
[२] बाबा बटेसरनाथ , पृ० ८३

जो परम्परागत अधिक है। द्वितीय, उद्योगपति और श्रमिक के बीच चलने वाला, जो औद्योगिक क्रांति की देन है। वर्ग–संघर्ष में भी अर्थ–संघर्ष स्वीकार किया जाता है।'[1] साम्यवादी उपन्यासकार होने के नाते उनके उपन्यासों में वर्ग–संघर्ष पूरे वेग के साथ उभरकर आया है। उन्हीं के शब्दों में 'शोषक और तानाशाही शक्तियों के खिलाफ जनमत तैयार करना मेरा पहला कदम हो जाता है। संघर्ष के लिए जो प्रतीक मुखरित होते हैं, उन्हें उभारता हूँ, ताकि रग–रग में माहौल पैदा हो जाय।"[1]

नागार्जुन तो स्वयं सर्वहारा है। वे मानते है, "अस्सी प्रतिशत (जनता या किसान) हमारी इष्ट देवता है, जो जीवन के आस–पास फैली हुई है। मैं भी उन्हीं के साथ जुड़ा हुआ हूँ। समाज के घटना–प्रवाह से विच्छिन्न नहीं हूँ। पात्रों के साथ मुस्कराता हूँ, उनसे बात करता हूँ। मै ऐसे वर्ग को प्रतिनिधि नहीं चुनता जिनमें मैं नहीं हूँ।"[2] इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे वर्ग– संघर्ष में पूरी आस्था रखते हैं। और सर्वहारा जनता ही उनका आराध्य है।

नागार्जुन अलमस्त, फक्कड़, उग्र, तेजस्वी–ओजस्वी, फकीर, विद्रोही–विप्लवी एवं क्रांतिकारी थे। उनका उद्‌देश्य सर्वहारा वर्ग के शोषण को समाप्त कर वर्गहीन समाज की स्थापना करना था। इसीलिए उनकी ऐतिहासिक कृतियाँ कल्पना के आकाश कुसुम नहीं, इसी धरती पर व्यतीत होते सर्वहारा वर्ग की व्यथा–कथा है। आर्थिक–विषमता से त्रस्त होकर ही वे मार्क्सवाद की ओर उन्मुख हुए हैं, और इसमें उन्होंने पीड़ित एवं दलित वर्ग के आंसुओं को रूकते देखा है। उनके उपन्यासों में भारतीय शोषित–वर्ग का वृहद अंकन मिलता है।

(क) किसान–जमीदार संघर्ष

नागार्जुन के जिन उपन्यासों में वर्ग–संघर्ष का मुख्य आधार आर्थिक– विषमता है,

---

[1] डा० हेमेन्द्र कुमार पानेरी– स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास–मूल्यसंक्रमण पृ०२१५

[2] डा० ब्रजभूषण सिंह आदर्श–हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो का अनुशीलन पृ०४०६

किंतु ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण–वासियों के जीवन व रहन–सहन की शैली के अनेक आयाम मिलते हैं। वर्ग–संघर्ष द्वारा ही मार्क्सवाद ने दलित मानवता के लिए शोषण व अत्याचारों से मुक्ति का मार्ग निर्दिष्ट किया है। "आर्थिक विकास की चरम परिणति समाजवाद में मानकर मार्क्सवादी चिंतन ने वर्ग–संघर्ष, पूँजीवाद के अनिवार्य ह्रास, मजदूरों के निर्बाध शासन आदि विविध स्थितियों को भी अनिवार्य माना जाता है।"[१] यद्यपि वर्ग–संघर्ष का मूल आधार आर्थिक माना जाता है, लेकिन कभी–कभी धर्म और जाति भी उसका कारण बनती है। लेकिन ये केवल प्रेरक का कार्य ही करती है। प्रमुख तो अर्थ ही होता है।

"आज जीवन में अर्थ ही सामाजिक–विषमता का मूल कारण है और अर्थ पर ही आधारित आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत नये वर्गो का प्रादुर्भाव हुआ है। फलतः वर्ग–चेतना और वर्ग–संघर्ष आधुनिक युग में ही विशेष रूप से प्रतिध्वनित हुआ है।"[२]

मानव–जीवन के चित्रण में नागार्जुन को गॉव शहर की अपेक्षा ज्यादा आकर्षित किया। इसीलिए मजदूर की अपेक्षा किसान के जीवन के विविध सुख–दुःख भरे चित्र उनके उपन्यासों में विशेष रूप से उभरकर सामने आये हैं। संघर्ष का जन्म विषमता से ही होता है।

कृषकों का स्वामी जमींदार होता है। वह कृषकों को अपना दास समझता है। वह कृषकों को मूलभूत सुविधाओं से भी वंचित करता है। परिणामस्वरूप कृषक अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करता हैं। जिसका वर्णन 'रतिनाथ की चाची' में नागार्जुन करतें हैं। उन्होंने वर्ग–संघर्ष का बड़ा मार्मिक चित्र खीचा है। नागार्जुन शुभंकरपुर व उसके आस–पास के गाँवों के कृषकों में पनपती वर्ग–संघर्ष की भावना को व्यक्त करते हैं। "कमाने वाला खायेगा, इसके चलते जो कुछ हो।"[३] आगे कृषक व जमींदार के बीच

---

[१] डा० सुखदेव शुक्ल–हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता पृ०२३७

[२] डा० सुरेन्द्र नाथ तिवारी–प्रेमचंद्र और शरद चंद्र के उपन्यास–मनुष्य का विम्ब पृ०२६

[३] नागार्जुन– रतिनाथ की चाची पृ०८७

संघर्ष पर नागार्जुन लिखते हैं–'किसानों ने सत्याग्रह आरंभ किया। मालिक को लठैत और पुलिस वाले मिल गए। ऊपर कांग्रेसी मंत्रिमंडल था, नीचे धरती माता थी। सत्याग्रही पृथ्वी–पुत्र जब पिटने लगे, खून से तिरंगा तब लाल हो उठा।'[1] परिणाम जो होना था वही हुआ। संघर्ष में दो ब्यक्तियों की जाने भी गयी। आंशिक ही सही इस संघर्ष में किसानों ने सफलता भी प्राप्त की। इस प्रकार 'रतिनाथ की चाची' में संघर्ष की ब्यापक तैयारी हो रही है। बलुआहा पोखर के भिंडे पर किसान–कुटी बनायी गयी है। सभी ने इस कार्य हेतु दिल खोलकर चंदा भी दिया। रतिनाथ की चाची 'गौरी' तो सबसे आगे रही। वह कहती भी है– "ये दस का काम है। देश का काम है। गरीबों का यज्ञ है। मेरे पास है ही क्या, जो दूँगी।"[2] इस प्रकार उमानाथ की मॉ ने अपना दो साल का पुराना कंबल भी दे दिया। उसके पास यही एक कंबल था, इसके अलावा कोई नहीं था। यह संघर्ष के प्रति समर्पण की भावना थी। यह संघर्ष वही याद दिला रही है, जो आजादी के दीवानों (आजाद हिन्द फौज) के लिए देश की महिलाओं ने अपना सारा आभूषण उतार कर उनके चरणों में अर्पित कर दिया था।

कृषक आंदोलन सभी क्षेत्रों में फैल रहा था। जमींदार उसे पनपने न देने के लिए साम–दाम–दण्ड–भेद की उक्ति भी इस्तेमाल कर रहे थे। वे अपनी जमीन बचाने के लिए अपने लठैतों, अपनी पुलिस व अपनी सरकार का इस्तेमाल कर संघर्ष का मार्ग भी अपना रहे थे।

'बलचनमा' उपन्यास में तो बलचनमा का स्वयं का भोगा हुआ यथार्थ है। उसका जीवन सामान्यतः दुःख–कष्ट और बेगानेपन में बीतता है। उसने जितने दुःख कष्ट झेले,हो सकता है कि नागार्जुन के अन्य किसी भी उपन्यास के पात्र इतना दुःख कष्ट न झेले हों। इसीलिए शोषित समाज की पीड़ा और वर्ग–संघर्ष इस उपन्यास में पूरे आवेग

---

[1] नागार्जुन– रतिनाथ की चाची पृ०१००
[2] नागार्जुन– रतिनाथ की चाची पृ०८७

के साथ उभरकर आया है। यह भी 'गोदान' के 'गोबर' की तरह शोषण व अत्याचार के खिलाफ डटकर मुकाबला करता है। यह शोषण के खिलाफ खड़ा होना वर्ग–संघर्ष की ओर ही संकेत करता है।

"उसे भी स्वाधीनता–आंदोलन की चेतना व प्रेरणा मिलती है, जिस प्रकार 'गोबर को शहर में जाने पर मिली थी।"[१] इसीलिए वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो जाता है, वह कहता है– "सच जानो भैया, उस वक्त मेरे मन में यह बात बैठ गयी कि जैसे अग्रेंज बहादुर से सोराज लेने के लिए बाबू भैया एक हो रहे है, हल्ला–गुल्ला और झगड़ा–झंझट मचा रहे है, उसी तरह जन–बनिहार, कुली–मजदूर और बहिया–खवास लोगों को अपने हक के लिए बाबू भैया से लड़ना पड़ेगा।"[२]

'बलचनमा' बचपन से ही जमींदार के शोषण का शिकार होता आया है। वह नाना प्रकार की यातनाएं सहता है। सूखा और बासी पकवान खिलानें वाले उसका तो शोषण करते ही है, उसकी बहन रेबनी की भी इज्जत पर डाका डालते है। यही कारण है कि बलचनमा अब ज्वालामुखी की तरह विस्फोट करने वाला है, तभी वह कहता है– "बेशक! मैं गरीब हूँ। तेरे पास अपार–संपदा है, कुल है, खान–दान है, बाप–दादे का नाम है, अड़ोस–पड़ोस की पहचान है। जिला–ज्वार में मान है और मेरे पास कुछ नहीं है। मगर आखिरी दम तक मैं तेरे खिलाफ डटा रहूँगा। अपनी बहिन को जहर दे दूँगा लेकिन उन्हें तू अपनी रखैल बनाने का सपना पूरा न कर सकेगा।"[३] किसान अब अकेला और अनजान नही रह गया है। वह अब अपने शोषण को पहचान गया है। उसे भी अब महसूस होने लगा कि वगैर संगठन के, बगैर संघर्ष के अपने अधिकारों की प्राप्ति नहीं की जा सकती। 'बलचनमा' में नागार्जुन ने 'बलचनमा' के जीवन–संघर्ष के चित्रण द्वारा

---

[१] मुंशी प्रेम चंद–गोदान

[२] नागार्जुन–बलचनमा पृ० ८५

[३] नागार्जुन –बलचनमा पृ०७४

उस समाजवादी चेतना की ओर निर्देश किया है, "जो साधनहीन एव स्वाधिकार वचित किसान के अतर मे अन्याय तथा अत्याचार के प्रति विद्रोह की भावना को जन्म दे रही है।"[1]

डा० महावीर लोढा के अनुसार – 'बलचनमा' मे लेखक का उद्देश्य बलचनमा के माध्यम से दीन–हीन सर्वहारा–वर्ग में संघर्ष की ज्वाला को प्रदीप्त करना है। वर्ग–सघर्ष का चित्रण कर समाजवादी चेतना को प्रदीप्त करना ही लेखक का उद्देश्य है।"[2]

बलचनमा समाजवादियों को 'रोजी–रोटी की लडाई के बहादुर सिपाही' समझता है। उपन्यासकार 'बलचनमा' को इस वैचारिक भूमि पर लाकर मानो यह कहना चाहा है, कि किसान अब अपने खेत, धरती, फसल, घर और आबरू के लिए उजड जायेगा, जेल जायेगा किन्तु अत्याचारी के सामने झुकेगा नही। वह जीवन– संघर्ष के लिए तैयार है। गरीबी, भुखमरी और दमन की भयंकरता देखकर भी वह हार मानकर नहीं बैठता। यही उपन्यासकार का सबसे बड़ा संदेश है। इस प्रकार बलचनमा के माध्यम से उपन्यासकार ने युग–जीवन की चेतना को पहचाना है। निम्न–वर्ग की अजेय शक्ति एव हार न मानने वाले व्यक्तित्व को वाणी दी है। बलचनमा का संघर्ष और विद्रोह, बिहार के ग्रामों की आत्मा की आकुलता नहीं है, वह सम्पूर्ण राष्ट्र की व्याकुलता है।" इस प्रकार संघर्ष का एक चरित्र उजागर होता है, एक ओर किसान है, दूसरी ओर सामन्तीय मनोवृत्तियों के ढाँचे में ढला हुआ जमींदार– ये एक दूसरे के पोषक नहीं, परस्पर सघर्षरत है और यह संघर्ष केवल आर्थिक–सामाजिक स्तर पर नहीं चलता, अनुभूति और विचारों के धरातल पर भी चलता है।

'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास में भी नागार्जुन पीड़ित, गरीब और शोषित जनता, की वकालत करते हैं और उसे जागृत कर संघर्ष के लिए आह्वान करते हैं। इस उपन्यास में भी उपन्यासकार ने सारी समस्याओं का समाधान केवल साम्यवाद द्वारा माना है,

---

[1] डा० मजुलता सिह–हिन्दी उपन्यासो मे मध्य वर्ग–पृ० ३४७

[2] डा० महावीर मललोढा–हिन्दी उपन्यासो का शास्त्रीय विवेचन–पृ० ८३–८४

अर्थात साम्यवाद का तात्पर्य ही 'वर्ग–संघर्ष' है। वट–वृक्ष जैकिसुन को सामूहिक शक्ति से अवगत कराते हुए कहता है– 'झींगुर एक तुच्छ कीड़ा होता है। सैकडों हजारो की तादाद में जब ये एक स्वर होकर आवाज करने लगते हैं तो एक अजीब समां वॅध जाती है। झींगुरों की यह अखंड झंकार कई–कई पहर तक चलती रहती है। सामूहिक स्वर की इस एक महिमा के आगे मेरा मस्तक सदैव नत होता रहा है और होता रहेगा।'[1]

बरगद बाबा जैकिसुन को सामाजिक–वर्गीकरण, जातीय–कुलाभिमान की भी कथा सुनाता है। समाज में ब्याप्त विषमता, जिसमें ज्ञान–विज्ञान और पढाई–लिखाई केवल उच्च जाति वालों की बपौती थी, किन्तु अब धीरे–धीरे गॉवों में भी चेतना जागृत हो रही है। अब मिथक टूट रहा है। अब युवा वर्ग प्रगतिशील विचारों वाला हो रहा है। यहॉ नागार्जुन अदालत–कचहरी (कोर्ट) में संघर्षशील युवाओं की नब्ज टटोलते हैं और युवा वर्ग की विजय दिखलाते हैं। इस युवा वर्ग में वर्तमान शासन के प्रति आस्था तथा विद्रोह की भावना है। रूपउली गॉव के इन युवकों की असंतोष की भावना बरगद बाबा व्यक्त करते है– 'साधारण जनता का स्वर्ण युग तो अभी आगे आने वाला है बेटा।"[2] ये कोई सब्जबाग नहीं दिखलाते अपितु यथार्थ स्थिति का अंकन करते हैं।

ये युवा मिलकर किसान–सभा का निर्माण करते हैं। जिसका कार्य 'जमीन की बेदखली के खिलाफ गॉव के लोगों का संयुक्त मोर्चा, पास–पड़ोस के किसानों से इस संघर्ष में मदद लेना और जरूरत पड़े तो उन्हें भी मदद पहुॅचाना है।"[3] बरगद बाबा इस नयी पीढ़ी के कार्यो की सराहना करता है और आशीर्वाद देता है– "तुम लोगों ने तो बस्ती की हवा ही बदल दी।........ कोई हिम्मत नहीं करेगा तुम लोगों से टकराने की। मै आशीर्वाद देता हूॅ, रूपउली वालों की यह एकता हमेशा बनी रहे। सुखमय–जीवन के

---

[1] नागर्जुन– बाबा बटेसरनाथ पृ० १६
[2] नागर्जुन– बाबा बटेसरनाथ पृ० ७२
[3] नागर्जुन– बाबा बटेसरनाथ पृ० १४६

लिए तुम्हारी यह सामूहिक प्रचेष्ठा कभी मंद न हो, स्वार्थ की व्यक्तिगत भावना कभी तुम्हारी चेतना को धुँधला न बनायें।"[1]

'वरूण के बेटे' उपन्यास में भी नागार्जुन ने वर्ग-संघर्ष का चित्र खींचा है। इस उपन्यास में जमींदार मछुआरों से कोई संघर्ष नहीं करता अपितु वह दरोगा, अँचलाधिकारी और मजिस्ट्रेट से करवाता है। यहाँ वह घर बैठे-बैठे ही मछुआरो का विरोध करता है। हो सकता है कि इसके पीछे नागार्जुन की भावना सर्वहारा वर्ग को उच्च स्थान दिलाने की हो, 'कि वह अब शक्तिशाली हो चुका है, उसके सामने अब विरोधी टिक नहीं सकते। जैसा कि नागार्जुन कहते हैं- "देश का कल्याण वर्ग-विहीन समाज की रचना करने से ही होगा। इसके लिए गरीब-वर्ग को विभाजित होकर नहीं, झंडे के नीचे संगठित होकर उच्च-वर्ग से लोहा लेना होगा। यह सच है कि उच्च-वर्ग शक्तिशाली है, धन और शासकीय अधिकारों का समर्थन उसे प्राप्त है। पर किसान जैसी सभी शक्तिशाली संस्था के साथ संगठित होकर यदि संघर्ष किया जाय तो जीत जनता की ही होगी। निम्न वर्ग अब अपने शोषण का प्रतिकार करेगा, दबाने से दबेगा नही। अपने अधिकारों की भीख नहीं मॉगेगा, छीनकर ले लेगा। इस प्रकार निम्न-वर्गीय जनता की पीड़ा अपने अधिकारों के प्रति उसकी सतर्कता और उसका ताकतवर शक्तियों के सम्मुख न झुकना आदि चित्रित करना लेखक का मुख्य उद्देश्य रहा है।"[2]

मछुआरे अब संगठित होकर जमींदारों के अन्याय का मुकाबला करते हैं क्योकि उनकी जीविका का आधार एक मात्र तालाब था, जिसे जमींदार ने अपनी भू-पिपासा का शिकार बना लिया है। शोषण की भी एक हद होती है। एक कहावत है कि 'पीठ पर लात मार लीजिए परन्तु पेट पर लात मत मारिये'। यहां जमींदार ने पेट पर लात मारा है। इसलिए सब डटकर संघर्ष करते हैं-

---

[1] नागर्जुन- बाबा बटेसरनाथ पृ० १५३-५४

[2] डा० प्रकाश चंद्र भट्ट-नागार्जुन जीवन और साहित्य पृ० १६१

गोनड के शब्दों में– 'यह पानी सदा से हमारा रहा है, किसी भी हालत में हम इसे छोड नहीं सकते। पानी और माटी न कभी बिके हैं, न कभी बिकेंगे। गरोखर कापानी मामूली पानी नहीं, वह तो हमारे शरीर का लहू है, जिनगी का निचोड है।''[१]

मोहन मॉझी मछुआरों को संबोधित करते हुए कहता है– ''गढ़पोखर हमारे हाथों से न निकले, इसके लिए हमें कोशिश करनी होगी। इस संघर्ष में निषाद–महासभा नहीं, किसान–सभा जैसी जुझारू जमात ही हमारी सहायता कर सकती है।'' अंत मे सभी मछुआरे संघर्ष करते हुए गिरफ्तार हो जाते हैं। वे पुलिस की मोटर में बैठे–बैठे नारे लगा रहे है – ''इंकलाब जिंदाबाद...... हक की लड़ाई जीतेंगें........गढपोखर हमारा है, हमारा है.. ......''[२]

इंकलाब से तात्पर्य नागार्ज़ुन की वही मार्क्सवादी सोंच है, वही क्रांति का प्रतीक है। जिसकी स्थापना वे करना चाहते है। 'निःसन्देह लेखक यहाँ मार्क्सवादी वर्ग–संघर्ष के सैद्धान्तिक पक्ष की हिमायत करता है, किन्तु ब्यवहारिक स्तर पर वह उन उपादानों को संघर्ष के शास्त्र के रूप में अपनाने का आग्रह करता है जो भारतीय जनता की बद्ध मूल धारणाओ से नजदीकी सम्बन्ध रखते है।''[३]

'दुखमोचन' उपन्यास में समाज की रीढ़ समझे जाने वाले घरेलू–मजदूरिनों में भी वर्ग–चेतना ब्याप्त है। वे अब पुराने रेट पर काम नहीं करना चाहती एवं काम करके हड़ताल की सूचना देती है। शहरी चेतना का संक्रमण अब गॉवों में भी फैल चुका है। अब गॉव के लोग भी जागरूक हो गये हैं। इस बारे में दुखमोचन की भाभी शशिकला ठीक ही कहती है– ''अब वे छः आने माहवारी पर काम नहीं करना चाहती। जमाना तेजी से बदल रहा है। बबुअन! और है भी तो यह पुराना रेट......।''[४] यह संघर्ष अर्थमूलक

---

[१] नागर्जुन– वरूण के बेटे पृ० २८३
[२] नागार्जुन–वरूण के बेटे पृ० २८७
[३] नागार्जुन–वरूण के बेटे पृ० ३४६
[४] डा० शिवप्रसाद मिश्र–नागार्जुनके उपन्यासो में सामाजिक चेतना–पृ०६१

है। मँहगाई, बेकारी बढ़ रही है। शहरी चेतना अब गाँवों में भी प्रवेश कर चुकी है। जो शशिकला की भी सोंच को परिवर्तित करती है, कि यह 'पुराना रेट' है।

भारत में रहने वाली अस्सी प्रतिशत जनता और उसका जीवन–संघर्ष ही नागार्जुन के उपन्यासों का मूल स्रोत हैं। उन्होंने एक जगह स्वीकार किया है, कि 'साहित्य और कला के क्षेत्र में कार्य करने वाले हमारे कार्यकर्त्ताओं को अपना यह काम पूरा कर लेना चाहिए और अपना दृष्टिकोण बदल लेना चाहिए। उन्हें मजदूरों किसानों और सैनिकों के बीच और व्यवहारिक संघर्षों के बीच जाने की प्रक्रिया और मार्क्सवाद और समाज का अध्ययन करने की प्रक्रिया के जरिये कदम–ब–कदम अपने पांव मजदूरों, किसानों और सैनिकों के पक्ष में जमा लेने चाहिए। केवल इसी तरह हम एक ऐसे कला–साहित्य का सृजन कर सकते है, जो सचमुच मजदूरों, किसानों और सैनिकों के लिए हो और सचमुच सर्वहारा–वर्ग का कला–साहित्य हो।"[1]

(ख) मजदूर–पूँजीपति संघर्ष

अग्रेंजी भूराजस्व नीति जमींदार वर्ग का समर्थन अवश्य करती थी, लेकिन यह केवल कृषकों पर उनका मनमाना नियंत्रण करने के लिए ही थी। उसकी आर्थिक–नीति के कारण भारत के प्राचीन से प्राचीनतर उद्योग और शिल्प का नाश हो गया। परिणामस्वरूप कृषि पर बोझ बढ़ता गया, जिससे भारत की अर्थब्यवस्था असंतुलित हो गयी। औद्योगिकीकरण के कारण पूँजीवादी मनोवृत्ति का उदय हुआ और देश की सारी सम्पदा कुछ एक हाथों में सिमट गयी।

नागार्जुन को भारतीय ग्रामों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति का विशद अनुभव था। इसीलिए उनके उपन्यासों में श्रमिकों की अपेक्षा कृषकों का अधिक चित्रण हुआ है। फिर भी उनके उपन्यासों में कतिपय स्थल मिल जायेगें जो मिल व कारखानों व उसमें

---

[1] नागार्जुन–दुखमोचन० ७७

हडताल से उत्पन्न समस्याओं के चित्रण करते दिखाई देते हैं। उनके उपन्यास 'इमरतिया', 'दुखमोचन' और 'हीरक–जयंती' में इस संघर्ष का व्यापक चित्रण मिल जायेगा। 'जमनिया के बाबा' उपन्यास का वर्णन दृष्टब्य है– 'चीनी के कारखाने में लाल झण्डे वालों ने हड़ताल कर दी है। पचास–पचपन मजदूर पकड़े गये हैं। पिछली रात बडे देर तक नारे लगते रहे। जेलर से लेकर लेबर मिनिस्टर तक को मुर्दा बनाया जाता रहा। नौजवानों के गले में जोर बहुत था, जेलर को आखिर झुकना पड़ा। हड़ताली हवालातियों की मांग जेलर को मंजूर करनी पड़ी। जमात में बड़ी ताकत होती है न ? और कहीं उस ताकत के पीछे पढ़े–लिखे समझदार लोगों की सूझ–बूझ भी हुई तो फिर क्या कहना ?

जमनिया की फैक्ट्री में मजदूरों ने दो साल पहले भी हड़ताल कर दी थी, लेकिन वहाँ लाल झंडा नहीं था, तिरंगा था। दो रोज बाद समझौता हो गया था, उसमें किसी को जेल न जाना पड़ा। लाल झंडे वाले जिद्दी होते हैं। झंडा उठा लेंगें तो परेशान कर देगे, मिल वालों की नाक का पानी निकाल देगे।''[1] इस संघर्ष का मूल कारण परिश्रम के अनुसार पारिश्रमिक न मिलना। उद्योगपति वर्ग सरकार और पुलिस का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष समर्थन पाकर ही मजदूरों की वाजिब माँगों को टालते रहते है। और कभी एक बहाना बनाकर, कभी दूसरा बहाना बनाकर, शोषण की प्रक्रिया को बदलते रहते, उसको समृद्ध करते रहते है। और जब श्रमिक वर्ग अपनी माँगों के समर्थन में हड़ताल का आह्वान करता है और यहॉ से संघर्ष की शुरूआत हो जाती है।

'दुखमोचन' उपन्यास में नागार्जुन शुरू से ही सर्वहारा वर्ग की अंतर्राष्ट्रीय शक्ति के प्रति आश्वस्त है। दुखमोचन का नित्या बाबू से यह कथन 'चाचा लंदन में आजकल बड़ी अशांति है। जहाजी मजदूर हजारों की तादाद् में हड़ताल करने वाले है, समूचा शहर उनका साथ देगा।'' साम्यवाद का स्वभाव तथा पद्धति सबसे अधिक स्पष्ट रूप से

---

[1] नागार्जुन –जमनिया के बाबा पृ०६८

क्रांतिकारी है। 'दुखमोचन' में नागार्जुन यह दिखाते है कि मजदूर वर्ग में अब चेतना आ गई है वह अब जागरूक हो गया है। उसे अब सर्वहारा वर्ग की अंतर्राष्ट्रीय शक्ति के प्रति विश्वास हो गया है।

हमारे देश मे सदैव से ही मिल मालिक बडे चालाक और धूर्त होते रहे हैं। वे मजदूरों की उचित मांगों पर ध्यान नहीं देते है। कई बार श्रमिक–वर्ग को अपनी उचित मांगों पर हड़ताल करने पर घाटा उठाना पड़ता है; 'अभी पिछले महीने ससुर के प्रेस में हड़ताल हो गयी थी। बारह रोज अखबार बंद रहा। संपादकों में दो मालिकों की तरफ थे, पॉच हडतालियों की तरफ। अग्रवाल की राय से ससुर महोदय ने नाम बदलकर नया अखबार निकाल दिया। दैनिक 'लोकवाणी' अब दैनिक 'जनवाणी' हो गयी। लेबर डिपार्टमेंट ने अधिक से अधिक यहीं किया कि मामले की सुनवाई के लिए तीन आदमियों को पंचायत मुकर्रर कर दी... ससुर जी को थोड़ी परेशानी जरूर हुई मगर प्रेस्टिज कायम रही। फिलहाल नुकसान तो हड़तालियों का ही हुआ।'[१]

उपर्युक्त गद्यांश से यही आशा निकल रहा है कि अब श्रमिक को संगठित होना चाहिए, अब उसे मालिकों के खिलाफ संघर्ष करना चाहिए, नहीं तो यह श्रमिक वर्ग सदैव मार खाता रहेगा। नागार्जुन का विश्वास है कि साम्यवादी दल ही एक ऐसा दल है जो श्रमिकों में चेतना जगाकर इस संघर्ष में श्रमिकों की सहायता करता है। क्योंकि इस दल की नीतियां स्पष्ट और दृढ़ हैं। कांग्रेसी समाजवादियों की तरह ढुलमुल नहीं हैं। नागार्जुन सर्वहारा–वर्ग की अपराजेय शक्ति में पूर्ण आस्था ब्यक्त करते है, और आशा भी करते है, कि मजदूर, पूँजीपति, वर्ग–संघर्ष में अंततः मजदूरों की ही विजय होगी। और एक वर्गहीन, शोषणविहीन समाज की स्थापना होगी।

वर्गीय विषमता

सामान्यतः समाज में तीन वर्ग माने जाते है। पहला होता है, उच्च वर्ग दूसरा

[१] नागार्जुन–हीरक जयंती पृ०१०६

मध्य–वर्ग, तीसरा निम्न वर्ग। उच्चवर्ग के अंतर्गत जमींदार एवं पूँजीपति आते है। इस वर्ग के लोग अवसरवादी, ऐश्वर्य लिप्सु और शोषक मनोवृत्ति के होते है। ऐसे वर्ग, समाज के बाकी वर्ग का शोषण करते हैं। नारी विषयक चिंतन में ये मध्यवर्गीय सामंती दृष्टिकोण रखते हैं।

मध्यवर्ग ऐसा वर्ग है, जो समाज का मेरूदंड होता है। इसी वर्ग में बुद्धिजीवी, चिंतक, विचारक और तकनीकी ज्ञान सम्पन्न ब्यक्ति होते हैं। देश व समाज विषयक प्रत्येक गतिविधि में ये हिस्सा लेते हैं। भारत में ऐसे वर्ग थे जिनका 'राष्ट्रीयता ही उसका धर्म' रहा है। तथा सामाजिकता "सामाजिक सुधार आंदोलन' उसका मंत्र। अन्य वर्गो की अपेक्षा वह अधिक नैतिकतावादी होता है। और नये विचारों तथा मान्यताओं को स्थापित करता है।"[१]

नागार्जुन के उपन्यासों में शहरी व ग्रामीण दोनों वर्गों का चित्रण है। गावों मं मध्य–वर्ग के बारे में डॉ० शशि भूषण सिंहल का विचार है– "गॉव में मुख्यतः दो वर्ग होते हैं। एक वर्ग साधारण श्रमिक जन का है, दूसरा वर्ग पैसे वाले, समर्थ और सम्मान पाने वाले लोगो का। इन्हें क्रमशः निम्न और उच्चवर्ग कह सकते हैं। मध्यम वर्ग का यहाँ अभाव सा रहता है।"[२] लेकिन अगर देखा जाय तो मध्यम वर्ग मुख्यतः गांवों में निवास करता है। उसका जीवन–स्तर, रहन–सहन निम्न वर्ग से थोड़ा भिन्न होता है। इस तरह डा० हेमराज 'निर्मम' के वर्गीकरण के अनुसार– (उच्च–मध्यमवर्ग) कुछ सीमा तक वैभव पूर्ण जीवन बिताता है, दूसरा (मध्य–मध्यमवर्ग) जीवन की आवश्यकताएं पूरी करता है, और तीसरा (निम्न–मध्यम वर्ग) बड़ी कठिनाई से जीवन–यापन करता है। मध्य वर्ग के तीनों स्तरों में यही क्रम है।' इस तरह से देखा जाय तो नागार्जुन के उपन्यासों में मध्यम–मध्य वर्ग एवं निम्न–मध्य वर्ग का मिश्रण भी हुआ है।

---

[१] डा० चन्डी प्रसाद जोशी– हिन्दी उपन्यास–सामाजशास्त्रीय विवेचन पृ० २३८

[२] डा० शशि भूषण सिंहल–हिन्दी उपन्यास–बदलते संदर्भ पृ० ६१

निम्न वर्ग में किसान–मजदूर आते हैं। श्रमिक–वर्ग पूँजीवादी ब्यवस्था की ही देन है। यह वर्ग श्रम करता है, परन्तु इसके बदलें में उसे पारिश्रमिक थोड़ा ही मिलता है। इसमें प्रायः लोग अशिक्षित एवं रूढ़िवादी मानसिकता के होते हैं। जैसा कि 'बाबा बटेसरनाथ' में नागार्जुन पेड़ बाबा से कहलवाते है– 'बस्ती भर में तीन ही परिवार ऐसे थे, जिन्हे दो जून तक चावल नसीब होता रहा। एक था, तर्क पंचानन का परिवार। दूसरा परिवार था, राजाबहादुर के पुरोहित का । तीसरा था, एक काश्तकार का घर। बाकी दस एक घर ऐसे थे जिनमें सिर्फ बच्चों को भात मिलता था, सो भी मचलने पर–सयाने जुन्हरी, मकई, अरहर और चनों पर निर्भर थे। महीने में एकाध–बार पतली खिचड़ी मिल जाती। बीस–पच्चीस परिवार जमीन, बेंच–बेंच कर शकरकंद से पेट की ऑच बुझाते थे, मध्यवर्ग का यही सिल–सिला था। जो निचले तबके के भी निचले स्तर पर थे उन्हें शकरकंद भी एक ही जून मिल पाती थी।'[1]

(क) उच्चवर्ग

यह वह तबका है जो समाज में अपने को सर्वोपरि समझता है। यह वर्ग सदैव ही निम्न वर्ग के बहते हुए आँसुओं के लिए उत्तरदायी रहा है, और निम्न वर्ग (किसान–मजदूर) का शोषण करता रहा है।

नागार्जुन का कहना है कि स्वतंत्रता के बाद शोषकों का मात्र अस्तित्व ही नहीं वरन् वे समाज और शासन–तंत्र को भी प्रभावित कर रहे हैं। इस वर्ग के लोग प्रायः अथाह धन–सम्पदा के स्वामी हैं। यह वह वर्ग है जो प्रायः विलासिता का जीवन जीता है। समाज सुधारों के मार्ग में रोड़ा अटकाता है। साथ ही साथ रूढियों एवं पुरानी मान्यताओं का समर्थन भी करता है। यह वही वर्ग है जिसने अग्रेंजो से साँठ–गाँठ कर जन–तंत्र या स्वतंत्रता के आंदोलन में रोड़ा बनकर खड़ा होता था। इस वर्ग का जीवन मजदूरों के श्रम पर ही अवलंबित है। 'रतिनाथ की चाची' में नागार्जुन इस वर्ग के चरित्र

---

[1] डा० हेम राज निर्मम–हिन्दी उपन्यासो में मध्यवर्ग पृ० ६१

को उद्घाटित करते हैं। यह वर्ग पैतरा कैसे बदलता है। धार्मिक ठेकेदारों को भी प्रलोभन देकर उनमें तोड़–फोड़ कराता है। वह अपनी माँ के श्राद्ध में जनता से ऐंठे गये पैसे को खुलकर खर्च करता है, और बदलें में 'धर्म दिवाकर' की उपाधि प्राप्त करता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे शोषण की अबाध परंपरा को धार्मिक आधार भी मिल जाता है। "माँ के श्राद्ध में समूचे भारत के उन पंडितों की आपने सभा बुलायी थी, जो महामहोपाध्याय की उपाधि से विभूषित थे। प्रत्येक पंडित को दुशाला और एक–एक सौ रूपयें की विदायी दी गई थी। आने–जाने का सेकेंड क्लास का खर्च। सात दिनों तक पंडितों का शास्त्रार्थ चला था। मैथिल पंडितों को अपनी भूमि पर अपने पांडित्य–प्रदर्शन का जो सुयोग मिला, वह अभूतपूर्व था। बाहर के पंडित विदा होते समय राजा बहादुर को 'धर्म दिवाकर' की गौरव पूर्ण उपाधि से सुशोभित करते गये थे।"[1]

'कुम्भीपाक' उपन्यास में मुंशी मनबोध लाल पैसे को प्रभु समझने वाला धन–लोलुप है। समय पर किराया देने वाला उसकी नजरों में शरीफ और एडवांस किराया देने वाला मसीहा है। वह अर्थात् 'मकान–मालिक' किराया–दोहन कला का आचार्य तो था ही, अपने को एक्जिक्यूटिव इंजीनियरों का नाना समझता था।"[2] 'जमनिया के बाबा' उपन्यास में नागार्जुन ने पूँजीपतियों का चित्रण करते हुए लिखा है– 'करोड़ों–अरबों की सम्पदा एक–एक सेठ के पास है, लेकिन गरीब और पिछड़े हुए हिन्दू जंगलों और पहाड़ी इलाकों में मुट्ठी भर अनाज के लिए तड़प–तड़प मर जायेंगें, महासेठ का दिल नहीं पिघलेगा।"[3] यह ह्रदयहीन वर्ग होता है। इसके पास संवेदना नहीं होती है। उनके लिए सब प्रकार के शोषण जायज हैं। वे एक रूपया देगें तो दस रूपया अपनी बही–खाता में चढ़ायेंगे। जैसा कि 'बलचनमा' उपन्यास में बलचनमा कहता है– 'बाबू के मरने पर बारह रूपये उन्होंने माँ को कर्ज दिये। बदले में सादे कागज पर अगूँठा का निशान ले लिया था।'

---

[1] नागार्जुन–रतिनाथ की चाची पृ० ८५–८६
[2] नागार्जुन–कुम्भीपाक पृ० ६
[3] नागार्जुन–बलचनमा पृ० १२–१३

'बाबा बटेसरनाथ' में तो एक दृश्य रोंगटे खड़े कर देने वाला है। एक बार जमींदार के लड़के की शादी थी, जिसमे सोलह मजदूर "एक तख्तपोश ढोये जा रहे थे, उस पर दरी और जाजिम बिछी थी। मय साज–बाज के एक रंडी उस तख्त पोश पर नाच रही थी... और राजा का बेटा ब्याह करने जा रहा था।"[1] उच्च वर्ग के शोषण और अमानवीयता की हद इससे आगे क्या हो सकती है ? इनके लिए रंडी का नाच सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक है। लेकिन बोझ के तले, दबे उन सोलह मजदूरों के लिए इनकी क्या सोंच होगी ? यही कि वे मानव नहीं वरन् यंत्र हैं, वस्तु हैं, जिन्हें जब चाहा उपभोग किया।

'नई पौध' में साठ–वर्षीय जमींदार 'चतुरा चौधरी,' चौदह–वर्षीय नव यौवना विसेसरी के यौवन का नौ सौ रूपये में सौदा करने का असफल प्रयत्न करता है।

इस प्रकार जमींदार वर्ग (उच्च वर्ग) की शोषण ही एक कभी खत्म न होने वाली महा–गाथा है, जिनके चित्र नागार्जुन के सभी उपन्यासों में दिखाई पड़ जायेगें। रामदत्त सिंह जैसे (बाबा बटेसरनाथ) जमींदार के लिए मानवीयता जैसे खेल की वस्तु हो। वह क्रूरता और अमानवीयता की इतना हद कर देते हैं, कि शोषित वर्ग की आने वाली नस्ल चुपचाप शोषण का शिकार बनती रहे। वे शत्रुमर्दन राय जैसे किसानों के ऊपर इतना अत्याचार करते हैं कि अमानवीयता भी कांप जायेगी। "....जमींदार का इशारा पाकर वह शत्रुमर्दन राय के बिल्कुल करीब पहुॅचा और हॉंडी का मुॅह खोलकर लाल चींटों का छत्ता निकाल लिया। छत्ते में डोरी लगी थी। उसने खाली हॉंडी नीचे जमीन पर रख दी और बिल–बिलाते लाल चींटों वाला आम के अधसूखे पत्तों का वह घोंसला राय जी के माथे पर टिकाया, ऊपर डोरी पकड़े रहा..... चींटे हजारों की तादाद में शत्रुमर्दन राय की देह पर फैल गये। माथा हिलाकर बेचारे ने बधे हाथों को ऊपर–ऊपर झटकने की कोशिश की कि पीठ पर कोड़े पड़ा–सपाक! स्पाक! चार बार!! ...और जिस समय शत्रुमर्दन राय

---

[1] नागार्जुन–बाबा बटेसरनाथ पृ० ४६

पर यह बर्बरता ढाई जा रही थी; ठीक उसी वक्त महलों में राधा–कृष्ण की युगल–जोड़ी के सामने मीठी आवाज वाले एक पुराण पाठी महानुभाव राजमाता साहिबा को श्रीमद्भागवत की रास–पंचाध्यायी सुना रहे थे।"[1]

बलचनमा में तो जमींदार खान बहादुर अपने गुडों को भेजकर बलचनमा को पिटवाते है और वह बेहोश होकर जमीन पर लुढ़क गया। बलचनमा कहता है– "मैं बॅधा था और जाल में सभी अंग उलझे हुए थे। हॉ, दॉतों से एक की कलाई को चॉपे हुए था। पहले ने अब मेरे सिर पर जोर से लाठी मारी – एक नहीं, दो बार..... मैं बेहोश होकर जमीन पर लुढ़क गया।"[२] बलचनमा में ही अन्यत्र एक जगह जमींदार खान बहादुर की क्रूरता दिखलाई पड़ती है। वर्षों से जोती–बोयी जाने वीली जमीन अन्य लोभी किसानों को चुपचाप धन लेकर बंदोबस्त करते है। लेकिन मजदूर और किसान भी जाग रहे है। अतः वर्ग–संघर्ष अनिवार्य परिणाम है। धारा ५४४ लगा दी जाती है। और अब हरी–भरी फसलें सरकारी लाल साफे के पहरे में फलने–फूलने लगी है– 'अगले अगहन में फसल की जो छीना–झपटी हुई उसमें एक किसान की लाश गिरी। गंडासा जिसने मारा था वह खान बहादुर का कोचवान था। पुलिस टुकुर–टुकुर ताकती रही और हत्यारा लापता हो गया। उल्टे दफा १४४ को तोड़ने के नाम पर दो–ढाई दर्जन किसानों की गिरफ्तारी हुई। उन पर कई तरह के मुकदमें चलाये गये। फसल लेकिन किसानों के घर पहुॅच गयी थी।"[3]

'वरूण के बेटे' उपन्यास में किसानों का वार्षिक सम्मेलन होता है, और वे एक प्रस्ताव पास करके जमींदारो को आगाह करते है कि 'वे युग की आवाज को अनसुनी न करें, मलाही–गोंढ़ियारी के मछुओं को गरोखर से मछलियाँ निकालने के पुश्तैनी हकों से वंचित करने की उनकी कोई भी साजिश कामयाब नहीं होगी। रोजी–रोटी के अपने

---

[1] नागार्जुन–बाबा बटेसरनाथ पृ० ५१
[२] नागार्जुन–बलचनमा पृ० १७२
[3] नागार्जुन–बलचनमा पृ० १००

साधनों की रक्षा के लिए संघर्ष करने वाले मछुए असहाय नहीं हैं, उन्हें आम किसानों का और खेत–मजदूरों का सक्रिय समर्थन प्राप्त होगा.....''[1] नागार्जुन यह बताना चाहते हैं कि किसान–मजदूर अब जाग गया है, वह अपने ऊपर ढाये जुल्म को बर्दाश्त नहीं करेगा। वह भी अब हक की लड़ाई लड़ेगा।

इस प्रकार पूँजीपति का एक सम्पूर्ण–चरित्र नागार्जुन के उपन्यासों में मिलता है। पूँजीपति वर्ग से समाज का निम्न तबका किस कदर त्रस्त है वह बलचनमा के निम्न कथन से ही द्योतित होता है–''न जाने कै घड़ा आँसू से हमारा वचपन सींचा गया था।''[2]

(ख) मध्यवर्ग

नागार्जुन के उपन्यासों में मध्यवर्ग को एक प्रगतिशील चेतना–सम्पन्न वर्ग के रूप में चित्रित किया गया है। उनके उपन्यासों में यथा– 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'बाबा बटेसरनाथ,' 'नई पौध,' 'दुखमोचन' तथा 'उग्रतारा,' 'कुम्भीपाक' उपन्यासों मे मध्यवर्ग का एक चित्र खीचा गया है। मध्यवर्ग के पात्र ग्रामीण जनता में चेतना और प्रगति के बीज–बपन करते दिखाई देते है। गॉव की नयी पीढी, जर्जर रूढ़ि को ध्वंस करती हुई अग्रगामी चेतना का संचार करती है। नागार्जुन के इन उपन्यासों में मध्यवर्ग के पात्र विभिन्न राजनीतिक पार्टियों की कार्य प्रणाली एवं तथा कथित जन नेताओं के व्यक्तिगत–जीवन की भी आलोचना करते है। 'नागार्जुन के अनुसार रूढ़ि ग्रस्त जर्जरित ग्रामीण समाज–ब्यवस्था एवं मान्यताओं को ध्वस्त करके ही वर्गहीन ग्राम समाज की स्थापना की जा सकती है।''[3]

'रतिनाथ की चाची' बिहार प्राँत के ग्रामीण समाज के मध्य–वर्ग की जीवंत गाथा है। जयनाथ, जय किशोर, रतिनाथ, उमानाथ, वैद्यनाथ, गौरी तथा गौरी की माँ मध्यवर्ग

---

[1] नागार्जुन–बलचनमा पृ० १०६

[2] डा० मजुलता सिंह–हिन्दी उपन्यासों मे मध्यवर्ग पृ० ३४५

[3] नागार्जुन–रतिनाथ की चाची पृ० ०२५

से सम्बन्धित पात्र हैं। जयनाथ मध्यवर्गीय ग्रामीण जीवन के उन कुलीन ब्राह्मणों का प्रतिनिधित्व करते दिखाई पड़ते है। जो वासना की पूर्ति के लिए नारी का उपभोग अंधेरे में तो कर लेते हैं, परंतु प्रत्यक्ष रूप से, साहस के साथ सामाजिक उत्तरदायित्व लेने से घबराते हैं। जयनाथ की कामातुर इच्छाओं की पूर्ति का शिकार गौरी बनती है, जो स्वयं अपने जीवन मे वैधब्य का कलंक ले लेती है। इस उपन्यास में मध्यवर्ग की सामाजिक समस्याओं का विस्तार से वर्णन हुआ है।

ग्रामीण जीवन मे अनमेल विवाह की समस्या मध्यवर्ग के परिवारों में प्रधान रूप से मिलती है। इस अनमेल विवाह के कारण कितने मध्यवर्गीय परिवार अशान्तिपूर्ण जीवन बिताते हैं, इसका उदाहरण बैद्यनाथ और गौरी है। ग्रामीण जीवन में गौरी जैसी नारियाँ जीवन–भर भाग्य और माँ–बाप को कोसती रहती है। लेखक ने ग्रामीण–मध्यवर्ग की इस समस्या की ओर संकेत करते हुए लिखा है– 'यह लोग औसत दर्जे के मध्य वित्त की एक लड़की को अपने यहॉ ले जाकर उसे नाना प्रकार के अभाव, अभियोगों की परिधि में डाल देते हैं। लड़की जिंदगी–भर अपने मां–बाप को उलाहना देती रहती है।'[1]

इस उपन्यास में मध्यवर्ग का जयकिशोर ही प्रगतिशील पात्र हैं वह शिक्षित, विवेकशील व मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण हृदय का ब्यक्ति है। वह अपनी बहिन गौरी के जीवन की कहानी सुनकर भी उससे दुर्ब्यवहार नहीं करता, वरन् गौरी के कार्यो को मानवीय दुर्बलता मानता है। 'गौरी के उस कुकांड का सारा समाचार जयकिशोर से किसी ने बारम्बार कहा, परन्तु वह उत्तेजित नहीं हुए। समाज में एक तरूण–विधवा को किन परिस्थितियों का मुकाबला करना पड़ता है, इस बात को वह भली–भॉति समझते थे।'[2] इस प्रकार समाज की जर्जर परम्पराओं, नारी–जीवन की विवशताओं को समझते

---

[1] डा० मंजू लता सिंह–हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग पृ० ३४६
[2] नागार्जुन–बलचनमा पृ० ६२

हुए गौरी का कभी भी अपमान नहीं करते। अपनी समझदारी और प्रगति का परिचय देकर ग्रामीण जीवन में नये मूल्यों की स्थापना करते हैं।"[1]

बलचनमा उपन्यास में मध्यवर्ग के यथार्थ चित्रण की दृष्टि से फूल बाबू, मोहन बाबू, राधा बाबू आदि महत्वपूर्ण पात्र हैं। ये पात्र मध्यवर्गीय चेतना के प्रबल वाहक और समर्थक हैं। कांग्रेस तथा सोशलिस्ट किस प्रकार से स्वराज्य के लिए प्रयत्नशील है, इसका वर्णन बलचनमा इन स्वराजी बाबुओं के सम्पर्क में रह कर करता है। फूलबाबू कांग्रेसी है और गॉधी जी से प्रभावित है। वे नमक आन्दोलन में जेल जाते हैं परन्तु बलचनमा देखता है फूल बाबू निजी स्वार्थ को कभी नहीं भूलते है। बलचनमा उनके बारे में बताता है– 'सन तीस–बत्तीस का जमाना था, गांधी जी के हुकुम से बाबू लोग गिरफ्तार हो रहे थे। हमारे फूल बाबू को भी महात्मा गांधी की हवा लगी थी।"

फूलबाबू के मित्र महेन बाबू भी कांग्रेसी हैं और स्वराज्य के लिए प्रयत्नशील हैं। बलचनमा मध्यवर्ग के इन कार्यकर्त्ताओं में फैली हुई 'जी हजूरी' का उपहास उड़ाता है, वह कहता है– "सोराजी बाबुओं में से सैकड़ो में से नब्बे ऐसे ही मिले है जिनको 'जी सरकार' कहलाने में बड़ा निम्मन (अच्छा) बुझाता है । न कहो तो गुर्रा–गुर्राकर ताकते रहेंगे। जिनगी भर जिनके काम 'मालिक–मालिक', 'सरकार–सरकार', 'हजूर–हुजूर' सुनते आये हैं उनके लिए इन शब्दों का बड़ा महातम है।" बाबा बटेसरनाथ उपन्यास में जैकिसुन, वीरभद्र, जीवनाथ मध्यवर्ग की नयी पीढ़ी के नवयुवक हैं। जो संयुक्त संगठन की शक्ति में विश्वास रखते हैं। तथा संगठन की इसी शक्ति से ग्राम में नवीन प्रगतिशील विचारों का प्रचार करते हैं। गांव के ये शिक्षित युवक यह अनुभव करते हैं कि देश का कल्याण किसी भी राजनीतिक पार्टी के बस का नही है और पूँजीपतियों तथा सत्ताधारियों से मोर्चा लेने के लिए उन्हें स्वतः ही प्रयत्न करना पड़ेगा । इसी उपन्यास में

[1] नागार्जुन–बलचनमा पृ० १०३

वीरभद्र एक शिक्षित युवक है, जो ग्राम की नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। वह राजनीतिक आंदोलनों में भाग लेकर कई बार जेल हो आया है।

टुनाई पाठक और जय नारायण के विरोध में जीवनाथ और जैकिसुन, वीरभद्र के नेतृत्व में ही संगठन बनाते है। बाबू श्याम सुंदर दास वकील इस संगठन के निर्माण में उनकी सहायता करते है। ये युवक कॉग्रेंस और सोशलिस्ट दोनो ही पार्टियों का विरोध करते है। स्वराज्य प्राप्त होने पर कांग्रेंस तथा अन्य राजनीतिक दलों को ब्यक्तिगत लाभ हुआ है। वे बताते हैं कि जिस आजादी को पाने के लिए हजारों परिवार नष्ट हुए, उसका परिणाम मिला कुछ इने–गिने लोगो को– 'आजादी; फिः !! आजादी मिली है हमारे उग्रमोहन बाबू को, कुलानन्द दास को,...... कांग्रेस के टिकट पर जो चुने गए है, उन्हें मिली है आजादी। मिनिस्टरों को तो और ऊँचे दरजे की आजादी मिली है। सेक्रेटेरियट के बड़े साहबों को भी आजादी का फायदा पहुँचा है।"[1]

ग्राम की उन्नति के लिए ये ग्रामीण युवक प्रयत्नशील है। वट वृक्ष इस नई पीढ़ी को आशीर्वाद देता है और उसके आशीर्वाद को पाकर ये युवक कार्य मे लग जाते हैं। ये मध्यवर्गीय पात्र गॉव की उन्नति को अपना लक्ष्य बनाते हैं।

'नई पौध' उपन्यास में दिगम्बर तथा वाचस्पति मध्यवर्ग के शिक्षित युवक है। सामाजिक और राजनीतिक चेतना फैलाने का श्रेय इन्हीं दोनों नवयुवकों को है। ये युवक सामाजिक कुरीतियों का डटकर विरोध करते हैं और विसेसरी का अनमेल विवाह चतुरा चौधरी से नहीं होने देते। दिगम्बर को यह प्रगतिशीलता अपने पिता से प्राप्त हुई है। दिगम्बर के पिता नीलकण्ठ जी राष्ट्रीय आन्दोलनों में जेल गए थे और उनमें राजनीतिक तथा सामाजिक चेतना थी।। वह गॉव में 'बम–पार्टी' (नव–युवक–दल) स्थापित करता है और ग्रामीण समस्याओं को प्रगतिशील विचारों से सुलझाता है। वह अपने मित्र वाचस्पति को विसेसरी के विवाह के लिए राजी कर लेता है।

---

[1] शिवनारायण श्रीवास्तव–हिन्दी उपन्यास पृ२८७

वाचस्पति झा मध्यवर्ग का शिक्षित, सभ्य, प्रगतिशील विचारों का नवयुवक है। उसमें केवल राजनीतिक चेतना ही नहीं है, अपितु समाज सुधार की भावना भी उसमें बहुत है। शिवनारायण श्रीवास्तव के अनुसार – 'नई पौध' अपेक्षाकृत अधिक उदार एवं मानवीय दृष्टि लेकर गॉव के रंगमंच पर अवतरित हुई है और सामाजिक अन्याय और अत्याचार के विरोध में प्रयत्नशील है। एक गॉव की छोटी सी पृष्ठभूमि पर प्राचीन और नवीन का यह संघर्ष बड़ी ही सजीवता से चित्रित किया गया है।"[१]

इस प्रकार 'नई पौध' उपन्यास में मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले नवयुवकों को नवीन प्रगतिशील चेतना का वाहक और अन्याय के प्रति सशक्त विद्रोह करने वाले के रूप में चित्रित किया गया है। जर्जर रूढ़ियों तथा पुरानी सामाजिक मान्यताओं का खण्डन और विरोध नई पौध का मुख्य उद्देश्य है।

'दुखमोचन' उपन्यास में दुखमोचन, टेकनाथ, कपिल, माया, लीलाधर मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। इस उपन्यास का नायक दुखमोचन अपने सशक्त चरित्र से ग्रामीणों को प्रभावित करते हैं, और ग्रामवासियों में सहयोग, सदाचार और उदारता जैसे गुणों की अभिवृद्धि करता है और ग्रामवासियों के प्रति दुखमोचन के मन में सहानुभूति हैं। टेकनाथ, लीलाधर, कपिल आदि दुखमोचन से प्रेरणा पाकर ग्राम–सुधार के कार्यों में लग जाते हैं। लीलाधर दुखमोचन से स्वीकार करता है– "आज तक जीवन में कहीं कोई जिम्मेदारी मैने नही उठायी। हमेशा भागता रहा हूँ। अब वह तुम हो कि अपनी क्षमता के प्रति खोई हुई आस्था मेरे अन्दर फिर वापिस लौट आई है।"[२]

लीलाधर के अलावा कपिल और माया भी दुखमोचन से प्रभावित हैं। माया विधवा है, और विधवा का विवाह कराना ग्रामीण जीवन में अत्यन्त कठिन होता है। दुखमोचन

---

[१] नागार्जुन–दुखमोचन पृ१६०
[२] नागार्जुन–उग्रतारा पृ०३६

सबका विरोध सहता है, और माया का असवर्ण पुनर्निवाह कराने में सफल होता है। इस प्रकार दुखमोचन कपिल तथा माया के विवाह में सहायक होता है।

दुखमोचन ने ही टमका–कोइली ग्राम में ब्याप्त रूढ़ियों, कुरीतियों के खिलाफ मोर्चा बनाया। वह मध्यम वर्ग का आदर्श पात्र हैं। उसके जीवन का आदर्श केवल मानव–मात्र का हित है। गॉव का उज्ज्वल भविष्य का स्वप्न उसके सामने है। वह ग्रामीणों से कहता है– "आप सभी को अपनी–अपनी शक्ति के अनुसार कभी–न–कभी काम करना पड़ेगा। आगे हम बॉध तैयार करेंगे; पोखरों की मरम्मत करेगें, कुओं की खुदाई करेंगे, गॉव की तरक्की के दसों काम होंगे। एक जुट होकर हमें यह सब काम करना होगा।"[1]

इस प्रकार मध्यवर्ग के नायक (चरित्र) दुखमोचन के माध्यम से ग्रामीण जीवन के विकास तथा उज्ज्वल भविष्य का स्वप्न दुखमोचन उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। 'उग्रतारा' उपन्यास में कामेश्वर, उग्रतारा, नर्मदेश्वर, भाभी आदि मध्यवर्ग के पात्र हैं। कामेश्वर तथा उसकी भाभी नई चेतना के प्रतीक हैं। जो उग्रतारा का उद्धार कर सामाजिक समस्याओं के लिए समाधान प्रस्तुत करते हैं। नर्मदेश्वर तथा कामेश्वर दोनो युवकों के लिए उनकी भाभी ड़ी प्रेरणास्पद ब्यक्तित्व है। जिनसे प्रेरणा व प्रोत्साहन पाकर; उनके प्रगतिशील उदार विचारों के फलस्वरूप ही उगनी और कामेश्वर सभी बाधाओं को दूर कर विवाह–बंधन में बंध जाते हैं।

उगनी जैसी विधवा के लिए कामेश्वर के मन में उसके प्रति प्रेम का बीज भाभी ही बोती है। 'भाभी बड़ी दिलेर नवयुवती थी। ज्यादा तो नहीं, मैट्रिक तक पढ़ी–लिखी थी। उसके चाचा राजनीतिक पार्टी के अच्छे कार्यकर्त्ता थे। उन्होंने अपनी लाडली भतीजी के अन्दर युगोचित संस्कार काफी मात्रा में डाले थे।'[2]

---

[1] नागार्जुन–उग्रतारा पृ०३०
[2] नागार्जुन–उग्रतारा पृ०३६

नर्मदेश्वर गॉव के अधेड़ पुरूषों की कामुकता की समस्या को भाभी के सामने रखता है और पिस्तौल के माध्यम से उसका हल सुलझाता है। भाभी बडे ही युक्तिपूर्ण ढंग से अपने देवर नर्मदेश्वर से कहती है– "पिस्तौल क्या करोगे ? छिछोरे मन का इलाज कारतूस की पेटियों से नहीं होगा। स्त्री–पुरूषों में समान रूप से समझदारी पैदा होगी और मनोरंजन के कई और साधन निकल आयेगे तभी ब्यभिचार घटेगा। देहात में खाते–पीते परिवारों के अधेड़ भारी मुसीबत पैदा करते है। उगनी जैसी लड़कियों के लिए ज्यादा संकट उन्हीं की तरफ से आता है। दूसरा संकट है, डरपोक नौजवानों की छिछली सहानुभूति। इन संकटो का मुकाबला हम पिस्तौल से नहीं कर सकते।"[१]

भाभी के माध्यम से निम्न मध्यम वर्ग की शिक्षित युवती का सामाजिक जीवन में योगदान कथाकार ने चित्रित किया है।

'कुम्भीपाक' उपन्यास में राय साहब और निर्मला मध्यवर्ग के प्रगतिशील पात्र हैं। यह हिन्दुओं के माने हुए नरको में से एक कुंभीपाक है। जहॉ प्राणी मृत्यु के बाद आता है। समाज के भ्रष्ट भेड़ियों ने अपने मनोरंजन के लिए जिन युवतियों को जीते–जी कुंभीपाक में डाल रखा है, उन्हीं की चर्चा है। नागार्जुन इसमें भोगवादी और छलवादी संस्कृति की तस्वीर खींचते हैं। तिलकधारी दास जैसे भ्रष्ट और स्वार्थी प्रकाशक जानकी बाबू जैसे मंत्री महोदय, जो साहित्यकारों के निबंधो को अपने नाम से प्रकाशित कराते है, महिम जैसा शराबी नीरू जैसी शोख चुलबुली नारी, चंपा ओर शर्मा जैसे स्त्रियों के यौवन के सौदागर, निर्मला और राय साहब जैसे समाज–सुधारकों के चित्र देखे जा सकते हैं। भ्रष्टता की पराकाष्ठा का दर्पण यह उपन्यास है।

इस प्रकार नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा,' 'नई पौध,' 'बाबा बटेसरनाथ,' 'दुखमोचन,' 'उग्रतारा,' 'कुम्भीपाक' उपन्यासों में ग्रामीण मध्यवर्ग के जीवन की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक समस्याओं को विस्तार से चित्रित किया

---

[१] नागार्जुन–जमनिया के बाबा पृ०३७

गया हैं। सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत प्रधान रूप से अनमेल विवाह, बृद्ध विवाह, विधवा विवाह अन्तर्जातीय विवाह, कुलीनता आदि की समस्याओं का चित्रण है। इनके मध्यवर्ग के अधिकांश पात्र प्रगतिशील विचारों के है और सामाजिक परिवर्तन में सक्रिय भूमिका अदा करते हैं।

(ग).निम्न वर्ग

नागार्जुन का जीवन–अनुभव निम्न वर्गीय–समाज के जीवन अनुभवों से घनिष्ठ रूप से संपृक्त है।। उनके उपन्यास का 'निम्नवर्ग', सदियों से अभाव–अभियोगों से जूझ रहा है। एक ओर यदि यह सामाजिक ढाँचे के बोझ से दबा रहा है, तो दूसरी ओर उच्च्व वर्ग ने आतंक फैलाकर निरंतर इसके रक्त को चूसा है। गरीबी की मार से पीड़ित ये कृषक--मजदूर कुली--बनिहार सभी ओर से शोषण के शिकार रहे हैं। हाड़ मांस के इन जीवों के परिश्रम करने पर भी दो जून की रोटी नसीब नहीं होती। जैसा कि विश्वंभर मानव भी कहते है– "विशेष रूप से किसान और मजदूर को इनका एक उपन्यास 'वरूण के बेटे' मछुआरों के जीवन को लेकर चलता है। इन असहाय व्यक्तियों के विरूद्ध जमींदारों के अत्याचारों के कारण, शोषित वर्ग को आर्थिक समस्या, ये भी उभरकर आँखों के सामने आती है। अपने 'बलचनमा' नामक उपन्यास में उन्होंने जमींदारों की भैस चराने वाले एक पितृहीन अहीर मजदूर के जीवन का विकास विभिन्न परिस्थितियों में दिखाया है। मिथिला प्रदेश में इन ग्रामीणों का जीवन सामाजिक विवशताओं, आर्थिक कठिनाइयों, अप्राकृतिक आचरण तथा क्षुद्र ब्यवहारों से उत्पन्न घुटन के कारण दयनीय और नाटकीय हो उठा है। पर उपन्यासकार की विकसित चेतना ने उन्हें स्वस्थ दृष्टि प्रदान कर लोक–मंगल के मार्ग पर डालने का श्लाघनीय प्रयत्न किया है।"[१]

निम्नवर्ग से सम्बन्ध रखने वाले पात्र 'कुल्ली राउत' (रतिनाथ की चाची),

---

[१] विश्वंभर मानव–हिन्दी साहित्य का सर्वेक्षण (गद्य खंड) पृ७१

'बलचनमा' (बलचनमा), 'शत्रुमर्दन राय' (बाबा बटेसरनाथ), 'हरखू की माँ' (दुखमोचन), 'खुरखुन' और 'गौनड़' (बरूण के बेटे) हैं। कुल्ली राउत और बलचनमा ऐसे पात्र है, जिनका जीवन जमींदार की जूठन खाकर एवं उनका उतरन पहिनकर ब्यतीत होता है। रतिनाथ का कुल्ली राउत के बारे मे यह कथन– "हमारी जूठन खाकर, हमारी पहिरन पहनकर इसके बच्चे पलते हैं। उन्हें कभी स्कूल और पाठशाला जाने का अवसर नहीं मिलता।"[१] इसी प्रकार बलचनमा भी कहता है कि वह मालिक का जूठन खाता था – "वह जब खुश होती तो सुखा या बासी पकवान, सड़ा आम, फटे दूध का बदबूदार छेना या जूठन की बची हुई कड़वी तरकारी देती "[२] अन्यत्र 'दही जब बहुत खट्टा हो जाता था, उससे बदबू आने लगती थी और वह उनके अपने या किसी पड़ोसी के खाने लायक न रह जाता, तब मुझे मिलता।"[३]....... हमारे तरफ छोटी जाति वाले बड़ी जात वालों का जूठन खुलकर खाते थे...बचपन में मालिक लोगो की बहुत जूठन मैंने खायी है। बल्कि यो कहूँ कि अच्छी चीज जो भी मैंने खाई होगी वह बाबू लोगों की जूठन ही रही होगी।"[४]

यह समस्त निम्न वर्ग के पीड़ित लोगों की ब्यथा को प्रकट करता है। बलचनमा की माँ तथा दादी आम की गुठली का गूदा मसल–मसलकर फाँकती हैं। उनके पास ओढ़ने–बिछाने का वस्त्र भी नहीं है। ठंड से बचने के लिए, आग तापने को लकड़िया न होने पर, वे बकरी की सूखी मीगंड़िया जलाकर रात काटती है। "जाड़े की एक–एक रात हमारे लिए प्रलय की डुगडुगी बजाती आती थी... गुदड़ी–कथड़ी भी ओढ़ने को अगर काफी न हो तो पूस–माघ की ठंडी रात यमराज की बहिन साबित होती है।"[५]

---

[१] नागार्जुन–रतिनाथ की चाची पृ०५१
[२] नागार्जुन–बलचनमा पृ०६
[३] नागार्जुन–बलचनमा पृ०१०
[४] नागार्जुन–बलचनमा पृ०१८
[५] नागार्जुन–बलचनमा पृ०१३

'बरूण के बेटे'के खुरखुन के बच्चे मछली–सेंक–सेंक कर खाते हैं। खुरखुन और गोनड़ गरीब मछुएं हैं। इन सब का जीवन अभावों में बीतता है। इनको सब्जी बनाने के लिए तेल तक नसीब नहीं होता। इन सबके जीवन का ताना–बाना ही आभावों के तारों से बुना हुआ है।

नागार्जुन की सहानुभूति निम्नवर्ग के प्रति रही है। उनकी सहानुभूति आकाश कुसुम नहीं है, वह यथार्थता की सोंच रखते हैं। वे निम्नवर्ग की यथार्थ स्थितियों का अपने उपन्यासों में अंकन कर उसके निराकरण के लिए प्रभावशाली उपाय भी सुझाते है। वे सभी कृषक–मजदूर वर्ग का उच्चवर्ग के शोषण व अन्याय के विरूद्ध संगठित होकर प्रतिकार करने का आह्वान करते हैं। "किसानों को जमींदारों के चंगुल से निकालने के लिए संघर्ष करना होगा,"[१] वे कहते हैं– "किसानों की आजादी आसमान से उतरकर नहीं आयेगी, वह परगट होगी नीचे–जुती धरती के भुरभुरे ढेलों को फोड़कर।"[२]

बलचनमा शोषण का प्रतिनिधि पात्र के रूप में उपस्थित होता है। उसका अपना प्रामाणिक अनुभव है कि 'प्रत्येक गरीब वर्ग का जीवन उच्चवर्ग की गालियॉं, पिटाई, तिरस्कार, अपमान, दुतकार व फटकार खाता हुआ आगे खिसकता रहता है।"[३] उसे भली प्रकार ज्ञात है कि 'फूलबाबू के बाप ऐसे ही गरीबों का शोषण कर औकात वाले बने है।"[४] उसके छोटे मालिक को चौकोर कलम बाग के लिए बलचनमा का खेत चाहिए। 'चौकोर कलम बाग के लिए उनको हमारा दो कट्ठा खेत चाहिए था और हमें चाहिए अपने चौकोर पेट के लिए मुट्ठी भर दाना।"[५]

यह उसके ह्रदय में धधकती विद्रोह की भावना है। उसके ये शब्द उस युग के देश के सम्पूर्ण उस वर्ग के किसानो व मजदूरों के शब्द हैं, जो वर्ग श्रम कर आजीविका

---

[१] नागार्जुन–बलचनमा पृ०१३
[२] नागार्जुन–बलचनमा पृ०१७२
[३] नागार्जुन–बलचनमा पृ०३१
[४] नागार्जुन–बलचनमा पृ०४६
[५] नागार्जुन–बलचनमा पृ०१६

अर्जित करना चाहता है लेकिन शोषण के कारण भर–पेट भोजन से भी वंचित कर दिया गया है।

नागार्जुन के निम्न वर्ग के सभी पात्र भारत की निर्धन वर्ग की आत्मा के प्रवक्ता थे। ये पात्र गरीबी, बेकारी, अभावों और दीनता की असह्य मार सहते हुए भी परिश्रमी, ईमानदार और श्रेष्ठ आदर्शो के प्रति निष्ठावान हैं। इनके हृदय में अपने वर्ग के मानवता के लिए असीम संवेदना है ।

'वरूण के बेटे' में खुरखुन अपनी जान की बाजी लगाकर नरभक्षी मगरमच्छ को बाहर निकालता है। और मारकर लोगो को भयमुक्त करता है। वह बाढ़–ग्रस्त लोगो के लिए रेल गाड़ी के डिब्बों में रहने का उपक्रम कर उनकी वेदना को कम करने मे सहयोग देता है। 'दुखमोचन'. में हरखू की मां आजीवन गरीबों का कष्ट सहते हुए, मानवीय गुणों का परित्याग नहीं करती।'बाबा बाटेसरनाथ' के शत्रुमर्दन राय जमींदार रामदत्त सिंह से उधार तीस रूपये कर्ज से छुटकारा पाने के लिए कितने जलालते झेलता है, और अन्त में मौत के आगोश में समा जाता है। अंत तक ईमानदारी का दामन नही छोड़ता।

इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में वर्गीय चेतना के तत्व अनवरत पाये जाते है। यों कहे कि इन्ही वर्गीय (उच्चवर्ग, मध्यवगर्ग, निम्नवर्ग) से उपन्यास की बुनावट है।

सामाजिक तत्व

नागार्जुन के उपन्यासों में सामाजिकता के तत्व महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। नागार्जुन ने सत्य से साक्षात्कार किया था। उनके कथन में पर्याप्त गहराई एवं अनुभूति की सघनता है। नेमिचन्द जैन के शब्दों में जिस जीवन के बारे में उन्होंने लिखा है,उसकी सच्ची मार्मिक अनुभूति उन्हें है। यह विशेषता उन्हें हिन्दी के बहुत से लेखकों से अलग करती है......"[१]

---

[१] नेमि चंद्र जैन– अधूरे साक्षात्कार पृ० १३७

समाज की नब्ज को उन्होंने पकड़ा था। वे उसी समाज के थे जिस समाज की रचना है। वे अगर गॉव में है तो वहां उनका समाज है। अगर शहर में हैं तो वहां उनका समाज बोलेगा। जिस प्रकार की सामाजिक दशाओं का चित्रण नागार्जुन ने अपने कथा–साहित्य में किया है, उसे देखकर ऐसा लगता है कि आज का समाज अनेक सामाजिक–बिसंगतियों से ग्रस्त है। उनके अनुसार भारतीय जन–जीवन में सबसे बड़ी विसंगतियां–जाति प्रथा और छुआछूत है। इनका घातक विष राष्ट्र को सतत् रूप से ह्रासोन्मुख बना रहा है।

(क) ब्राह्मणवर्ग एवं छुआछूत

वर्णाश्रम धर्म से उपजी ब्यवस्था जिस प्रकार का तांडव समाज में करती है, उसका हूबहू रेखांकन नागार्जुन के उपन्यासों में दिखाई पड़ता है। समाज में सर्वोच्च स्थान ब्राह्मणों को मिला है। उनको दया, धर्म, परोपकार आदि गुणों से सम्पन्न माना जाता है। लेकिन धार्मिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों को इस वर्ग ने सर्वाधिक प्रश्रय दिया।

नागार्जुन ने मैथिल–समाज के ब्राह्मणों का जो लेखा–जोखा प्रस्तुत किया है, उससे प्रतीत होता है कि यह वर्ग जिसके हाथ में धर्म की बागडोर है और जो अपने को ब्राह्मण धर्म का ठेकेदार मानता है, वह अत्यंत भ्रष्ट हो चुका है। नागार्जुन का यह मत दृढ़ है, कि इस वर्ग का धर्म स्वार्थ–सिद्धि का साधन बनकर रह गया है। यह वर्ग सामाजिक विषमता और विकृतियों को प्रश्रय देकर अपने निहित–स्वार्थो की अबाध पूर्ति में रत है।

'रतिनाथ की चाची' में जयनाथ, भोला पंडित और बुच्चन पाठक तथा 'नई पौध' में खोखा पण्डित जैसे रूढ़िवादी ब्राह्मण समाज के प्रतिनिधि पात्र है। वे अपने वर्चस्व को, अपनी ज्ञानात्मक सत्ता को, बनाये रखने के लिए दूसरों को ज्ञान देने से परहेज करते हैं। 'रतिनाथ की चाची' में निम्नवर्ग का कुल्ली राउत कुछ मंत्र सीख लेता है। जब

इसका पता जयनाथ को चलता है तो वह फुफकार उठता है – "साले की चमड़ी उधेड लूंगा। शूद्र है तो शूद्र की भॉति रहे।"[१] वे अपनी संध्या–पाठ–पूजा सब अपने समय को देखकर करते हैं। रतिनाथ ने जब तालाब किनारे जल्दी–जल्दी संध्या की तो कुल्ली राउत ने टोका 'बबुआ तुम नील माधव उपाध्याय के वंशधर हो फिर अपने कर्म–धर्म में इतनी हड़बड़ी क्यों दिखाते हो ? कहीं कोई जान जाएगा तो शुभंकरपुर की हॅसी होगी।'

रत्ती ने जबाब दिया; "अरे यहॉ कौन देखता है ? देखना चलकर तरकुलवा मे घंटा भर नाक न दबाए रहा तो जो कहो।"[२]

रतिनाथ को कुल्ली राउत के इस विचार में सत्य के दर्शन होने लगते हैं, और वह विचार करने लगता है कि उच्च जाति के ब्राह्मण और निम्न जाति के कुल्ली राउत की विषम सामाजिक स्थिति का कारण वस्तुतः धर्म और जाति के आरोपित विधि–विधान ही है। रतिनाथ धार्मिक–क्रियाओं का प्रदर्शन समाज में ब्राह्मण–जाति का बर्चस्व बनाये रखने कि लिए करता है। आज अगर देखें तो ब्राह्मण वर्ग के लिए धर्म के संदर्भ में कृत्रिमता और बाह्यचार ही अवशिष्ट रह गये हैं।

इसी उपन्यास में भोला पंडित, तारा बाबा के शब्दों में 'ब्रह्मपिसाच' है। वह मन ही मन नियमित रूप से 'दुर्गा– सप्तशती' का पारायण करता है। उनकी जिह्वा नाम में तथा हाथ काम में लगे रहते है – जब कोई दोपहर का निमंत्रण देने पहुॅचता है तो 'पंडित जी पाठ छोड़कर उससे पूछ बैठते है। डौड–डौड–ड०डे०ड० (कौन–कौन रहेगा)"[३]

ऐसे ही चरित्रों का प्रतिनिधित्व खोखा पंडित (नई पौध) भी करते है। वे भी भोले–भाले लोगों को धर्म के नाम पर ठगते हैं। और लड़कियों को बेचना उससे पैसा

---

[१] नागार्जुन–रतिनाथ की चाची पृ०५०
[२] नागार्जुन–रतिनाथ की चाची पृ०५०
[३] नागार्जुन–रतिनाथ की चाची पृ०६५

कमाना जैसे जघन्य अपराध भी करते हैं। नागार्जुन के उपन्यासों में ब्राह्मण धर्म के ठेकेदारों द्वारा धर्म के नाम पर शोषण की एक अनवरत श्रृंखला चित्रित है। जो 'रतिनाथ की चाची' से लेकर जमनिया के मठ तक पहुँचती है। नागार्जुन ने भारतीय–समाज में ब्याप्त छुआछूत के उस चरित्र का चित्रण किया है जो प्राचीन–काल से ही वर्ण–ब्यवस्था, हिन्दू–समाज ने बनायी है, समाज का सर्वाधिक सेवा करने वाला वर्ग पिसता ही रहता है। उसे अछूत समझा जाने लगा है। उसका मंदिरों में प्रवेश निषिद्ध है। वह संस्कृत नहीं पढ़ सकता है। इसका परिणाम ईसाई मिशनरियों ने उठाया जो धर्म परिवर्तन कराके इस अछूत समाज के फोड़े पर मलहम पट्टी का कार्य किया।

समाज–शास्त्रियों के अनुसार– 'अछूत भावना या अशपृश्यता मुख्यतः तीन रूढ़िवादी मान्यताओं पर आधृत है। खान–पान सम्बन्धी नियम, शादी का संबंध तथा धार्मिक उत्सव। अछूत के साथ बैठकर भोजन करना तो दूर रहा, उसके छूने मात्र से सर्वथा हिंदू शरीर को अशुद्ध मानते हैं। मंदिर–प्रवेश तथा धार्मिक–उत्सवों में अछूत का सहयोग तो दूर रहा, वह मंदिर में रखी भगवान् की मूर्ति के दर्शन भी नहीं कर सकता।' लेखक ने गांधीवादी समाज ब्यवस्था, अछूत ब्यवस्था को बनाये रखने की परम्परा, को उद्घाटित किया है। 'बलचनमा' में गांधीवादी नेता फूलबाबू ब्यवस्था के प्रति किस प्रकार समझौता परस्त बनकर शोषितों के प्रति उदासीन हो जाते हैं, इसका भी चित्रण हम उनके चरित्र में पाते है। उपन्यासकार अपने परिवेश मे व्याप्त अछूत समस्या के दारूण रूप से पूर्ण परिचित थे। उन्होने इस समस्या का चित्रण यथार्थ–स्तर पर किया है। 'रतिनाथ की चाची' का कुल्ली राउत के बारे मे यह सोचना – 'अगर यह भी ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ होता, तो निश्चय ही इसके बदन पर फटे–पुराने कपड़े न होते। हमारी जूठन खाकर, हमारा पहिरन पहनकर इसके बच्चे न पलते। उन्हें कभी स्कूल–पाठशाला जाने का अवसर नहीं मिलता। क्या मर्द! क्या औरत– इन लोगों का जीवन बड़ी जाति वालों की मेहरबानी पर निर्भर है। सोचते–सोचते उसका माथा चकराने लगा।'' यह इस

बात का द्योतक है कि आखिर इस अछूत समस्या से समाज किस तरफ जायेगा। यह युगीन–समाज इस घातक सामाजिक जहर से किस प्रकार ग्रस्त है।

'बलचनमा' में नागार्जुन यह चित्रित करते हैं कि मैथिल ब्राह्मण छोटी जाति वालों का छुआ हुआ भोजन नही करते। "तिरहुतियॉ बॉभन बड़े खटकर्मी होते हैं। छोटी जाति वालों का छुआ नहीं खायेंगे।"[1]

इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में ब्राह्मण–अछूत वर्ग का चित्रण हुआ है, वे अपने औपन्यासिक कृतियों के माध्यम से उनके सामाजिक उद्धार का रचनात्मक समाधान प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने इन सारी मूर्खताओं को 'समाज में ठौर–ठौर इकट्ठा कूड़ा' बतलाया है। उपन्यासकार के हृदय में हरिजन एवं अछूत समझे जाने वाली जातियों के प्रति सहानुभूति है।

(ख) ग्रामीण और नगर जीवन

नागार्जुन की साहित्यिक प्रतिबद्धता समाज के प्रति है। उनकी प्रखर सामाजिक चेतना का उत्स मिथिलांचल का वह समाज है, जिसके परिवेश और पात्रों की सही पहचान और गहरी संपृक्ति ही उन्हें उस जनपद के जन–जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने की सामर्थ्य प्रदान करती है। 'नागार्जुन जनमन के साथ गहरी आत्मीयता और तादात्म्य स्थापित करते है, उनकी साहित्यिक शक्ति का यही आधार है।"[2]

"कालक्रम के अनुसार नागार्जुन की औपन्यासिक कृतियों को दो काल खंडों में विभक्त किया जा सकता है।"[3] प्रथम काल सन् १९४८ से लेकर १९५७ तक आता है। इस काल में 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'बरूण के बेटे' जैसे सशक्त और 'बाबा बटेसननाथ' जैसे प्रयोगधर्मी उपन्यासों का सृजन होता है। इस युग का अवसान

---

[1] नागार्जुन–बलचनमा पृ०४८

[2] प्रो० प्रकाश चंद्र गुप्त–आज का हिन्दी साहित्य पृ०४६

[3] डा० घनश्याम मधुप –हिन्दी लघु उपन्यास पृ० १४७–४८

'दुखमोचन' जैसे उपन्यासों के सृजन से होता है। इस काल की रचनाओं का कथ्य मिथिला– जनपद के ग्रामीण अंचल हैं। जहां के जन–जीवन के उल्लास, हर्ष–विषाद, आशा–निराशाओं के चित्रण के साथ–साथ रूढ़ियों, अंधविश्वासों, कुरीतियों आदि का चित्र प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय काल सन् १९६० से शुरू होता है। जिसमें 'कुंभीपाक' जैसे उपन्यासों का अभ्युदय होता है। जो नगर जीवन के चित्रण के साथ–साथ उन समस्याओं को भी अपने उपन्यासों का विषय बनाया है, जिनका सम्बन्ध मुख्यतः शहरी जीवन से है– जैसे कुंभीपाक का वर्ण–विषय, समाज में व्याप्त वेश्यावृत्ति का अभिशाप है। दूसरा, 'हीरक–जयंती' उपन्यास आता है जो भ्रष्ट नेताओं और उनके अनुयायियों के तिकड़मों, सामान्य जन को मूर्ख बनाने की कलाओं तथा भ्रष्ट साधनों से धन अर्जन करने, पद पाने का प्रामाणिक दस्तावेज है। 'उग्रतारा' उपन्यास में असहाय और विवश उगनी की करूण–कथा का जीवन –चित्रण किया गया है। एक अन्य उपन्यास 'इमरतिया' जिसके माध्यम से नागार्जुन ने पाखंडी साधुओं, धार्मिक आडंबरों तथा अंधविश्वासों से जनसाधारण को सावधान किया तथा रानी–महारानियों की स्वार्थता को भी उजागर किया है।

इस प्रकार इनके सभी उपन्यासों में ग्रामीण–शहरी जीवन का यथार्थ अंकन मिलता है। "रतिनाथ की चाची' की भूमि दरभंगा–जिला, शुभंकरपुर गॉव है। आपादमस्तक रूढ़िवादिता के मोह में निमग्न वहॉ के अभाव, अज्ञान, बाह्यडंबर उन ग्राम वासियों की अवस्था का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया गया है, जो अपनी कुलीनता के मोह बहुपत्नीत्व और ईर्ष्या के कारण वहां के पूरे जीवन को अभिशप्त बनाये हुए हैं।

एक ग्रामीण विधवा गौरी की कष्ट भरी कहानी इस उपन्यास में वर्ण्य विषय है जो इसके साथ ग्रामों में प्रचलित विविध प्रकार के भेदभावों की समस्याओं–अनमेल विवाह, विधवाओं के दयनीय जीवन को प्रस्तुत करता है।

ग्रामीण–समाज की छोटी से छोटी वस्तु को चित्रित किया गया है –'भात तैयार हो चुका था। छिलके छीलकर गौरी की माँ ने चोखा बनाया। नमक, हरी मिर्च और सरसों का तेल डाला। थाली में भात परोसा।"[1] इसी तरह ग्राम–जीवन के आस–पास के परिवेश बागों, तालाबों–पोखरों खेतों आदि का बड़ा ही सजीव चित्रण नागार्जुन ने किया है। रतिनाथ के मोतिहारी जाने का प्रसंग– 'आज अपने टोल–पड़ोस की हर वस्तु सचेतन प्रतीत हो रही थी। लगा कि उसे सब मना कर रहे हैं –मत जाओं, मत जाओं, मत जाओं। तालाब बुड्ढा पीपल, मौलसिरी का वह बौना पेड़, वे खेत, वे बाग, वे झाड़ियॉ, वे झुरमुट; वह बलुआहा–उन्होंने मानो चिल्लाकर रतिनाथ को मना करना शुरू किया– कहॉ जाओगे, लौट चलो, लौट चलो लौट चलो !"[2] इस दृश्य का जीवंत वर्णन वहॉ के परिवेश को चाक्षुष करा देता हैं

इस उपन्यास में ऊँच–नीच, जाति–पॉति से उत्पन्न समस्यायें, बिकते हुए वर छुआ–छूत, भोज–भात सभी को चित्रित किया गया है। गौरी के चरित्र के माध्यम से वहॉ के समाज में गहरी जड़े जमाये अंतर्विरोधों को प्याज की परतों की तरह उधेड़ दिया गया है। गौरी, समाज के आरोपित लाछंन, अंधविश्वास और क्रूरता के कारण अपने जीवन का दयनीय अंत कर लेती है। दूसरी ओर, इसी उपन्यास में दमयंती का चरित्र समाज में पायी जाने वाली कुटिल बुद्धि नारियों का प्रतिनिधित्व करता है। इस उपन्यास में नागार्जुन ने गौरी के विधवा–जीवन के यथार्थ–चित्रण के साथ ही शुभंकरपुर गॉव में पनपती हुई समाजवादी चेतना को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। 'बलचनमा' उपन्यास में नागार्जुन का कैनवास अन्य उपन्यासों से अधिक व्यापक है। वह दरभंगा जिले के साधनहीन, अभावग्रस्त और निर्धन कृषक परिवारों के जीवन को गहरी मार्मिकता से उद्घाटित किया गया है। यद्यपि यह उपन्यास १९५४ में लिखा गया, लेकिन उसकी घटना १९३७ ई० के आस–पास की है। जब देश में नमक कानून गॉधी जी के नेतृत्व में

---

[1] नागार्जुन–रतिनाथ की चाची पृ०२७

[2] नागार्जुन–रतिनाथ की चाची पृ०९८

तोड़ा जा चुका था। असहयोग–आंदोलन की ज्वाला बुझ चुकी थी। सविनय अवज्ञा–आंदोलन की ज्वाला धधक् रही थी। कांग्रेस कमेटियों का गठन, आसरम की पहचान में चरखा चल रहा था। ऐसे समय 'बलचनमा' का उदय होता है, जो इन राजनैतिक चेतनाओं से रूबरू ही नहीं होता वरन् इसमें बढ़–चढ़कर हिस्सा भी लेता है। जमींदारों द्वारा किये गये अनवरत शोषण एवं क्रूर दमन के विरूद्ध उभरती प्रतिहिंसा की सशक्त अभिब्यक्ति ही इस उपन्यास का प्रमुख प्रतिपाद्य है। कृषकों में पनपती जमींदार विरोधी चेतना का वाहक एवं प्रतिनिधि पात्र बलचनमा है।

'बलचनमा' उपन्यास में पात्रों के रूप उभार, शील–स्वभाव, आचार–व्यवहार तथा घटना प्रसंगों आदि के चित्रण में पर्याप्त स्वाभाविकता है। जहां 'जमीदारों के नृशंसता, दुराचरण, क्रूरता, ह्रदयविहीनता, रिआया को चूसने की चालों का वर्णन है, वहां लेखनी बड़ी तीखी हो उठी है। और चित्र स्पष्ट उभर आये है।''[1] बलचनना के बाप ललचनमा द्वारा दोपहर को मालिक के बाग से दो किसुनभोग तोड़कर लाने पर मालिक द्वारा दी गयी सजा का दृश्य अत्यन्त मार्मिक एवं ह्रदय–विदारक है।

इसी प्रकार बलचनमा की नौकरी के सन्दर्भ में, बलचनमा की दादी और छोटी मालकिन का किया गया वार्तालाप वहां के पूरे परिवेश को उसके समस्त अंतर्विरोधों के साथ उद्घाटित कर देता है। "मेरा बलचनमा मुठ्ठी–भर से अधिक भात नही खाता। कोदो, मडुआ, मकई, सांवा, कांवन चाहे जिसकी भी रोटी दे दो, खुशी–खुशी खा लेगा और दो चुल्लू भर पानी पी कर सन्तोष की सांस लेता उठ जायेगा।"[2] उपन्यासकार की मिथिला जनपद की पकड़ इतनी गहन और सूक्ष्म है कि यह उपन्यास एक जीवन्त दस्तावेज बन गया है। 'कथा–नायक बलचनमा निम्न श्रेणी का ग्रामीण युवक है, जो अनेक अत्याचारपूर्ण परिस्थितियों से गुजरता हुआ अंत में किसानों की स्वत्व–रक्षा के

---

[1] नागार्जुन–बलचनमा पृ०६

[2] महेंद्र चतुर्वेदी–हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण पृ० २०६

आंदोलन का सक्रिय अंग बन जाता है। लेखक ने कथा–नायक को विभिन्न परिस्थितियों में रखकर तथा विभिन्न वर्गो एवं स्वभावों के व्यक्तियों से सम्पर्क में लाकर अपने विशिष्ट दृष्टिकोण से राजनीतिक नेताओं तथा जमींदारों के स्वार्थ–संघर्षो और स्वभाव संस्कारों का अध्ययन किया है।"[1]

'नई पौध' में नागार्जुन ने मिथिला–अंचल के जन–जीवन को यथार्थ रूप में इस प्रकार अंकित किया है, कि वह जीवन से विलग आरोपित रूप में प्रतिभासित नही होता है। यह उपन्यास अनमेल विवाह पर आधारित है, जिसमें चौदह वर्षीय 'विसेसरी' का विवाह साठ वर्षीय 'चतुरा चौधरी' से नौगछिया गांव के नवयुवक नही होने देते। इस उपन्यास में गांव और नगर जीवन की बुनावट इस कदर कर दी गयी है, कि लगता ही नहीं है कि वे एक दूसरे से अलग हैं।

'सौराठ' में शादी–विवाह की सौदेबाजी, मधुवनी स्थित न्यायालय के दृश्य, गांव के प्रमुख द्वारा चीनी और मिट्टी के तेल के वितरण में की जाने वाली धांधली, वर्तमान शासन के स्वरूप की झलक, यथा स्थान धार्मिक मंत्रों का उद्धरण और स्थानीय बोली के शब्दों का प्रयोग, ने मिथिला–अंचल के सामाजिक जीवन को मानो सजीव–साकार बना दिया है। इस प्रकार यह स्वतंत्रता के बाद उभरती हुई नयी पीढ़ी की जागृति के उद्घोष का सूचक है। नागार्जुन ने अनमेल विवाह की समस्या को गांव की नई पौध द्वारा ललकारा है। और उसका अपेक्षित समाधान प्रस्तुत किया है। 'बिसेसरी को, एक बूढ़े से विवाह कराकर नारकीय जीवन में ढकेलने का जो षड़यंत्र ढलती पीढ़ी ने किया है और समाज ने जिसका अनुमोदन किया है, उसे उठती पीढ़ी के नवयुवकों ने तोड़ दिया है।"[2]

ये नवयुवक उन्ही व्यक्तियों की संताने थी, जो पढ़–लिखकर नजदीक–दूर के

---

[1] डा० गणेशन–हिन्दी उपन्यास, साहित्य का अध्ययन पृ० १६५

[2] डा० गणेशन–हिन्दी उपन्यास, साहित्य का अध्ययन पृ० १६५

शहरों में नौकरी करते थे। घर–गॉव की जमीन से नाता बनाए रखने के लिए तथा महॅगाई के दबाव के कारण वे लोग अपना परिवार गॉव में ही रखते थे। ये युवक यद्यपि गॉव के ही थे, लेकिन इनकी मार शहरों तक भी होती थी।

'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास एक अभिनव–शिल्प प्रयोग है। जिसमें एक वृक्ष सवाक् रूप धारण कर अपनी कहानी सुनाता है। इस कहानी के संदर्भ में ही लेखक ने गॉव के सामाजिक–राजनीतिक–आर्थिक संघर्षो, उसके उत्थान–पतन पर प्रकाश डाला है। कथा कहने के ढंग की आत्मीयता तथा प्रत्यक्षता से गांव मानो जी उठा है। 'उसकी प्रथाएं –परंपरायें, अंधश्रद्धा, उपासना–पद्धति, पशु–बलि आदि के तरीके सब हमारे सामने प्रत्यक्ष हो उठते है। इन्ही सब सहज नैसर्गिक निरूपणों के बीच लेखक ने कांग्रेसी शासन की व्यंग्यात्मक आलोचना का भी अवसर निकाल लिया है।"[१]

यह वट–वृक्ष, जो नागार्जुन के विचारों का प्रतीक है, एक ही रात में जैकिसुन को रूपउली गांव की चार पीढ़ियों की कहानी सुना देता है। एक शताब्दी से गॉवों के बीचो–बीच खड़ा वट–वृक्ष, 'ईष्ट इंडिया कंपनी' के जमाने में ब्रिटिश कूटिनीति एवं उनकी स्वार्थपरता, तथा उनके द्वारा भारत की आंचलिक आत्मा को अपनी मजबूत गिरफ्त में रखने के लिए पैदा किया गया। स्वार्थी देश–द्रोहियों का जमींदार वर्ग, इन जमींदारों द्वारा की गयी निरंकुशता और जनता पर ढाये गये जुल्म ,स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जागृत जन–शक्ति के उभार के दबाव में आकर स्वदेशी सरकार द्वारा किया गया जमींदारी–उन्मूलन कांग्रेस–शासन के इतिहास आदि को आत्मकथा के रूप में पाठक वर्ग तक संप्रेषित करता है।

ग्रामीण जीवन की स्थिति उसकी प्राकृतिक विशेषता वह ग्रामीण परिवेश को एक सुन्दर आयाम देता है। जैकिसुन से बरगद बाबा कहते है – "गॉवो के बीच–बीच में बॉसो की झुरमुटे, आम–इमली–जामुन और पाकर–पीपल के छिटपुट पेड़ अपनी इस

---

[१] महेद्र चतुर्वेदी–हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण पृ० २०६–१०

तिरहुत–भूमि की एक बड़ी विशेषता है।"[1] यह मानव रूपधारी बरगद का पेड़ 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' के उच्च्य आदर्शो का प्रतीक हैं। यह मानव से भी कहीं अधिक संवेदनशील है।

'वरूण के बेटे' उपन्यास में 'मलाही–गोंढियारी ग्राम के ॲचल से संबद्ध इन मछुओं की दीनता, उनके बीच उपजे प्रणय–संबंध, उनके गढ़–पोखर पर वहॉ के जमींदारों की बेदखली और इनके संगठित संघर्ष की कथा कही गयी है।'

बिहार में ही नहीं अपितु पूरे देश में जमींदारी–प्रथा समाप्त होने पर जमींदारों ने ऐसी जमीन और तालाब आदि को चुपके–चुपके बेचना शुरू कर दिया, जो उनकी निजी–सम्पत्ति नहीं थे। यही तालाब गरोखर मछुओं की जीविका के आधार थे। इसीलिए वे इसके विरोध मे एकजुट हो जाते है। उनके इस संघर्ष का नेतृत्व संभालता है मोहन मॉझी– एक कर्मठ साम्यवादी नेता। उनके नेतृत्व में सभी मछुए विरोध करने का दृढ़ संकल्प लेते है। गोनड़ के शब्दों में – "यह पानी सदा से हमारा है किसी भी हालत में इसे छोड़ नहीं सकते। पानी और माटी न कभी बिके हैं, न कभी बिकेंगे। गरोखर का पानी मामूली पानी नहीं, वह तो हमारे शरीर का लहू है। जिनगी का निचोड़ है ।"[2]

"इस उपन्यास के पात्र तथा घटनाऍ आँचलिक है। संपूर्ण अँचल के लोक–जीवन को चित्रात्मक शैली में सजीव एवं मुखर करने में उपन्यासकार को विशेष सफलता मिली है। उपन्यास में लोक–गीतों तथा लोक–कथाओं का समावेश हुआ है।। मंगल को ध्यान में रखकर मधुरी का गीत, चुल्हाई का मधुरी के लिए गीत, कमला–मैया का वंदना–गीत, मछलियॉ पकड़ने के समय जाल फेकते समय का गीत आदि अति भावपूर्ण गीत हैं। ऑचलिक बोली का पर्याप्त प्रयोग किये जाने से लोक–जीवन की यथार्थता बढ़ गयी है।"[3]

---

[1] डा० सच्चिदानद राय–हिन्दी उपन्यास, सांस्कृतिक एवं मानववादी चेतना पृ०५११

[2] नागार्जुन –बरूण के बेटे पृ० २८३

[3] डा० ह०के० कड़वे–हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता पृ० १४६

'दुखमोचन' उपन्यास मे टमका–कोइली ग्राम के नव–निर्माण की गाथा है। इस उपन्यास का नायक दुखमोचन दूसरों के दुख–दर्द को पहचानकर दूर करने का प्रयत्न करता है। अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों के समान नागार्जुन ने गॉव के गढ़–पोखर की समस्या को नही उठाया है, बल्कि गॉव की पुरानी–पीढ़ी की दकियानूसी–प्रवृत्तियों को चित्रित करना चाहा है। उन्होंने इसमें आदर्श के रूप में दुखमोचन नामक नायक का उत्थान किया है जिसने समाज–सेवा का एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया है जो चिरकाल तक हमारे नेताओं को प्रेरणा दे सकता है। वह अपनी सूखी–कीमती लकड़ी राम सागर की मॉ के दाह संस्कार के लिए दे देता है। उनके अनुसार गॉव की सुरक्षा का दायित्व सभी ब्यक्तियों पर निर्भर करता है। वह कहता है– "मै महसूस करता हूॅ कि गॉव के एक–एक ब्यक्ति की सुरक्षा का दायित्व हम पर है– अभी एक–एक ब्यक्ति हमारा अपना आदमी है बेणीमाधव।"[1] दुखमोचन गॉव के नवनिर्माण तथा उसमें संचरित नव–जीवन का केन्द्र है।

इस प्रकार 'नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में मिथिला के अँचल–विशेष के ग्रामीण जन–जीवन का चित्रण कर वहॉ की समस्याओं को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। वहॉ की संस्कृति, लोक–जीवन, परंपराओं, रूढ़ियो, बोलियो, अंधविश्वासों, परिवर्तन की नयी–दिशाओं आदि का उन्होंने यथार्थ दृष्टि से अंकन किया है।"[2]

उनके उपन्यासों में ठेठ बोली के प्रयोग से मिथिला के लोक–रंग को उपस्थित किया गया है। लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में सजीवता आ गयी है। क्षेत्रीय लोकपर्व, मधुश्रावणी, द्विरागमन, मिथिला की हस्तकला, संस्कृत पंडितों की परंपरा आदि का परिचय उपन्यास के यथार्थ को सजीवता प्रदान करते हैं।

इस प्रकार नागाजुन ने अपने उपन्यासों 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'नई

---

[1] नगार्जुन –दुखमोचन पृ० १३०
[2] डा० ह०के० कडवे–हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता पृ० १४२

पौध', 'बाबा बटेसरनाथ,' 'वरूण के बेटे', 'दुखमोचन' में मिथिला–जनपद के ग्रामीण जीवन, जमींदारों की शोषण–प्रवृत्ति, रीति–व्यवहार, आस्था–अनास्था, ग्रामीण मर्यादा–अमर्यादा, नैतिकता–अनैतिकता, ग्रामीण–प्राकृतिक दृश्य, ग्रामों में विकसित होती हुई राजनीतिक चेतना आदि का सफल एवं वास्तविक अंकन किया है। मजदूरों की आर्थिक–विषमता, अभाव, संघर्ष आदि को उसके विषम रूप में उभारा गया है।। पुरातन मूल्यों एवं आर्थिक विषमताओं की विभीषिकाओं के मध्य से एक नये भविष्य की कल्पना की गयी है। इन उपन्यासों में स्थानीय परिवेश, जनपद की बोली–बानी, बेश–भूषा को पूर्ण ईमानदारी से चित्रित किया गया है। इस प्रकार मधुरेश जी के शब्दों में कह सकते है– "जन–बनिहार, कुली–मजदूर, बहिया–खवास, गॉव की विधवायें और दूसरी सताई जाती रही स्त्रियॉ, धर्म के नाम पर पलने वाली धूर्ततायें और पाखंड– इन सब तानों–बानों से नागार्जुन के कथा–साहित्य का विशाल कैन्वस तैयार होता है।"[1]

सांस्कृतिक तत्व

मनुष्य को समूह एवं परिष्कृत करने वाली सैद्धान्तिक और आदर्शात्मक प्रक्रिया ही संस्कृति, कहलाती है। संस्कृति में सभी काम करने, सोचने विचारने, रहन–सहन के तौर तरीके आदि आते है, जिन्हे मनुष्य पीढ़ी दर–पीढ़ी पूर्व समाज से हस्तांरित करता आ रहा है तथा जिन्हें सामाजिक स्वीकृति एवं संस्तुति प्राप्त होती है । त्यौहार, मेले, प्रथाएं, जनरीतियां, रूढ़ियां एवं विविध संस्कार–प्रधान परंपरायें आदि संस्कृति के विभिन्न अवयव होते है।

नागार्जुन के कथात्मक अनुभव का एक श्रोत उनके निजी जीवन से है। दूसरा श्रोत, अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है, उस जातीय संस्कृति में है। जो उनके भीतर से लड़ रही थी। यह बची थी, तभी लड़ रही थीं। उन्होंने एक ब्यापक सांस्कृतिक दर्द को

---

[1] आलोचना अंक २२–मधुरेश– नागार्जुन के उपन्यास पृ५०

अपना दर्द बनाया था। उनका दुख ठोस सामाजिक प्रसंगो से पैदा हुआ है और सामाजिक व्यवस्था ही अमानवीयता का सूचक है।

हिन्दी समाज के लेखकों का जीवन सामान्यतः दुख कष्ट और बेंगानेपन में बीतता है। थोड़े ही होगें, जिनके लिए साहित्य एक खेल है, उत्सव या विदेश यात्रा का आनंद हो; नागार्जुन ने जितने दुख–कष्ट झेले, हो सकता है कि कई लेखको को उससे अधिक दुःख–कष्ट झेलने पड़े हो। लेकिन विरला ही कोई होता है, जो आक्रामक अतीतवाद और पश्चिमीकरण के सांस्कृतिक कशाघातों को अपने पूरे तन–मन पर इतने दर्द के साथ झेलता है।

नागार्जुन के उपन्यासों में मिथिला–जनपद का जीवंत प्रतिबिंब देखा जा सकता है। वहॉ के त्योंहार तथा मेले, रीति–रिवाज और प्राकृतिक सौंदर्य के रम्य दृश्यों से उनके उपन्यास सजीव बन पड़े हैं। उन्होंने मिथिलांचल के जन–जीवन को बड़ी धारदार दृष्टि से देखा और वहॉ के क्षेत्रीय संस्कृति को समझने में उनकी पैठ गहरी है ।

नागार्जुन के उपन्यासों में मिथिला–जनपद का जीवंत प्रतिबिंब देखा जा सकता है। वहॉ के त्योहार तथा मेले, व जनपद में होने वाले अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों का वर्णन करते है। मिथिला में 'श्रावण–शुक्ला तृतीय' नव–विवाहित वर–वधू के लिए त्यौहार की तिथि होती है। जिसे मधुश्रावणी कहते हैं। इस दिन वर घृत मिश्रित बाती की हल्की लौ से वधू के पैरों को छू देता है और वह ईस कर उठती है । इस त्योंहार का वर्णन 'रतिनाथ की चाची' में हुआ है ।

तीज के त्यौहार पर स्त्रियॉ गीत गाती है। वहॉ चौपड़ के समान ही एक प्रकार का खेल खेला जाता है, जिसे पचीसी कहते है भाद्र–शुक्ला की चौथ के दिन नैवेद्य निवेदन पर्वूक उगते चॉद को देखने का त्योहार मनाया जाता है, जिसे 'चउड़–चन' कहते हैं। मिथिला में ब्राह्मणों के विवाह के लिए 'सौराठ' मेले का आयोजन होना।

विवाहेच्छुक वर का इस मेले में इकट्ठे होना, जिनका चयन कन्या पक्ष वाले करते हैं, एक संस्कृति का ही प्रतीक है। जिसका सजीव चित्रण रतिनाथ की चाची में मिलता है।

'रतिनाथ की चाची' को पढ़ने से ज्ञात होता है कि मिथिला में अब भी 'बिकौआ' प्रथा है। यह प्रथा ऐसी है जिसमें कुलीन ब्राह्मण बीस से बाईस विवाह तक करता है और उसका सारा जीवन ससुरालों में बीतता है। इस प्रथा में पत्नी मायके मे ही रहती है; पतिदेव कभी–कभी आकर पति धर्म का पालन करते है। विवाह की सभी विधियॉ बिना किसी अड़चन के पूरी होती है, जिसमें "गॉव के बड़े–बूढ़े वर–वधू के माथे पर दूब–अच्छत छींटकर आशीर्वाद देते हैं। वर–वधू को तीन दिन कड़े ब्रह्मचर्य में बिताने पड़ते है, चौथी रात उनके मिलन की रात्रि होती है। यह जानकारी हमें 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में मिलता है।

उनके उपन्यासों में मिथिला के ताल–पोखर की मचलती नील लहरियॉ, खेतों की इठलाती–बलखाती हरीतिमा, चंद्र ज्योत्सना का झीना ऑचल, आम और बरगद की छतनार छाया सब कुछ देखा जा सकता है। 'रतिनाथ की चाची' मे मिथिला की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन "आगे के खेतों में धान के हरे–भरे पौधे लहरा रहे थे, उनसे परे आमों के नील निबिड़ कुंज थे, उनसे भी परे सुदूर उत्तरी आकाश में हिमालय की धवल–धूमिल चोटियॉ थी, जो उगते सूरज की नीली किरणों से उद्भासित हेकर स्वर्ण–श्रृंग सी लग रही थी।"[1]

इसी प्रकार प्राकृतिक सुषमा का वर्णन नागार्जुन के 'दुखमोचन' उपन्यास में मिथिला प्रेम को ब्यक्त कर रहा है– "यह देश–कोश, यह माटी–पानी, पहली वर्षा के बाद धानों के ये अंकुर, आमों से लदी ये अमराइयॉ, घौंदों में लटके पकने को आतुर

---

[1] नागार्जुन–रतिनाथ की चाचीपृ० ११२

जामुन, गुलाबी फल–भार से विनम्र लीची की तुनक टहनियॉ, श्याम–सलिल पोखर, ग्रीष्म संजीदा और बरसात की बेहुदी नदियाँ।"[२]

'बरूण के बेटे' उपन्यास को पढ़कर ऐसा लगता है कि जैसे नागार्जुन प्रकृति की गोद में बैठ कर रचना कर रहे हो– गढ़ पोखर का प्रशांत नील–कृष्ण विशाल वृक्ष हौले–हौले लहरा रहा था। हेमंती दिनांत के प्रियदर्शी रवि की पीताभ किरणें उसकी लोल–लहरियों पर बिछ–बिछकर अपने को नाहक ही पैना बना रही थी।"
मछलियों का चित्रण जब करते हैं– "लाल–रूपहली और सुरमई छिलकों वाली पोठी मछलियाँ मसूरिया आँखे चमकाती हुई शान से निकलती और बहते पानी में उतरे तिर्छे चढ़ती।"[१]

सूर्य की क्षीण किरणों का गत्वर चित्र 'कुम्भीपाक' उपन्यास में दृष्टब्य है। "लगता था, सूर्य की किरणों के लिए कोई आकर लक्ष्मण–रेखा खींच गया है । दुपहर के बाद वे सहम–सहमकर अंदर झाँकती । घड़ी आधी घड़ी के लिए दरस दिखाकर लापरवाही से सिर के आँचल की तरह खिसकती जाती, पीछे हटती जाती –क्वॉर की कछार में नदी की लहरों की तरह।"[२]

नागार्जुन के उपन्यास में प्रकृति परक चि़त्रण 'दुखमोचन' के बाद के उपन्यासों में क्षीणतर होता गया क्योंकि उनके चित्र का कैमरा गॉवो से शहरों की तरफ घूम गया। शहरी चित्रण में वो प्रकृति और सुषमा नही होती जो गॉवों के नदी, ताल–पोखर तलैया में मिलती है। शहरी जीवन तो घुटन, टूटन, और एकांकी भरा होता है।

राजनीतिक तत्त्व

साहित्य और राजनीति में अद्वैत सम्बन्ध है। राजनीति के सर्वव्यापी रूप से कोई भी साहित्यकार अछूता नही रह सकता–"साहित्य और राजनीति को दो पृथक

---

[२] नागार्जुन–दुखमोचन पृ० १५८

[१] नागार्जुन–वरूण के बेटे पृ० ३१३

और विरोधी तत्व मान लेना किसी प्राचीन युग में भी उचित न होता, आज के संघर्ष युग में तो यह मूर्खता–पूर्ण सा ही है। चाहे राजनीति का युग हो, चाहे साहित्य का, नीत्से साहित्यिक था, लेकिन आधुनिक राजनीति पर उसके प्रभाव की उपेक्षा नहीं की जा सकती। लेनिन को कोई भी साहित्यिक नहीं कहता लेकिन आधुनिक साहित्य पर उसकी गहरी छाप है।"[१]

नागार्जुन के उपन्यासों में राजनीतिक तत्त्व बराबर मिलते है। कारण स्पष्ट है उनका देश उस समय साम्राज्यवादी शासन से पीड़ित था। नागार्जुन का सन् १९३८ ई से राजनीति से गहरा सम्बन्ध था। जीवन के आर्थिक बिषमता के निजी अनुभवों ने उन्हें वामपंथी राजनीति की ओर मुड़ने पर विवश किया। यद्यपि उनकी औपन्यासिक कृतियों का आधार मिथिलांचल थी। तो भी वे तात्कालिक सामाजिक, राजनीतिक, आंदोलनों से अपने को परे नही कर सके। इसीलिए उनके उपन्यासो में इस प्रकार के तत्वों का समावेश होना स्वाभाविक ही है।

चूँकि बीसवी शताब्दी के तृतीय और चर्तुथ दशक भारत में राजनीतिक आंदोलनो की दृष्टि से महत्वपूर्ण थे और इसी तीसरे दशक में ही नागार्जुन का अवतरण हुआ। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में सन् १९३० से लेकर सन् १९६८ तक के भारत के राजानीतिक तत्त्व बोलते दिखाई पड़ते है।

'बाबा बटेसरनाथ' नामक उपन्यास में "मानवरूपधारी वट–वृक्ष की कल्पना के माध्यम से 'बहती गंगा' की तरह एक लंबी कालावधि चार पीढ़ी पूर्व यानी ईस्ट इंडिया कंपनी के भारत–प्रवेश से लेकर सन् १९४२ तक का इतिवृत्त प्रस्तुत किया है।" यह वह समय था जब "विदेशी राज्य की स्वार्थन्धता, जमींदारों की स्वेच्छाचारिता एवं निरंकुशता, विभिन्न राजनीतिक आंदोलनों, कॉग्रेसी शासन की स्थिति और जमींदारी

---

[२] नागार्जुन–कुम्भी पाक पृ० ७
[१] अज्ञेय–त्रिशंकु पृ० ७३–७४

उन्मूलन की घटनाएं आती हैं। लेखक ने जमींदारी–उन्मूलन के पश्चात् की समस्त परिस्थितियाँ स्वयं देखी हैं और उन्हें चित्रित किया है।"[२]

देश में चलने वाले सन् १९२० के असहयोग आंदोलन तथा सन् १९३० से सविनय अवज्ञा आंदोलन व सन् १९४२ के भारत छोड़ो आंदोलन की विविध गतिविधियों का अंकन 'बलचनमा' उपन्यास में दिखाई पड़ता है। जब लोग स्कूल–कालेज को छोडकर आवेश मे आकर आन्दोलन में कूद पड़ते हैं। जैसा कि बलचनमा कहता है– "कांग्रेसी लोग नमक बना–बनाकर जेहल जा रहे थे। भले तो क्या नाम था, अभी याद नहीं आ रहा है। सबने भंग आंदोलन। फूल बाबू रोज अखबार पढ़ते थे। अखबारों को सरकार ने बंद करा दिया था, पर छिपे तौर पर अखबार क्या जाने कहाँ से आता था ?...लग रहा था कि हमारे मालिक भी नमक बनाने जायेंगे और गिरफ्तार होंगे। मेरे सामने एक ही सवाल था। मालिक जेल चले जायेंगे तो मैं क्या करूँगा ? ...सुबह में फूल बाबू के साथी मोहन बाबू आये। आते ही उन्होंने मुझसे कहा– मालिक तेरे पकड़े गये है। फूल–माला पहनकर जेल चले गये हैं। "[१]

'नई पौध' में 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' की चर्चा करते हुए नागाजुन लिखते है– दिगंबर का पिता नील कंठ मल्लिक बिहार बैंक (पटना) में असिस्टेंट एकाउंटेंट था। कुल जमा २१०– मिलते थे उसे। '३०–२० के राष्ट्रीय आंदोलन मे हाईस्कूल की मास्टरी छोडकर और नमक बनाकर नीलकंठ बाबू जेल गये, साल भर की सजा हुई थी।"[२] 'बाबा बटेसरनाथ' में नागार्जुन ने सन् १९२० के असहयोग आंदोलन के बारे में लिखा है– "सन् १९२० के अंत में कांग्रेस ने असहयोग और बहिस्कार का नया लड़ाकू प्रोग्राम अपनाया था। बड़े नेताओं के इस निर्णय से साधारण जनता में उत्साह की अनोखी लहर फैल गयी। राष्ट्रीय–मुक्ति संग्राम की धारा लोक–चेतना के समतल मैदान में उतर आयी।

---

[२] डा० सत्यपाल चुघ – प्रेम चंदोत्तर उपन्यासो की शिल्पविधि पृ० ६१३

[१] नागार्जुन– बलचनमा पृ० ४८

[२] नागार्जुन– नई पौध पृ० ६३

गॉधी जी ने भविष्यवाणी की थी कि वर्ष–भर मे स्वराज मिल जायेगा... मगर इस विराट जन–आंदोलन की रूपरेखा क्या होगी, इस बारे में स्वयं गांधी जी भी स्पष्ट नहीं थे। किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि महात्मा क्या करने वाले है, प्रबल पराक्रमी अंग्रेज सरकार को वह किन दांव–पेंचों से पछाड़े, कह किसी को साफ–साफ सूझ नहीं रहा था।

असहयोग का जमाना अद्भुत था। देश का हर हिस्सा नयी चेतना से स्पंदित होकर अंगड़ाइयाँ ले रहा था। ...गांधी जी को छोंड़कर तमाम नेता गिरफ्तार कर लिए गए– मोती लाल नेहरू, देश बंधु चित्तरंजनदास, लाला लाजपतराय वगैरह। उन्हे जेलों में बंद कर दिया गया। स्वराजी कैदियों की तादात ३०,००० तक पहुॅच गयी थी... आन्दोलन पूरे उठान पर था। कांग्रेस ने सारे अधिकार उन्हें सौंप दिये थे कि वह संघर्ष को सही दिशा दें और देश को विजय की आखिरी मंजिल तक पहुॅचाए।"[१]

सविनय अवज्ञा आन्दोलन का चित्रण करते हुए वट–वृक्ष कहता है– "दस वर्ष बाद ३० में फिर कांग्रेस ने मोर्चा बंदी। जन विरोधी कानूनो से ऊबे हुए लाख–लाख लोग फिर मैदान में निकल आये। फिर गांधी जी ने कहा कि अहिंसा में बट्टा न लगे तो मुझे हार भी कबूल होगी। इस बार महात्मा अपने आश्रमवासी चेलों के साथ नमक–कानून तोड़ने निकले। लेकिन कानून का यह आंदोलन थोड़े ही दिनों में जोर पकड़ गया। गैर–कानूनी नमक बनाना, शराब अफीम और विलायती कपड़ो की दुकानों पर पिफेंटिग करना, तकली और चरखे पर सूत कातना ढेर–का ढेर सूत कतवाना, छुआछूत खत्म करना, विदेशी कपड़े जलाना, स्कूल कालेजों का बहिष्कार, सरकारी नौकरियों से इस्तीफा.... यही प्रोग्राम था। गांधी जी ने कहा था ऐसा करने पर हम देखेंगें कि स्वराज हमारे दरवाजे पर खड़ा है।"[२]

---

[१] नागार्जुन– बाबाबटेसर नाथ पृ० ६७
[२] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ पृ० ६६

'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास में सविनय अवज्ञा– आंदोलन की चर्चा करते हुए आगे लिखते हैं कि– "नमक कानून तोड़ने का यज्ञ जिले–जिले में कहीं न कहीं आये दिन होता ही रहता था। दयानाथ ने श्रावण पूर्णिमा के दिन यही मेरी छॉह में नमक बनाना शुरू किया.....बूढ़े, बच्चे और जवान सैकडो की तादाद में तमाशा देखने आये थे। काफी दूर पर उधर अलग खड़ी औरतें भी गांधी बाबा का यह यज्ञ देखने आयी थी।"[१]

'हीरक जयन्ती' उपन्यास में बढ़ रहे राष्ट्रीय आंदोलने का जिक्र करते हुए नागार्जुन कहते है– "बाबू राम सागर राय, एम० पी० "युनिवर्सिटी की पढ़ाई छोड़कर दूर में नमक उवालने गये, साल भर की सजा हुई जेल की।"[२] पण्डित शिवदयाल पाठक एम० एल० ए० का १९३०–३२ के सत्याग्रह में कॉलिज छूटा था। ३४–३८ में प्रख्यात किसान नेता स्वामी सहजानंद के साथ रहे।"[३] श्री मंजू देवी, एम० एल० सी० गांधी जी की अपील पर ३०–३२ में पर्दे से बाहर आयी। शराब की दुकान पर धरना दिया था।"४ बाबू देवनंदन प्रसाद (लल्लनजी) "१९३० में कॉलेज की पढ़ाई छोड़कर सविनय आज्ञा–भंग आंदोलन में कूद पड़े।" उन्होंने इस उपन्यास में कुछ ऐसे नेताओं की भी चर्चा की है जो इन राष्ट्रीय आंदोलनों में अग्रेंजो का साथ देते रहे है। इन नेताओं में राजा रेवती रंजन प्रसाद सिंह है। "सन् ३२ और ४२ के आंदोलनों में आपने खुलकर साम्राज्यवादियों का साथ दिया।"[४]

इस प्रकार कह सकते है कि नागार्जुन के उपन्यासों में उस समय की राष्ट्रीय चेतना तथा राष्ट्रीय आंदोलनों का सविस्तार चित्रण हुआ है।

(क) किसान–आंदोलन

[१] नागार्जुन– बाबा बटेसरनाथ पृ० १०१
[२] नागार्जुन– हीरक जयंती पृ० १८
[३] नागार्जुन– हीरक जयंती पृ० १९
[४] नागार्जुन– हीरक जयंती पृ० २७

बिहार में किसान आंदोलन का नेतृत्व स्वामी सहजानन्द सरस्वती कर रहे थे। उस समय का किसान आंदोलन एक राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप ले चुका था, जिसमें न केवल राजनीतिक बुद्वजीवी बढ़चढ़कर हिस्सा ले रहे थे अपितु, समाज साहित्यविद राहुल सांकृत्यायन की गिरफ्तारी के बाद स्वयं नागार्जुन ने भी नेतृत्व किया। उनके उपन्यासों 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'बाबा बटेसरनाथ' एवं 'बरूण के बेटे' मे इस आंदोलन के संघर्ष के दौरान किसानों में आयी नव जागृति का भी चित्र प्रस्तुत करते है। डा० चंडी प्रसाद जोशी के शब्दों में– जमींदारों के विरूद्ध किसानों ने भी अपना आंदोलन संगठित किया । लेकिन किसानों की इस राजनीतिक चेतना का श्रेय इन्हीं को है। किसी भी पार्टी या प्रमुख नेता को नही। स्वतंत्रता–प्रयास से भी उन्होंने अपना आंदोलन संगठित किया तथा राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लेते रहे ।

किसान जागृति का वर्णन 'रतिनाथ की चाची' में भी दिखाई पड़ता है शुभंकर पुर गांव में बलुआहा पोखर के भिंडे पर किसान–कुटी बनती है। सभी इस कुटी के लिए दिल खोलकर चंदा देते है। किसानों में गजब का जोश था। किसान बित्ता भर भी जमीन छोड़ने को तैयार नहीं थे। उनमें गजब का जोश था। गॉवों में किसानों के दो तीन लीडर निकल आते है। जिनमें पं कालीचरण का लड़का ताराचरण प्रमुख है। वे जमींदारों के विरोध में आंदोलन कर रहे है। वे दरभंगा और पटना तक दौड़ लगा रहे थें इस संघर्ष की जरा सी बात भी जनता मे विस्तार पूर्वक छपती थी । सभा, जुलूस, दफा एक सौ चालीस, गिरफ्तारी, सजा, जेल, भूख–हड़ताल, रिहाई । यह सिलसिला किसानों को ठंडा नही कर सकता । इन संघर्षों के बावजूद किसानों का आंदोलन अपेक्षित सफलता प्राप्त नही कर सका, क्योंकि प्रथम कांग्रेसी मंत्रिमंडल जो १९३६ में बनता है के मंत्रियों ने अपनी पीठ कर दी किसानों की ओर, मुँह कर दिया जमींदारों की ओर । दुनिया भर में बदनामी फैल गई कि बिहार की कांग्रेस पर जमींदारों का असर है । जवाहरलाल तक ने खुल्लमखुल्ला यह बात कही ।

बलचनमा उपन्यास में किसान–आंदोलन का मूल प्रयोजन जमींदारों की बेदखली से अपना बचाव करना था । बलचनमा किसानों का प्रतिनिधि है । और उसके हृदय में विद्रोह की प्रबल आग धधक रही है । वह इस आंदोलन में सक्रिय साझेदारी करता हुआ दिखाई देता है। बलचनमा एक ईमानदार व कर्मशील युवक है, बलचनमा के माध्यम से लेखक का उद्देश्य बलचनमा के जीवन संघर्ष के चित्रण द्वारा उस समाजवादी चेतना की ओर निर्देश करना है। जो साधनहीन एवं स्वाधिकार वंचित किसान के अंतर में अन्याय तथा अत्याचार के प्रति विद्रोह की भावना को जन्म दे रही है।[1] बलचनमा के नेतृत्व में कृषक वर्ग संगठित हो गया है। अपनी–अपनी धरती की हिफाजत के लिए किसान एक होने लगे। पहले उनकी तरफ से रहमान साहब जमीदारों को कई बार समझा चुके थे और अब कोई रास्ता नही था। रैयत लोगो ने तय कर लिया कि लाश गिरे मगर अपने खेत दूसरों की दखल में नहीं जाने देंगे।

इस प्रकार महापुरा के किसानों और जमीदारों के बीच संघर्ष छिड़ जाता हैं। डा० रहमान खेतिहरों का नेतृत्व कर रहे थे और बिहार से राधाबाबू भी आये थे। खेतिहारो की विजय हुई और जमींदोरो, पुलिस और हाकिमों की धांधली न चल सकी। राधाबाबू इस आंदोलन के दौरान बलचनमा से बालंटियर का कार्य लिया था। उसने इस आंदोलन में सक्रिय योग दिया और अब उसके भीतर छिपा नेता भी करवटें बदले लगा। इस प्रकार वह अपने श्रम के बल पर चरवाहे से बहिया, बहिया से स्वयं–सेवक, स्वयं सेवक से किसान–मजदूर, किसान–मजदूर से किसान और किसान से किसान नेता बन गया और उजड़ा हुआ कृषक बिना किसी के सहारे के जमींदारों के साथ संघर्ष करता हुआ अपनी वास्तविक स्थिति को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील दृष्टिगत होता है। अब उसे पूर्ण विश्वास हो चला कि जो खेत जोतेगा, खेत उसी का होगा। जो कमायेगा वही खायेगा। कमाने वाला खायेगा, इसके चलते जो कुछ हो। इंकलाब जिंदाबाद...। जमीन किसकी

---

[1] डा० सुषमा धवन –हिन्दी उपन्यास पृ० ३०४–५

जोते बोये उसकी। अंग्रेजी राज नाश हो। जमींदारी प्रथा नाश हो किसान सभा जिंदाबाद। लाल झंडा जिंदाबाद... इंकलाब जिंदाबाद...।[१]

इस तरह आंदोलन की आग से गुजरते हुए किसानों में इतनी अधिक चेतना आ गयी कि वे समझनेलगे कि कांग्रेस उनके हितों का संरक्षण नही कर सकती है। अतः उन्हें अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए सत्ताधारी कांग्रेस से भी संघर्ष करना होगा। बलचनमा का यह कथन सच जानो भैया, उस वक्त मेरे मन में यह बात बैठ गयी कि जैसे अग्रेंज बहादुर से सोराज लेने के लिए–बाबू भैया लोग एक हो रहे है, हल्ला–गुल्ला और झगड़ा–झंझट मचा रहे है उसी तरह जन बनिहार, कुली–मजदूर और बहिया–खवास को अपने हक के लिए बाबू भैया से लड़ना पड़ेगा।"[१]

"गढ़ पोखर आपके हाथों से न निकले, इसके लिए हमें एकजुट होकर कोशिश करनी होगी। इस संघर्ष में लिषाद महासभा नहीं, किसान सभा जैसी पुझारू जमात ही हमारी सहायता कर सकती है।"[२]

सरकारी तंत्र की सहायता से जमींदार मछुओं का घर बैठे–बैठे ही विरोध करते है। देपुरा के जमींदार दफा १४४ लगवा देते है। मछुओं पर लूट और गैरकानूनी कार्यवाहियों का अभियोग लगाया जाता है। लेकिन मछुओं में सम्मान प्राप्त होने के बाद ही जागृति आती है। मधुरी की प्रेरणा से गॉव के लोग मछुआ–संघ जिंदाबाद——–हक की लड़ाई.... जीतेंगे। जीतेंगे !...गढ़पोखर हमारा है, हमारा है; के नारे लगाते हुए पुलिस वाहन में बैठे नजर आते है।

नागार्जुन के उपन्यासों में किसान संघर्ष 'रतिनाथ की चाची' से लेकर वरूण के बेटे तक चलने वाली एक श्रृंखला है। जिसका बीज वपन 'रतिनाथ की चाची' में हुआ वह धीरे–धीरे किसान–मजदूरों के खेत खलिहानों से होती हुई आदिवासियों की जिंदगी

---

[१] नागार्जुन–बलचनामा पृ० १५३

[१] नागार्जुन–बलचनामा पृ० ८५

प्रभावित करती हुई गढ़पोखर के तालाब पर पड़ाव डालती है। यहाँ से जो संघर्ष चला वह जेल में जाकर अपने अधिकारों की माँग में कामयाब होती है। जमींदारो ने सब प्रकार की कुचेष्टा इन्हें रोकने हेतु की, लेकिन संघर्ष की ज्वाला के आगे उनकी कुचेष्टाएं भस्म होती है।

अतः नागार्जुन की औपन्यासिक कृतियों में किसान आंदोलन का जो चित्रण हुआ, वह जमींदार वर्ग के विरूद्ध शोषण के प्रति विद्रोह और अपने अधिकारों के प्रति जागरूपता का ही परिणाम है। किसान को जिन स्थितियों से गुजरना पड़ता है, उसके

माध्यम से मानो नागार्जुन पूरे भारतीय ग्रामीण समाज को उसके वर्तमान रूप में प्रस्तुत किया है। उपन्यासकार की कृषक वर्ग में ब्याप्त चेतना यह निश्िंचतता प्रदान करती है कि अब किसान किसी के जोर ज़ुल्म के आगे नहीं झुकेंगें। अब वे कमर कसकर अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष करेगे। और अपना अधिकार लेकर रहेगें। नागार्जुन को अहिंसा के सिद्धांत में अब विश्वास नहीं है। यह सिद्धांत किसी भी तरह की समस्याओं का निदान करने सक्षम नहीं है। कृषकों की बहु–आयामी समस्याओं को राजनीतिक दल भी सुलझाने में नाकामयाब रहे है। क्योकि वोट की राजनीति उन्हें भी निहित स्वार्थों से प्रच्छन्न समझौते के लिए बाध्य कर दिया है। और सारी समस्याओं का निराकरण उपन्यासकार साम्यवादी दर्शन के माध्यम से करना चाहता है।

इस प्रकार नागार्जुन "सुसंगत रूप से साम्राज्यवाद के विरोधी थे, सम्प्रदायवाद के विरोधी थे, जातिविरादरी बाद के विरोधी थे और जनता के बारे में, किसानों के बारे में, खेत मजदूरों के बारे में, शहर के मजदूरों के बारे में जितनी जानकारी रखते थे, उतनी बहुत–से साहित्यकारों को ही नही, राजनीतिज्ञों को भी शायद ही हो।"

(ख) मजदूर आंदोलन

---

[२] नागार्जुन–वरूण के बेटे पृ० २८७

यूरोप में पुनर्जागरण के परिणाम स्वरूप जन्मी अर्थब्यवस्था, जो उद्योगपतियों के माडल की थी जब सारे दुनिया में अपना जाल फैला रही थी, उसी के क्रम मे भारत में भी उनके शिकंजे शुरू हुए। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षो तक भारत में औद्योगीकरण का वर्चस्व स्थापित हो चुका था, इसके प्रधान पूजीपतियों ने जो यांत्रिक ब्यवस्था फैलायी उसमें भूमियों का क्षरण होना शुरू हुआ और किसान अब मजदूर बनने की राह पर पहुंच गया। अब मजदूरों को चिंता हुई अपनी रोजी–रोटी की, जो पेट की ज्वाला को शांत करने के लिए इन कल–कारखानों में मालिको की शर्तों पर मजदूरी करने पर बाध्य हुए। और यही से शुरू होता है मजदूरों के शोषण का नंगा नाच। लेकिन अब मजदूरों में आयी राजनीतिक चेतना उनको श्रमिक संगठन बनाने पर बाध्य करने लगी, और यही से शुरूआत होती है मजदूर आन्दोलन की।

इस तरह से किसान आंदोलन की तरह मजदूर आंदोलन की नीव पड़ती है। चूँकि किसान आन्दोलन जमींदारों के शोषण से शुरू होता है। किसान आंदोलन की तरह नागार्जुन के उपन्यासों में मजदूर आंदोलन का वर्णन नहीं है। फिर भी कतिपय स्थलों पर इन श्रमिक आंदोलनों का जिक्र हुआ है।

"मजदूर आंदोलन की शुरूआत को स्पष्ट करते हुए डॉ चंदी प्रसाद जोशी जी कहते है–मजदूर वर्ग और उसकी समस्यायें औद्योगिक युग की उपज है। औद्योगिक मजदूर वर्ग का शोषण ही मार्क्स के दर्शन का आधार था। शोषण की यह नयी समस्या यदि पाश्चात्य मशीनी सभ्यता की उपज थी, तो उसका उपचार भी पाश्चात्य चिंतक ही भली–भॉति कर सकता था। भारत में औद्योगिक विकास के समानांतर मजदूर वर्ग तथा उसकी बढ़ोत्तरी के साथ मार्क्सवाद का प्रचार भी होता गया। मार्क्सवाद तथा रूस की प्रेरणा लेकर सन् १९२८ में साम्यवादी दल की स्थापना भी हो चुकी थी। सन् १९२९ ई० में साम्यवादी दल ने अखिल भारतीय मजदूर–संघ पर भी आधिपत्य जमा लिया। नये नेतृत्व में मजदूरों की चिंतन–पद्धति तथा कार्य–पद्धति दोनों में अन्तर आया...। पूँजी

पतियों के विरूद्ध हड़ताल उनका मुख्य कार्यक्रम बन गया। हिन्दी उपन्यासकारों पर भी पूँजीपति–मजदूर संघर्ष का प्रभाव पडा।''[1]

नागार्जुन की औपन्यासिक कृतियों– 'बलचनमा' 'बाबा बटेसरनाथ', 'दुखमोचन' और 'वरूण के बेटे' में पूँजीपतियों के विरूद्ध मजदूर–आंदोलन को सक्रिय भूमिका में चित्रित किया गया है। 'बलचनमा' की कथानक यद्यपि कृषकों–जमींदारों के संघर्ष की कहानी है, फिर भी बलचनमा आधा ''मजदूर और आधा किसान' है। बलचनमा की कथा आत्मबीती कथा है। विशेष रूप से चौदह से बाईस वर्ष तक की आयु का खंड चित्र है।''[2] इस प्रकार बलचनमा की कथा जहॉ एक ओर किसान– जमींदार के संघर्ष से संबंधित है वहॉ दूसरी ओर मजदूर–पूंजीपति वर्ग से संबद्ध है।

'बाबा बटेसरनाथ' में नागार्जुन मजदूर हड़ताल का जिक्र करते हैं कि–''देश का हर हिस्सा नयी चेतना से स्पंदित होकर अंगड़ाइयाँ ले रहा था। आसाम–बंगाल रेलवे में हड़ताल हुई, मिदनापुर के किसानों ने लगानबंदी का आंदोलन छेड़ दिया। दक्षिण मलावार के मोपिलो ने बगावत कर दी। पंजाब में सरकार के पिट्ठू, महंतों के खिलाफ अकाली सिखों की घृणा भड़क उठी।''[3]

'दुखमोचन' भी इसी तथ्य को उजागर करता है ''चाचा लंदन में आज–कल बड़ी अशांति है। जहाजी मजदूर हजारों की तादाद में हड़ताल करने वाले हैं, समूचा शहर उनका साथ देगा।'' इससे स्पष्ट होता है कि नागार्जुन की औपन्यासिक दृष्टि केवल भारत में होने वाले मजदूरों के आंदोलन की ओर नहीं है वरन् अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी है। 'वरूण के बेटे' में कम्यूनिस्ट नेता मोहन मॉझी, किसान सभा का लीडर, मछुआ लोगों से कहता है कि गढ़पोखर को हाथ में रखने के लिए हमें एक जुट होकर कोशिश करनी होगी। हम लोग मछुआ निषाद भाई हैं– ''किसी युग में हमारी संख्या थोड़ी थी। उन दिनों केवल चलाना और मछलियॉ

[1] डा० रामविलास शर्मा– लेख–नागार्जुन रचना प्रसंग और दृष्टि पृ०१७ संपादक राम निहाल गुंजन
[2] डा० चडी प्रसाद जोशी–हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन पृ० ३६१
[3] डा० सरोजिनी त्रिपाठी–आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तुविन्यास पृ० २११

पकड़ना हमारे पेशे थे। अब हमारी बिरादरी खेती भी करती है, मजदूरी भी। पढ़–लिखकर कुछ एक भाई–बहन ऊँचे ओहदों पर भी पहुँच रहे हैं। जात–पॉत की पुरानी दीवारें ढह रही है; नये प्रकार की विशाल बिरादरी उनका स्थान लेने आ रही है। एकता का यह आलोक देहातों में भी प्रवेश कर चुका है।"[1] यह मछुओं के संघर्ष की कथा भी एक प्रकार से श्रमिक मजदूरों के सघर्ष की कहानी है।

'इमरतिया' में –"चीनी के कारखाने में लाल झंडे वालों ने हड़ताल कर दी है। पचास–पचपन मजदूर पकड़े गये हैं। पिछली रात बड़ी देर तक नारे लगते रहे। जेलर से लेकर लेबर मिनिस्टर तक को मुर्दा बनाया जाता रहा। नौजवानों के गलों में जोर बहुत था; जेलर को आखिर झुकना पड़ा। हड़ताली हवालातियों की मांग जेलर को मंजूर करनी पड़ी। जमात में बड़ी ताकत होती है न? और कहीं उस ताकत के पीछे पढ़े–लिखे समझदार लोगों की सूझ–बूझ भी हुई तो फिर क्या कहना;

मजदूर–वर्ग राजनीतिक नेताओं के आचरण के दोगलेपन को बखूबी जानता है। राजनीतिज्ञों और पूंजीपतियों की मिली–भगत की जानकारी उन्हें है। "मजदूर नेताओं की आपसी बातचीत सुनने पर ऐसा लगा कि हड़तालियों की ५० प्रतिशत माँगे मिल वालो को माननी ही पड़ेगी...राज्य के श्रममंत्री का इतना दबाब तो इन पर डलवाया ही जायेगा।"[2] इसीलिए चीनी मिल के मजदूर नेताओं की सभा के अंत मे नारे– "इंकलाब" जिन्दाबाद। किसान–मजदूर एकता' "जिंदाबाद।" फैक्ट्रियों में हड़ताल एवं मजदूरों द्वारा अपने अधिकारों के लिए नारेबाजी उनमें आयी जागृति का ही फल है।

इस प्रकार नागार्जुन अपने समय की जिस ऑच को लेकर वे कथा साहित्य की जमीन पर आये थे, उस आँच को अपने समय की सर्वाधिक उन्नत और प्रगतिशील विचारधारा से और भी प्रखर बनते हुए, वे शुरू से ही जनधर्मिता की उस पगडण्डी पर चले, जिस पर चलते हुए ही वे अपनी मानवीय और बैचारिक आस्थाओं को उनकी सही मंजिल पर ले जाते हैं।

---

[1] नागार्जुन– बरूण के बेटे पृ० २८६, नागार्जुन चुनी हुई रचनाएं भाग–१ संपादक शोभाकांत

[2] नागार्जुन–इमरतिया पृ० ८६

दोनों विधाओं का तुलनात्मक अध्ययन

नागार्जुन के उपन्यासों में ऑचलिकता एवं व्यापकता के तत्त्वों का तुलनात्मक अध्ययन, से यह ज्ञात होता है कि नागार्जुन ने मिथिला के क्षेत्रीय जन–जीवन, रम्य–प्रकृति, पक्षियो की चहचहाहट, परिवेश, खान–दान आदि का जो चित्रण प्रस्तुत किया है, इससे उपन्यासकार का अपने अंचल के प्रति सहज लगाव या यों कहें मोह प्रतीत होता है। डा० शशिभूषण सिंहल के शब्दों में– "नागार्जुन की कला की विशेषता है–कथन का सुनिश्चित क्रम, कथ्य का संक्षिप्त निरूपण; सजीव–चित्रण प्रसंग की मार्मिकता तथा प्रगतिशील तत्वों के प्रति आग्रह। वे रेणु की भॉति, चित्रण, शिल्प के प्रति सयास सचेष्ट नहीं, किंतु चित्र की पृष्ठभूमि तथा उसके अवयवों को पहचानने में तथा अंकित करने में ऑचलिक उपन्यासकारों में अग्रणी है।"[१]

इस प्रकार से उनके उपन्यासों में दोनों विधाओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिए क्रमवार एक–एक उपन्यासों का विवेचन दृष्टव्य है।

'रतिनाथ की चाची' यह ब्राह्मण विधवा की करूण–गाथा है। जिसमें गौरी के माध्यम से उत्तर भारत के नारी–जीवन की पीड़ा को मूर्तिमन्त किया गया है। वह नारी जो सदैव अपने त्याग, बलिदान, आदर्शो के प्रति समर्पित होती है। और यहां गौरी भी अपना आदर्श बनाती है, परिवार की मर्यादा। सब प्रकार से उपेक्षित होकर भी वह जयनाथ का नाम गुप्त रखती है, जो उसकी ब्यथा का जिम्मेदार पुरूष है। घोर उदासी के क्षणों में भी वह रतिनाथ के प्रति अपार–प्रेम दिखाकर सहानुभूति से गदगद हो उठती है। उसके पास एक ओर तो रतिनाथ के प्रेम का सुख है, तो दूसरी ओर उमानाथ द्वारा प्रताड़ित होने की उत्कट वेदना है। संतान का प्रेम यदि जीने की शक्ति देता है, तो उसकी उपेक्षा भीतरी–शक्ति का क्षरण भी करती है।

---

[१] डा० शशिभूषण सिहल . हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, पृ० १३१

इस प्रकार आँचलिकता में जहाँ मिथिला के ब्राह्मणों के अहदीपन तथा निष्क्रियता चित्रण किया है, वही ब्यापकता में उनके शोषक, शोषित, चरित्र को भी उजागर करता है। उनकी सामंती–मूलक प्रवृत्ति को उधेड़ता है। लेखक ने इस उपन्यास में समाज के विभिन्न वर्गों की आर्थिक स्थिति का ब्यौरा पेश करके मिथिला के जन–जीवन का समाज–शास्त्रीय चित्र भी प्रस्तुत किया है। मिथिला के ब्राह्मणों की आर्थिक विपन्नता उनके अहं को भी आहत करती है। उमानाथ कुलीन होते हुए भी अपनी शादी के लिए दो सौ रूपये कन्या पक्ष को देता है। इसे 'बिकौवा–विवाह प्रथा' भी कहते हैं। ब्राह्मण का नैतिक स्तर किस हद तक गिर जाता है, यह इसी बात का सबूत है, कि वे अपनी कन्याओं को बेच देते है। अनमेल विवाह धडल्ले से होते हैं।

इसी प्रकार लेखक ने शोषक–शोषित की समस्या भी उठायी है। जमींदारो द्वारा किसानों का शोषण बिहार में सर्वाधिक होता रहा है। "शुभंकरपुर के जमींदार रायबहादुर दुर्गानन्दन सिंह बडे जमींदार थे। अधिक ब्याज–दर पर तीन लाख रूपये आस–पास के गॉव में चल रहे थे। वे कर्ज के कागज के पुराने अगूँठे को साल–साल नया करवाते जाते। सूद भी मूल बनता जाता था। चक्रबृद्धि का यह क्रम राजाबहादुर की शरीर–वृद्धि के लिए रसायन का काम कर रहा था।"[1]

नागार्जुन के यथार्थवाद में अपनी अकूत परम्परा के सभी मूल्यवान तत्व सामाहित है। वे परम्परा के सभी जीवन्त एवं प्रगतिशील तत्त्वों को लेकर अपनी कृतियों के माध्यम से यथार्थवाद के आगे और भी गुणात्मक विकास करते हैं। और ऐसी मंजिल पर पहुँचा देते हैं, कि यह यथार्थवाद इस समूचे महाद्वीप का सर्वाधिक क्रांतिकारी यथार्थवाद बनकर अपने अध्ययन, विश्लेषण और मूल्यॉकन के लिए एक जबर्दस्त चुनौती जान पड़ता है।

---

[1] नागार्जुन : रतिनाथ की चाची, पृ० ८५

बलचनमा में वे ब्रिटिश–साम्राज्यवाद और भारतीय पूँजीवादी–सामंतवादी शोषण के विभिन्न तत्त्वों को प्रस्तुत करते हैं, जिनमें भारतीय जनता की संघर्षशील चेतना के तत्त्व परिदृश्य भी उपलब्ध होते हैं।

उनकी रचनाओं में यथार्थ के प्रति झुकाव, प्रारम्भिक दौर से ही रहा है। जब वे अपने आर्य–समाज, समाज–सुधार, गांधीवादी या दीगर मध्यवर्गीय संस्कारों के तहत आत्म–परिष्कार, हृदय परिवर्तन जैसे विचारों के प्रभाव में थे या कोरी सदिच्छाओं की जमीन पर लुभावने आदर्श खड़े कर रहे थे।

उन्होंने बिहार प्रांत के मिथिला और दरभंगा जनपद के जन–जीवन को अपनी औपन्यासिक कृतियों का आधार बनाकर, युग के विभिन्न राजनीतिक दलों, विचार–धाराओं, आंदोलनों तथा विश्वासों का वास्तविक–वर्णन प्रस्तुत करते हुए नवीन सामाजवादी चेतना को भास्वर स्वर प्रदान किया है। इस प्रकार एक ओर तो बिहार के जनपदों के कुशल चितेरे होने की वजह से उनकी कृतियां ऑचलिकता के रंग में रंगी गयी है, और दूसरी ओर प्रगतिशील चेतना के उपन्यासकार होने के नाते वे पूरे देश के पद–दलित एवं जन–साधारण के पक्षधर बनकर हमारे सामने आते हैं, जिन्हें हम व्यापकता की दृष्टि कह सकते हैं।

नागार्जुन की स्वयं ही स्वीकारोक्ति है–"शोषक और तानाशाही शक्तियों के खिलाफ जनमत तैयार करना मेरा पहला काम हो जाता है। संघर्ष के लिए जो प्रतीक मुखरित होते हैं, उन्हें उभारता हूँ, ताकि रग–रग में माहौल पैदा किया जाये..... अस्सी प्रतिशत जनता या किसान हमारी इष्ट देवता है–जो जीवन के आस–पास फैली हुई है। मै भी उन्ही के साथ जुडा हूँ, उनसे बात करता हूँ। मैं ऐसे वर्ग को प्रतिनिधि नहीं चुनता जिनमें मैं नहीं हूँ।"[1]

---

[1] ब्रजभूषण सिंह आदर्शः हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो का अनुशीलन पृ० ४०६

'बलचनमा' का दर्द अंचल के एक मिथिला गॉव के एक ब्यक्ति का दर्द नही था, अपितु पूरे समाज के बृहद् जीवन का दर्द था। वह अपने युग की पीडा का प्रतिनिधित्व करता है। वह घरेलू–मजदूर है, किसान, टहलुआ, वालेंटियर और शोषण के विरूद्ध आवाज उठानेवाला सोशलिस्ट कार्यकर्त्ता भी। शोषण की गिरफ्त से छूटने के संघर्ष मे उसका अन्त होता है, पर कही समझौता नहीं करता है। समझौतेवादी नीति ने पुरानी पीढ़ी को आजीवन दु.ख भोगने के लिए विवश किया, इसीलिए वह गॉधीवादी अहिसक नीति से आगे बढकर अपनी जमीन तथा अपने हक के लिए विरोध एवं संघर्ष करता है। अब उसमे ब्यापक दृष्टि का विकास हो गया है। "जमीन किसकी ? जोते बोये उसकी।" अब वह किसान की आजादी की बात करता है। अब उसकी आजादी जूठन खाने से मुक्ति की नहीं है; अपितु अपना हक छीनने की है। "निःसंदेह बलचनमा से प्रेमचंद की ग्राम–कथा की परंपरा को विकास की नयी दिशाये मिली है। इस कृति मे हिन्दी ऑचलिक कथा का एक स्वस्थ्य सुस्थिर एव परंपरा प्रथित रूप दिखाई पड़ता है। एक विद्वान ने इसे प्रेमचंदोत्तर हिंन्दी ऑचलिक परंपरा का मूल स्वर माना है।"[१]

'गोदान' के होरी का कंधा शोषण के जुएं में जुड़ा तो अंत तक जुड़ा ही रहा और अंत में होरी को दम तोड देना पड़ा। 'गोबर' शोषण की पीड़ाओं के प्रति केवल वैचारिक विरोध करके अपनी नियति को स्वीकार कर पलायनवादी हो जाता है, लेकिन बलचनमा तक आकर विद्रोह की वैचारिकता ब्यावहारिक स्तर पर नये स्पन्दनो की क्षमता पा जाती है। युगों की दबी पीड़ा अपनी मूकता त्यागकर गरज उठती है, और उसमें हमें विद्रोह का एक अंजाना दर्शन मिल जाता है।

इस प्रकार 'बलचनमा' उपन्यास में केवल महपुरा गॉव की ही कथा नहीं है, बरन् बिहार के उत्तरी भाग के समूचे लोक–जीवन का इसमें पारदर्शी चित्र उपस्थित

---

[१]आलोचना स्वातन्त्रयोत्तर विशेशांक–२, पृ० १६६

होता है। इसी कारण इसकी ऑचलिकता यहीं टूटती है। नमक–सत्याग्रह, सन् ३४ का भूकम्प, कांग्रेंस–मंत्रिमंडल का गठन, गॉधी जी द्वारा जन आंदोलन की चर्चा आदि एक सी बातें है जो व्यापकता लेकर उपस्थित होती है।

इस प्रकार 'बलचनमा' में जो ऑचलिक तत्वों वस्तुओं, संस्कारो, सामाजिक रूढ़ियों, विधि–विधानों की चर्चा की गयी है वहीं इसी में ही व्यापकता के बीज भी सन्निहित है। भाषा भी इसी व्यापकता में समय और प्रसंगानुकूल व्याप्त है। लेखक यौन–प्रसंगों की गलियों में नहीं भटकता और न ही उसने स्त्री–पात्रों की सर्वत्र उपस्थिति की अनिवार्यता ही स्वीकारी है। बलचनमा के व्यक्तित्व का विकास साधारण से असाधारण तक पहुँच जाता है। इसमें लेखक ने पात्र और पाठक के बीच में कहीं कोई बिचवई नहीं की है। पात्र (बलचनमा) अपनी बात पाठकों से कहते हुए कहीं–कहीं तथ्यों के प्रति उनकी गहरी प्रति–क्रियाये भी जानना चाहता है।'

'बाबा बटेसरनाथ' में कई पीढ़ियों का ऐतिहासिक दस्तावेज प्रस्तुत है। दरभंगा के पास का 'रूपउली' गॉव परिवर्तन की ॲगड़ाइयॉ लेता हुआ आज की प्रगतिशील पीढ़ी का केन्द्र स्थल बना हुआ है। इस उपन्यास में घटनाओं का केन्द्र स्थल बना हुआ है। इस उपन्यास में घटनाओं का ऊहाफोह नहीं है, न ही पात्रों की अनावश्यक भरमार है। प्रसाद–शैली के कारण अभिब्यक्ति में सहजता का गुण आ गया है। यह सच्चे अर्थों में ऑचलिक रचना है। परन्तु व्यापकता का वर्णन भी इसमें उसी सलीके से समाहित हैं। शोषण, सामंती–व्यवस्था, जमींदारी–व्यवस्था, राजनीतिक–चेतना, थाना, कोर्ट–कचहरी इत्यादि सब इसी उपन्यास में समाहित है जो व्यापक जन आंदोलन की बात करता है।

वट–वृक्ष जहॉ ॲचल की परंपरा का प्रतीक है। उसकी स्वस्थ सघन छाया में सम्पूर्ण व्यापकता बैठी हैं। गॉव के स्वार्थी व्यक्तियों द्वारा वट–वृक्ष को काटने का विचार ही, गॉव में अशांति को जन्म देता हैं। निरीह एवं बेगुनाह बौड़म चमार को

अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है। अन्त में वट–वृक्ष स्वयं को मुत्यु का वरण करते है।

परम्परायें समय बीतते–बीतते चुकने लगती हैं, पर वे मरती नहीं हैं। अंचल में जहॉ लेखक ने ग्राम–वासियों के अन्ध–विश्वास एवं जड़वादी–जीवन–पद्धति की सड़ांधता का चित्रण भी किया है, जिसकी केंचुली को उतारे बिना प्रगति एवं परिवर्तन के गवाक्ष खोले नहीं जा सकते है। वही ब्यापकता रूपी विशाल जन आंदोलन, का भी खाका खीचता है।

"राजनीतिक उथल–पथल का देश–ब्यापी विराट प्रदर्शन १९२१ के अन्त में पहली बार हुआ। 'प्रिन्स–ऑफ–वेल्स' को बड़े–बड़े शहरों में घुमाया गया था। शाही स्वागत तो उसका हुआ नही, हॉ निरोध प्रदर्शन अवश्य हुए। ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति भारतीयों के अंदर जो विक्षोभ घुट रहा था, उसका इजहार इतने जोरो में हुआ कि बिलायती तानाशाह बुरी तरह घबरा उठे, और दमन की चक्की दस गुनी रफ्तार से चला दी।"[1]

रूपउली अनपढ़, पुरातन–पंथी लोगो की बस्ती है, और दो–चार ऊँचे पदों पर रहनेवालों का भी जन्म स्थान है। परन्तु पढ़े–लिखे लोग शहरो में है, जिनका सम्बन्ध गॉवो से जलवायु–परिवर्तन के निमित्त प्रवास करने जैसा ही है। फिर भी परिवर्तन की ऑधी रूपउली को आज जहॉ उसे बहा ले आयी है। 'मैला ऑचल' में तो ऑचल के लोग अग्रेंजी दवा प्रयोग करने की अपेक्षा मर जाना अधिक श्रेयस्कर मानते थे। रूपउली में जनक्रांति के लिए स्थल बन सकता है।

ऑचलिकता को समग्रता में ब्यक्त करने में प्राकृतिक–सम्पदा, सांस्कृतिक–परम्परायें, आचार–विचार, मान्यताएं–धारणाऍ तथा प्रवहमान जीवन–धारा की जिन भीतरी गहराइयों की अपेक्षा होती है, सब इसमें है। एक तरफ जमींदारों की

---

[1] नागार्जुन : बाबा बटेसर नाथ, पृ० ६६

जिंदगी है, तो दूसरी ओर उनके टहलुओं की भी है; और अब आजादी के बाद एक नया सरकारी अफसरों तथा नेताओं का मिला–जुला वर्ग तैयार हुआ है। जिसका भी जीवन्त चित्र प्रबुद्ध लेखक की कलम से उपस्थित किया गया है।

'बाबा बटेसरनाथ' की रचना की प्रेरणा–भूमि की भी यही गन्ध है, जिसमें लेखक ने रूपउली की प्रत्येक धड़कन तथा ठनक को बॉध देना चाहता है। उसने इसी धड़कन के जादू में एक ब्यापक दृष्टिकोण को जोड़ दिया है, जो कहीं से रचना–विस्तार में अतिशयोक्ति या अनर्गल प्रलाप नहीं दिखलाई पडता है।

'नई पौध' की भूमि एक ॲचल ही ळे, लेकिन इसके नायक का अर्थात् पं० खोखा झा का क्षेत्र, भागलपुर, मुंगेर, संथाल परगना, पूर्णिया आदि जिलों में था। यह उपन्यास ग्राम–जीवन में उभरती, उठती नई पीढ़ी की कर्मठ चेतना का उपन्यास है। मूलतः इसमे अनमेल विवाह की समस्या ली गई है, जिसका समाधान युवकों के ब्यापक दृष्टिकोण से ही संभव हो पाता है। मैथिल ॲचल की बेमेल विवाह–समस्या एक दीर्घकालीन समस्या है। न जाने कितनी बालिकाएं अधेड़ या वृद्धों के गले मढ़ दी जाती थीं। लोक–लाज और पारिवारिक मर्यादा के आहत होने के भय से कन्याएं इसका प्रतिरोध नहीं कर सकती थी। जिसे नवयुवको ने ब्यापक दुष्टिकोण रखकर सुलझा दिया, भले ही इसके निमित्त उन्हें संघर्ष करना पड़ा।

ॲचल में उठने वाली छोटी–छोटी समस्याओं का भी वर्णन इस उपन्यास में है। जैसा कि नागार्जुन इस उपन्यास में ब्यक्त करते हैं–"इन्हीं युवकों ने गॉव में पुस्तकालय की स्थापना की थी। माँग–मूँग कर किताबें इकट्ठी की गयी थी, दो–तीन अखबार भी आने लगे थे।.....गॉव का मुखिया चीनी और मिट्टी का तेल कंट्रोल रेट पर और सो भी समय पर कम ही लोगों को देता था। अपने मकान के सामने उसने बीस गज लम्बी बास गाड़ रक्खी थी, जिसके छोर पर तिरंगा फहरा

रहा था। कपड़े की परमिट में भी लाइसेन्सदार मारवाड़ी से सॉठ–गॉठ करके मुखिया काफी कमा चुका था।

पिछले साल 'बम पार्टी' वालों ने डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के पास दरखास्त दी–"हमारे गॉव का मुखिया चीनी और किरासिन के बॅटवारे में धॉधली करता है, इस गड़बड़ी को फौरन दुरूस्त किया जाय।"

सप्लाई इन्सपेक्टर आकर गवाही ले गया। दरखास्त पर नौ आदमियों के हस्ताक्षर थे।..........."[1]

मिथिला के 'सौराठ–मेले' का वर्णन करते है जो वहॉ की परम्परा का द्योतक है। यहॉ लडकी वाले अपनी बेटी के लिए वर पसन्द करके ले आते थे। पंडित खोखा झा भी घटकराज की सहायता से वर प्राप्त करने के प्रयास में थे। वर के रूप में नौगछिया गॉव के जमींदार, साठ वर्षीय चतुरानन चौधरी मिले। खोखा पंडित को नौ सौ रूपये नतिनी बेचने के मिले और पचास रूपये घटकराज महाराज को । फिर 'बम पार्टी' की सक्रियता से चतुरानन चौधरी अनब्याहे लौटने के लिए विवश हो गये। इस प्रकार अनमेल विवाह की समस्या को ऑचलिक परिधान दिया गया है। ऐसा नहीं है, कि ब्यापकता का समावेश इसमें नहीं है। वहॉ भी इस परिधि के बाहर ही राजनीतिक प्रश्न तैरते नजर आते हैं; गॉव की बदलती हवा का रूप अब आधुनिकता की ओर हो गया है। भागवत की कथा सुनने के बजाय लोग शहरों में जाकर सिनेमा देखना अधिक पसन्द करते हैं। संस्कृत की पढ़ाई छोड़कर दुर्गानन्दन मधुबनी में मुहर्रिरी शुरू कर देते है और तीस–चालीस रूपये महीने बचा भी लेते है।

इस उपन्यास में ऑचलिक तत्त्वों का समावेश लेखक का मिथिला के गावों, कस्बों से गाढ़ा परिचय जताता है। रोज–मर्रा की छोटी–छोटी घटनाओं यथा–कुल्ला–फरागत, दातौन करना, स्टेशन पर गाड़ी पकड़ना आदि वर्णन से लेखक की

---

[1] नागार्जुन : नई पौध, पृ० ८५

यथार्थ दृष्टि दिखलाई पड़ती है। गॉव के लोग हैं, जो पोखर पर लोटा मॉजते है, चाकू से दातौन काटते है, नहाते समय संस्कृत के श्लोक पढ़ते हैं, और गॉव–पुराण की भी आपस में चर्चा कर लेते हैं। कहने का आशय है कि जन–जीवन की प्रत्येक गतिविधियों का परिचय लेखक देता है।

ऑचलिक शब्दों पर ध्यान दें तो ओसारे (बरामदा), छॅउड़ी (छोकरी), नसदानी (सुंघनी रखने की डिबिया), रने–बने (जंगल–मैदान या बंजर वीरान), मोहाड़ (तालाब या चभच्चा का बॉध), सतमाय (सौतेली मॉ) और दब (घटिया) आदि अनेक प्रयोग सर्वत्र मिल जाते हैं।

इसी प्रकार ब्यापकता की दृष्टि से देखें तो वाचस्पति के आस–पास की घटनाएं, गतिविधियां, यथा–'अण्डर–ग्राउण्ड,' सोशलिस्ट लीडर "[1] पॉलिटिक्स,' 'टीचर, हेडमास्टर आदि प्रयोग मिलते है!

'वरूण के बेटे' में भी ऑचलिक स्थल 'मलाही–गोढ़ियारी' के मछुओं की जिन्दगी–नामा की तस्वीर दिखाई पड़ती है। बलचनमा के बाद इसी रचना में ऑचलिक जीवन की विविध दृश्यावलियॉ प्रस्तुत हैं। मछुओं की ज़िन्दगी अपनी समग्रता में उद्घाटित होती है। उनकी सभी आशाऍ–आकांक्षाऍ, गढ़–पोखर तथा नदियों तक सीमित है। मछली ही उनकी सम्पदा है, इसीलिए लोक–गीतो में उन्हीं से सम्बद्ध बातें है।

मोहन मॉझी ही ऐसा नायक है जिसमें ब्यापक तन्तुओं को देखा जा सकता है। वह ज्यादा शिक्षित नहीं है, परन्तु एक समाज–शास्त्री की तरह सामाजिक–परिवर्तनों की नाड़ी को वह सधे हाथों से पढ़ सकता है। वह किसी एक छोटे–मोटे निषाद संगठन से सन्तुष्ट नहीं होता है। क्योंकि वह जानता है कि जातिगत संगठन आर्थिक स्तर पर किसी वर्ग को तोड़ते हैं, और इससे दो–चार

---

[1] नागार्जुन : नई पौध , पृ० १०६

टुटपुंजियें नेताओं का लाभ भले ही हो जाय, पूरे वर्ग का विकास अवरूद्ध हो जाता है, इसलिए मोहन माझी कहता है–"गढ–पोखर हमारे हाथों न निकले इसके लिए हमें कोशिश करनी होगी। इस संघर्ष मे निषाद–महासभा नहीं, किसान–सभा जैसी जुझारू जमात ही हमारी सहायता कर सकती है।"[1]

'वरूण के बेटे' उपन्यास में हम चित्रण का नया तेवर पाते हैं। लहेरिया–सराय के मलाही–गोढियारी क्षेत्र में 'गढ़–पोखर' की समस्या उपन्यास की केन्द्रीय समस्या है। परन्तु अन्य समस्याये गढ–पोखर से जुड़े मछुओं से किसी न किसी प्रकार स्वनिर्मित है। कोसी–बॉध के निर्माण के लिए हित–हितकारी समाज द्वारा श्रमदान की घोषणा के पीछे कितना बड़ा पेट हितकारी षड़यन्त्र चल रहा था, इसका चित्रण मछुओं की प्रतिक्रियाओं में ब्यक्त हुआ है। श्रमदान जनता के लिए था, किन्तु सरकार के कागजों में दैनिक मजदूरी का नाटक खेला जा रहा था। ठेकेदारों की आमदनी बढ़ाने का सुनियोजित षड़यत्र था। भ्रष्टाचार का दूसरा रूप, देपुरा अस्पताल के प्रसंग में प्रकाश में आता है, जहॉ ईमानदार और जनता का पक्षधर डाक्टर चार महीने से ज्यादा नहीं टिक सकता। भ्रष्टाचार की समस्या एक ब्यापक समस्या है, जिसे लेखक ने इसमें चित्रित करके अॅचल से उठकर देश–ब्यापी समस्या को इंगित किया है।

एक दूसरी समस्या शोषण की है। जिसके घिनौने चक्रब्यूह ने समाज के छोटे वर्ग को अभाव–अभियोग की दर्द–भरी स्थिति में डाल दिया है। शोषण समाज में मत्स्य न्याय को चरितार्थ कर रहा है। सम्पन्न भोला मॉझी खुनखुन का शोषण करता है, लेकिन उसे आय का यशांश ही मिलता है। जमींदारो द्वारा गढ़–पोखर का अवैध तरीके से बन्दोबस्त तथा सरकारी तंत्र की इस दिशा में सहयोग, भ्रष्टाचार के शिकंजों की जकड़न को मजबूत बनाता है।

---

[1] नागार्जुन : वरूण के बेटे, पृ० २८७

इस प्रकार इस उपन्यास में जहाँ आँचलिक शब्दों की भरमार है, वहीं पात्रों एवं परिवेश की अंतरंगता से व्यापक दृष्टि भी परिलक्षित होता है।

'कुम्भीपाक' उपन्यास यद्यपि आँचलिकता की कोटि में नहीं आता; फिर भी इसके तत्वों का समावेश यत्र–तत्र दिखलाई पड़ जाता है। इसमें लेखक ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों के व्यक्तियों की अनैतिक जिन्दगी के काले कारनामें पेश किये हैं; जो इस धरती पर नारकीय ज़िन्दगी जी रहे हैं। एक ओर जहाँ नारी जाति की अधम अनैतिक जिन्दगी के घिनौने दृश्य है, तो दूसरी ओर समाज–सुधार तथा साहित्य–सेवा के नाम पर अनैतिक प्रवृत्तियों की भी चर्चा है।

लेखक ने नारी–जीवन की अभिशप्त समस्याओं के सभी कार्य–कारण इस उपन्यास में प्रस्तुत कर दिये है। यदि एक ओर सामाजिक–सुधार के नाम पर चलने वाले संस्थानों तथा वेश्यालयों में पुरूष की वासना तुष्ट करने में नारी घुट रही हैं, तो दूसरी ओर ऊँचे परिवारों में भी नारी को उनके सामाजिक अधिकारों से वंचित कर घर की चहार–दीवारी में कैद कर रखा जाता है; जहाँ वे अलग किस्म की मानसिक घुटन की पीड़ा सहती है। यहाँ पुरूष का अहं तुष्ट होता है। समाज में पुरूष अभिजात्य का मुखौटा ओढ़े नारी की नियति से खेलता है। नारी–उद्धार के आश्रमों में भोगवादी संस्कृति पल रही है। यहाँ लेखक की सोंच व्यापक थी।

अनमेल विवाह जो अंचल की प्रमुख समस्या है उसके चित्र भी इस उपन्यास में उद्घाटित किये गये है। एक ओर अधेड़ उम्र के व्यक्ति के गले उर्मिला (उम्मी) मढ दी जाती है, तो दूसरी ओर अल्प–शिक्षित युवतियाँ उच्च–शिक्षित व्यक्ति से विवाह बन्धन में बाँध दी जाती हैं। दोनो ओर स्थितियां घुटन को आमंत्रण देती हैं। नागार्जुन की सोंच आँचलिकता की परिधि तक ही नहीं थी, अपितु व्यापक थीं। उनके व समाज के बीच कोई लकीर नहीं थी, वे समाज में व्याप्त थे, समाज उनमें व्याप्त था। 'कुम्भीपाक' उपन्यास जहाँ राजनीतिक, सामाजिक घिनौने रूप को उजागर

करता है, वहीं इसी समस्या में छोटी–छोटी समस्यायें भी उजागर होती हैं। हमारी छोटी–छोटी समस्याएं आंचलिक समस्यायें हैं, और बड़ी समस्यायें व्यापक समस्याये हैं, जिसे किसी ऑचल में बॉध कर नहीं रखा जा सकता है। सामंती सोंच, सामंती शोषण, भ्रष्टाचार, अनाचार, दुराचार ये सभी व्यापक समस्यायें हैं, जो राजनीति को अपराधीकरण करने पर बल देती हैं। सामाजिक विषमता की खाई किस कदर चौडी होती जा रही है। गॉव की सोंच रिक्शेवाले की सोच, चौकीदार का बयांन इन सभी स्थितियों को उद्घाटित करता है।

'दुखमोचन' उपन्यास मिथिलांचल के 'टमका–कोइली' गॉव के जीवन एवं परिवेश का कथानक है। इसका भी दायरा व्यापक है। यह प्रेमचंदीय शैली की कडी में है। यथार्थवादी शैली में, सुधारवादी दृष्टिकोण का समावेश है। नागार्जुन की 'प्रगतिवादी भावना' ग्राम–सुधार के द्वारा व्यक्त होती है'। 'टमका–कोइली' वह ॲचल खण्ड है जहॉ के अपने आमो के बाग हैं, धान के खेत है, खपरैल–फूस के घर हैं, तथा छोटे–बड़े और सीधे–टेढ़े रास्ते हैं। यद्यपि कथा ॲचल की ही है, लेकिन दृष्टिकोण व्यापक है। यदि गॉव की राजनीति से चौंकाने वाले दृश्य हैं तो पारिवारिक जीवन की छोटी–मोटी घटनाओं का संभार भी है। बोली–बानी में भी व्यापकता है।

दुखमोचन का जीवन दर्शन है, पूरे जन–जीवन में घुल–मिलकर उनका विश्वास अर्जित कर लेना। सामाजिक सुख में, आत्मसुखों का विलयन ही मन में त्याग की ऊँची भावनाएं पैदा कर सकता है। दुःखमोचन इसी विचार–दर्शन से प्रेरित होकर ग्राम के जन–जीवन से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। वह 'टमका–कोइली' को नया रूप देता है। सड़क, नालियॉ, गलियॉ, घर तथा रास्तों के निर्माण के साथ लोगों में आस्था एवं विश्वास की ज्योति जगाते है। गॉव के साधारण व्यक्ति बौधू चाचा द्वारा ध्वजोत्तोलन कराकर, गांधी जी की रामराज की कल्पना को साकार होने की दिशा में एक उदाहरण पेश करते हैं। दुखमोचन अपने व्यक्तित्व के माध्यम से श्रम एवं स्वावलम्बन का महत्व स्थापित करते है। इस तरह से वे गॉधीवादी

जीवन–पद्धति के सांचे में ढले हुए लोगो को श्रम की महिमा का पाठ पढ़ाता है। उनकी कथनी और करनी में असामंजस्य नहीं है। इस प्रकार अंचल की भाव–भूमि को ब्यापकता की उदात्तता पर प्रतिस्थापित करते हैं।

गॉव के बाशिन्दों की अपनी सूझ–बूझ एवं जीवन–दृष्टि होती है। सीमित दायरे में रहकर भी कभी–कभी उनमें विशाल ह्रदय की विराटता होती है। गॉव मे सभी बुरे तो नहीं होते, कुछ समझदार एवं संवेदनशील प्राणी भी होते हैं। दुखमोचन, विसंगतियों के बीच भी अपने इरादों में सफल होते है। दुखमोचन किसी गॉव–शहर में जाकर ब्यापक चेतना नहीं फेलाता, वह अँचल में रहकर ही फैलाता है। जबकि 'अलग–अलग वैतरिणी'१ का मुख्य–नायक 'बिपिन' अपनी सारी योजनाओं के बावजूद करैता गॉव छोड़कर शहर चला जाता है, कारण स्पष्ट है यह मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी होता है जो शहर से गॉव में आये हुए आदमी पर पड़ता है।

'उग्रतारा' में मुख्य–कथा', नारी–समस्या' के इर्द–गिर्द ही घूमती है। नारी की इस समस्या को जना है पुरूष वर्ग। पुरूष ही उसे कलंकित जीवन बिताने पर विवश कर देता है, और फिर उसे लांछन की मिट्टी में पिसने के लिए छोड़ देता है। लेकिन समस्या, आंचलिक नहीं है, ब्यापक है। इस उपन्यास में ब्यापकता के तत्त्वों का अधिकतम् समावेश है, 'मढ़िया सुंदरपुर' यद्यपि बिहार का एक अंचल है; तथापि कथा की भाव–भूमि पर सम्पूर्ण देश की समस्या को दिखाया गया है। विधवा का अभिशाप इस परिवार में कई पीढ़ियों से बना है। उग्रतारा का ही परिवार है जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी विधवा होने का अभिशाप ढोता आ रहा है।

यह पूरा उपन्यास स्मृति के अम्बारों से भरा पड़ा है। पात्र स्वगत–कथन से अपनी आन्तरिक दुनिया की हलचल को भी ब्यक्त कर देते हैं। इस तरह के प्रसंग से जहॉ नाटकीयता आती है, वहीं कथा का रस भी कम नहीं है। उगनी, सिपाही से वाणी विहीनता में भी वार्तालाप करती है–

"नींद आ रही है सिपाही जी इजाजत मिलै।

जाऊँ ? अच्छा जाती हूँ।

एक बात....................

आप मुझ पर अब भी रंज हैं सिपाही जी।

नहीं न ?

देखिये, आप का बेटा आप के पास ही खडा है।

देखें मुन्ने जा रही हूँ मै।

कहाॅ ? तेरे उस पापा के पास, जिनके साथ तू अभी–अभी मढिया सुन्दरपुर हो आया है......."[१]

उपन्यास में जेल–जीवन के भ्रष्टाचार का चित्रण भी हुआ है। बडी रकम गमन करके जेल काटने वाला पोष्ट मास्टर ढेर सारी चीजें जो खाने से सम्बन्धित है, अपने घर से प्राप्त कर लेता है। दूसरे दर्जे के कैदी चतुराई से पहले दर्जे के जीवन बिता सकते हैं। भ्रष्टाचार के आरोप में गिरफ्तार करने वाले खुद ही भ्रष्टाचार फैलाये पडे हैं। जेल के वार्ड, कोठरियां, फाटक, घंटे की टन–टन की ध्वनि तथा सिपाहियों के डंडों की पटक ध्वनि आदि इस कदर यथार्थ के रंगों से अंकित किए गये है कि समूचा वातावरण सजीव हो उठा है।

यही नहीं, संघर्ष जैसी स्थिति को भी नागार्जुन दिखाते हैं। कैदी द्वारा भू–दानी जमीन को अपनाना फिर उसे दानकर्त्ता द्वारा हड़पना, फिर संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो उठना, जिसमें एक व्यक्ति की मृत्यु भी हो जाती है। इसी तरह मन के प्रतीको को पशु–पक्षी, कीड़े–मकोड़े इत्यादि बोली–बानियों को ब्यक्त करना उनकी ब्यापकता और ऑचलिकता का स्पष्ट रूप दिखाई पड़ता है।

---

[१] नागार्जुन : नागार्जुन उग्रतारा, पृ० ६८,६६

'जमनिया के बाबा' उपन्यास में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार की गाथा है। जिसका आधार अध्यात्म की वे टेढ़ी–मेढ़ी पगडंडिया हैं, जिनपर चलते हुए जाने–अनजाने अनेक स्त्री–पुरूष पथ–भ्रष्ट हो जाते है। धर्म और सम्प्रदाय की ओट में अनैतिक सामाजिक गतिविधियां खुला खेल खेलती है। यद्यपि कथा की भूमि तो मिथिलांचल जमनिया और लखनौली ग्राम के कारनामों से ही सम्बद्ध है, फिर भी इसकी कथा, इसकी रचना का भाव सम्पूर्ण देश है। जमनिया तो उत्तर प्रदेश–बिहार की सीमा पर स्थित पिछड़ा अँचल है। महन्त की गतिविधियॉ कुछ अजीब तरह की है, यथा– वह भक्त की पीठ पर कम से कम पॉच बार बेंत छुवाकर आशीर्वाद बॉटता है।

परन्तु जब बाबा पर नजर डाली जाती है, तो वह जन्म से मुसलमान होना दिखाई पड़ता है, और वह अपराध करके अपना वेश–भूषा बदल लेता है। यही मठ वह केन्द्र बिन्दु है, जहॉं से पूरे देश व प्रांत की शासन सत्ता में इनकी पहुॅच है। अर्थात् ये अपनी बात को किसी से भी मनवा सकते हैं। क्योंकि गौरी जैसी स्त्री, पुरूषों की वासना को संतुष्ट करके मठ के तमाम काले–कारनामों पर पर्दा डलवाती रहती है। मठ, तस्करों और अवैध ब्यापारों का अड्डा बन चुका है।

यद्यपि यह उपन्यास ऑचलिकता से परे है, परन्तु इसमें ऑचलिकता के तत्त्व भी दृष्टिगत होते है। मस्तराम का भंगी से बातचीत करके जान लेना कि भंगी को लोरिकायन (लोक–गीत) सुनने का शौक है। यही वह प्रसंग है, जो अंचल के तत्वों को उद्घाटित करता है। यहॉ प्रसंगतः लेखक ने बताया है कि पूर्वी जिलों में नारी–वर्ग पिछड़ा हुआ है, जहॉ पुरूष मनोरंजन के लिए अकेले जाते है और नारियॉ भी अकेले ही मेले–ठेले तथा हाट–बाजार में जाती हैं। पुरूष–नारी की अलग–अलग ज़िन्दगी सामाजिक पिछड़ेपन का प्रतीक है। औरतें (वह भी निचले तबके की) केवल खेत–खलिहानों में पुरूषों का साथ देती हैं।

लक्ष्मी के बेटे को बलि देना यह किसी अंचल का ही प्रतीक हो सकता है। सामान्य जीवन में इस तरह की घटनायें अपवाद मानी जाती हैं; लेकिन शोषण, संघर्ष का ब्यापक दायरा होता है। यह अंचल से निकलकर दूर–देश तक की भाव–भूमि को समेटता है। लेखक ने इस उपन्यास में हिन्दू–समाज की उदारता एवं विशाल सहृदयता की भी चर्चा की है। एक अहिन्दू बाबा की प्रतिक्रियाओं को इसी बात के समर्थन के लिए लेखक ने ब्यक्त किया है।" नेक, रहमदिल, सहनशील, समझदार, हिन्दू–समाज, बरगद का वह बूढ़ा झमरियादार पेड है जिसकी टहनियों से हजारों चमगादड़ लटके रहते हैं, जिसकी छाया में हाथी, ऊँट ओर बैल साथ–साथ जुगाली करते हैं। कुत्ते, गाय, गधे, कछुये सबकी गुंजाइश रहती है। उनसे अलग न रहो, उनमें घुल–मिलकर रहो, फिर देखो कि कैसे वे तुम पर सब कुछ निछावर कर देते है।"[१]

यद्यपि जमनिया जैसे पिछड़े इलाके को घटना–स्थल बनाकर ऑचलिकता लाने की कोशिश की गयी परन्तु एक अंचल विशेष का माहौल अपनी समग्रता मे इस कृति में नहीं उभर सका है। हिन्दू समाज की रूढ़िवादिता किसी एक ॲचल विशेष की नहीं है, वरन् समूचे उत्तर भारत के पूर्वी–जिलों के हिन्दू समाज की धड़कनें इस रचना में बॉधी गयी है। ऑचलिकता में स्थान विशेष के लोगों के कुछ विश्वास तथा मान्यताएं–धारणायें एवं संस्कार ही इसमें रेखांकित हो पाये हैं। इसलिए इसमें आंचलिकता आंशिक रूप से ही उभर सकी है।

'हीरक–जयंती' नागार्जुन का ब्यंग्य उपन्यास है। इसकी कथा–भूमि बिहार प्रांत है, जिसके एक कांग्रेसी मंत्री नरपति नारायण सिंह के अन्तर्विरोधों से परिपूर्ण ब्यक्तित्व पर केन्द्रित है। नेताजी की ७१ वर्ष में ही हीरक–जयन्ती मनाई जाती है, क्योंकि जब तक वे ७५ वर्ष के होंगे; तब की स्थितियां क्या हो जायें, यह

---

[१] नागार्जुन : जमनिया के बाबा, पृ० ६२

भय संयोजक के मन में व्याप्त है। अतः वे अभिनन्दन के बहाने अपने स्वार्थों की रोटियाँ समय रहते सेंक लेना चाहते हैं। अभिनन्दन की योजना में संलग्न सभी व्यक्ति अपने–अपने क्षेत्र के बेजोड़ स्वार्थी, भ्रष्ट लोग हैं।

इस उन्यास में समाज की छोटी–मोटी घटनाएं ही ऑचलिकता का स्थान पाती हैं। बाकी सभी घटनाएं ब्यापक दायरा लेती हैं। बाढ़–पीड़ितों की समस्या उन पर ढाये जा रहे आर्थिक–शोषण के जुल्म भ्रष्टाचार की पराकाष्ठा इत्यादि का फलक है। लेखक ने समाज की विसंगतियों और विद्रूपताओं को चित्रित करने के लिए यथार्थ के नजरिये से ही समाज की सही तस्वीर को देखा–परखा है। समाज की कड़वी सच्चाइयों को पेश करने के लिए जिस असरदार ब्यंग्य की जरूरत होती है, वह नागार्जुन जी के पास है।

यद्यपि इस उपन्यास की शैली रिपोर्टिंग है, तो भी समाज को नागार्जुन ने हीरक–जयंती शरीके आइने में जिस तरीके से प्रस्तुत किया है, वह कोई समाज–शास्त्री ही कर सकता है। वे समाज के कलुषित ब्यक्तियों के काले–कारनामों का लेखा–जोखा इस उपन्यास में प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार उनके उपन्यासों में ऑचलिकता एवं ब्यापकता के तत्त्वों का समावेश बराबर मिलता है। डा० प्रेम शंकर के शब्दों में– "अंचल के सघन–चित्र को प्रस्तुत करके समस्याओं को एक ब्यापक रूप देना पड़ता है। हम कह सकते हैं कि उसमें गहराई और ब्यापकता दोनो का समन्वय करना पड़ता है।"[1]

---

[1] डा० प्रेमशंकर : हिन्दी के दस सर्वश्रेष्ठ कथात्मक प्रयोग, लेख परती–परिकथा, पृ० १६१

मूल्यांकन और निष्कर्ष

बहुभाषी राष्ट्र के इस घुमक्कड़ कवि, कथाकार के साहित्य में विभिन्न क्षेत्रों की मिट्टी आ मिली है और भिन्न–भिन्न नदियों का पानी छलक आया है। यही वह जादू है, जिसे खुरदुरेपन की संज्ञा देकर अनेक लोग उसके चिलम जैसे रफनेस के आशिक बन बैठे है। वास्तव में जन–संघर्षों के हर मोड और उभार पर इस धुमक्कड बाबा की हमदर्दी और करूणा जनता के साथ होती थी। और न्याय की मॉग करती हुई उनकी कथा–शैली कभी 'नयीपौध' में भंडा फोडती है, तो कभी फन काढकर 'उग्रतारा' में फुफकारने लगती है। शासक–वर्ग के विरूद्ध बलचनमा खड़ा होता है, जो 'जमनिया के बाबा' में ढोंग की पोल खोलता है।

कबीर की आस्था जनता में उसके विकास समान मूल्यों में थी। जबकि नागार्जुन की आस्था पैदल चलने वाले वर्ग में है; जिस पर पचास वर्षों में शामत आयी हुई है। उसकी शामत उच्चवर्ग की वजह से आयी है, जिसे बाबा बटेसरनाथ जै किसुन को बताते है, जिसका प्रतिरोध बलचनमा बचपन से ही करता है। नंगा सत्य और नंगा परिवेश तथा उसके बीच फँसी हुई नकली मुद्राओं और नकली प्रतिमानों की पराकाष्ठा पर बैठे 'नई पौध' के खोखा पंडित को अपनी तीखी चोट से ध्वस्त करते हैं। और दिगम्बर तथा वाचस्पति जैसे समाजवादी क्रांतिकारियों से सन्मार्ग का रास्ता दिखलवाते हैं।

ये बँधी–बधाई लीक के उपन्यासकार नही है, इनकी प्रयोगधर्मिता सतत जागरूक है। वे 'रतिनाथ की चाची' की बेबसी, लाचारी को 'उगनी' जैसी तेजस्वी नारी से हटवाते हैं। उनके उपन्यास सतत् विकासमान रहते हैं। 'रतिनाथ की चाची' से लेकर 'जमनिया के बाबा' तक की डगर काफी ऊबड़–खाबड़ और ऊबाऊ भरा भी है। क्योंकि बीच में कभी 'बलचनमा' तो कभी 'कुम्भीपाक' के शर्मा जी का बयान भी

लेते है। कभी 'उग्रतारा के कामेश्वर आते है तो कभी 'बटेसरनाथ' के टुनाई पाठक, सरकारी वकील बाबू राम चन्द्र सिंह एडवोकेट का मुकदमा भी चलवाते हैं।

समय–समाज–परिवेश के प्रति असन्तोष का भाव नागार्जुन में जो आक्रोश उपजाता है, उसके लिए वे व्यंग्य का माध्यम अपनाते है। व्यवस्था में परिवर्तन होना चाहिए, यह उनका संकल्प है और इसके लिए वे मारक व्यंग्य का उपयोग करते है। पर उनका सम्वेदन को, जो बैचारिक आधार चाहिए, उस ओर हरिशंकर परसाई, की तरह अधिक ध्यान देते हैं। और रचना का एक समाजशास्त्र निर्मित करते हैं। मूल कारण की खोज, स्थितियों का विश्लेषण और मुख्य मुद्दे पर चोट उनके व्यंग्य का लक्ष्य है। नागार्जुन का मुख्य प्रस्थान ईमानदार सम्बेदन है, और जब भी स्थितियाँ उन्हें विचलित करती है, वे अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करने में संकोच नहीं करते।

नागार्जुन का सबसे बड़ा बैशिष्ट्य यही है कि हिन्दी में आँचलिकता की जड़े रोपने के बावजूद वे उसकी अतियों और दूसरे खतरों से अपने को काफी बचाकर बढ़ सके हैं। आँचलिकता की ओर नागार्जुन किसी नये और अछूते अँचल के मोह के कारण नहीं बढ़े और न ही कभी उससे उन्होंने आन्दोलन के बैनर का काम लिया– आत्मिकता के घनघोर आन्दोलन के दिनों में भी नहीं। बल्कि तब तो वे आँचलिकता का अतिक्रमण करके या तो अपना क्षेत्र–विस्तार करते दिखायी देते है और फिर नयी और नई व्यापक दिशाओं का अन्वेषण। जहाँ तक अछूते अंचल के मोह का सवाल है, नागार्जुन से पहले वह अंचल अछूता और नया अवश्य था और नागार्जुन को उससे मोह भी था लेकिन वह मोह उनकी कमज़ोरी कभी नहीं बना, क्योंकि वह उनके लिए म्यूजियम में रखी चीज़ों की हैसियत न रख कर हवा और पानी की तरह ही जरूरी था या फिर अपने शरीर के किसी अंग की तरह ही आत्मीय और सहज।

उनके अपने अँचल के प्रति एक गहरी आत्मीयता और परिवेश की निकट पहचान का भाव ही 'नागार्जुन के उपन्यासों का सबसे बड़ा आकर्षण है। पेड़ बाबा

जैकिसुन से कहता है "गाँव के बीच–बीच में बाँसों की झुरमुटे, आम, इमली, जामुन और पाकड़–पीपल के छिटपुट पेड अपनी इस तिरहुत भूमि की बड़ी विशेषता है।"[1] इसी तरह जब रतिनाथ मोतिहारी जाता है तो उसकी विदा का दृश्य है: 'आज अपने टोल–पड़ोस की हर वस्तु सचेतन प्रतीत हो रही थी। लगा कि सब उसे मना कर रहे हैं–मत जाओं, मत जाओं, मत जाओं। तालाब, बुड्ढा पीपल, मौलिसिरी का वह बौना पेड़, वे खेत, वे बाग, वे झाड़ियाँ वे झुरमुट, वह बलुआहा। उन्होने मानो चिल्ला–चिल्ला कर रतिनाथ को मना करना शुरू किया–कहाँ जाओंगे, लौट चलो, लौट चलो, लौट चलो।'[2] इसी तरह फूलते–झरते हरसिंगार के बीच बागो और रतिनाथ की लरिकाई का प्रेम या शुक्लपक्ष की त्रयोदशी की चितकबरी चॉदनी में मंगल और मधुरी की भेंट– ये सारे दृश्य अपने अंचल के प्रति उसकी प्रकृति, भारी की गन्ध और लोकतत्व के दुर्निवार आकर्षण के प्रति लेखक की सहज आसक्ति को स्पष्ट करते हैं। नागार्जुन के उपन्यासों से असंख्य छोटे--छोटे साधारण पात्रों की जीवन्तता और प्रभाव के पीछे एक मात्र कारण ही यह परिचयगत घनिष्ठता है।

उनकी औपन्यासिक व्यापकता में विविध विचारधाराओं का समावेश भी है। वे समाजवादी यथार्थवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक हैं। इसीलिए शोषित समाज की पीड़ा और वर्ग–संघर्ष उनकी औपन्यासिक कृतियों में पूरे वेग के साथ उभरकर आये हैं। "समाजवादी यथार्थवादी विचारधारा को व्यक्त करते हुए यशपाल, रांगेयराधव, भैरवप्रसाद गुप्त ने भी उपन्यास लिखे है, पर उन लोगों के उपन्यासों में पीड़ितवर्ग के प्रति सहभोक्ता की उस तीव्र संवेदना का अभाव है जो नागार्जुन के उपन्यासों का प्रमुख आकर्षण है।[3] वे भारत के शोषित, पद्दलित, अभावग्रस्त इंसानों के जीवन को सुधारने के लिए कृतसंकल्प है। उन्होंने उच्चवर्ग के निरंतर शोषण के हथकंडों से पददलित निम्नवर्ग के सामाजिक जीवन के भीतर प्रगतिशील चेतना को विकसित

---

[1] बाबा बटेसरनाथ–राजकमल प्रकाशन पाँचवा संस्करण पृष्ठ ३५

[2] रतिनाथ की चाची– राजकमल प्रकाशन प्रथम संस्करण पृष्ठ ६८, ६६

[3] डा० प्रकाश चन्द्र भट्ट, नागार्जुन –जीवन और साहित्य पृ० ४०

किया है। उन्होंने इस वर्ग के लोगों को संगठित कर अपने अधिकारों के लिए निरंतर संघर्षशील रहने का मूल मंत्र दिया है।

नागार्जुन के मन में समाजवाद की आकांक्षा एक ऐसी बेहतर मानवीय व्यवस्था की आकांक्षा से जुडी हुई है, जिसमें मनुष्य केवल राजनीति का खिलाडी या खिलौना ही नही, बल्कि जीवन–जगत और मानवीय सम्बन्धों के प्रति सम्बेदनशील और सजग मनुष्य भी हो। इनके कष्टजनति बोध में पूर्ण स्वाभाविकता है। दलित और पीडित वर्ग का वास्तविक चित्रण देखकर लगता है कि वे इस वर्ग के सच्चे चितेरे है। उनके देन निम्न है।

१. नागार्जुन ने प्रेमचन्द्र द्वारा स्थापित यथार्थ की परपरा को आगे बढ़ाया है। प्रेमचन्द्र ने जिस निम्नवर्ग की समस्याओं के ताने–बाने से अपने औपन्यासिक कथ्य को बुना, उसी निम्नवर्ग की समस्याओं की व्याख्या नागार्जुन ने नवीन परिप्रेक्ष्य में की है। नारी–जीवन से संबंधित विधवा–समस्या को सबसे पहले प्रेमचंद्र ने 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में उठाया और इसका समाधान विधवा आश्रमों की स्थापना में ढूंढा, वहॉ नगार्जुन ने इस समस्या का समाधान विधवा–विवाह एवं अंतर्जातीय विवाह के रूप में किया।

इस तरह नागार्जुन ने प्रेमचंद्र द्वारा स्थापित विधवा–समस्या के हल की खोज की। उनकी यह खोज काल्पनिक नही, यथार्थ से संबंधित है। तभी तो डा० विंदु अग्रवाल कहती है–नागार्जुन प्रेमचंद्र की परम्परा के सच्चे अर्थ में यथार्थवादी लेखक हैं।[१]

२. उन्होंने 'बलचनमा' शीर्षक उपन्यास लिखकर हिंदी के आधुनिक एवं भावी उपन्यासकारों को आँचलिक उपन्यास लिखने की सर्वप्रथम प्रेरणा दी थी। "नागार्जुन ने ग्रामीण अंचल को अपने उपन्यासों का विषय बनाकर फणीश्वरनाथरेणु" से पूर्व

---

[१] डा० बिन्दु अग्रवाल, हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण – पृष्ठ २३३

किया है। उन्होंने इस वर्ग के लोगों को संगठित कर अपने अधिकारों के लिए निरंतर संघर्षशील रहने का मूल मंत्र दिया है।

नागार्जुन के मन में समाजवाद की आकांक्षा एक ऐसी बेहतर मानवीय व्यवस्था की आकांक्षा से जुड़ी हुई है, जिसमें मनुष्य केवल राजनीति का खिलाडी या खिलौना ही नही, बल्कि जीवन–जगत और मानवीय सम्बन्धों के प्रति सम्बेदनशील और सजग मनुष्य भी हो। इनके कष्टजनति बोध में पूर्ण स्वाभाविकता है। दलित और पीडित वर्ग का वास्तविक चित्रण देखकर लगता है कि वे इस वर्ग के सच्चे चितेरे है। उनके देन निम्न है।

१. नागार्जुन ने प्रेमचन्द्र द्वारा स्थापित यथार्थ की परंपरा को आगे बढ़ाया है। प्रेमचन्द्र ने जिस निम्नवर्ग की समस्याओं के ताने–बाने से अपने औपन्यासिक कथ्य को बुना, उसी निम्नवर्ग की समस्याओं की व्याख्या नागार्जुन ने नवीन परिप्रेक्ष्य में की है। नारी–जीवन से संबंधित विधवा–समस्या को सबसे पहले प्रेमचंद्र ने 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में उठाया और इसका समाधान विधवा आश्रमों की स्थापना में ढूंढा, वहाँ नगार्जुन ने इस समस्या का समाधान विधवा–विवाह एवं अंतर्जातीय विवाह के रूप में किया।

इस तरह नागार्जुन ने प्रेमचंद्र द्वारा स्थापित विधवा–समस्या के हल की खोज की। उनकी यह खोज काल्पनिक नही, यथार्थ से संबंधित है। तभी तो डा० विंदु अग्रवाल कहती है–नागार्जुन प्रेमचंद्र की परम्परा के सच्चे अर्थ में यथार्थवादी लेखक हैं।[१]

२. उन्होंने 'बलचनमा' शीर्षक उपन्यास लिखकर हिंदी के आधुनिक एवं भावी उपन्यासकारों को आँचलिक उपन्यास लिखने की सर्वप्रथम प्रेरणा दी थी। "नागार्जुन ने ग्रामीण अंचल को अपने उपन्यासों का विषय बनाकर फणीश्वरनाथरेणु" से पूर्व

---

[१] डा० बिन्दु अग्रवाल, हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण – पृष्ठ २३३

ऑचलिक परपम्रा प्रारम्भ की । मिथिला प्रदेश के प्राकृतिक परिवेश के बीच जिसमें नदी, नाले, झील, पोखर, बाग, चरागाह, खेत खलिहान, सम्मिलित है, वहाँ के जनजीवन का चित्रण बडी स्वाभाविकता, सह्रदयता और आत्मीयता के साथ किया है। उन्होंने ग्रामवासियों के संस्कार, आचार, रीतिरिवाज और अंधविश्वासों का उल्लेख कुछ ऐसी यथार्थवादी पद्धति पर किया है, जिससे लेखकीय अनुभव की प्रामाणिकता सिद्ध होती है।"[१] इसी संदर्भ में श्रीमती स्नेहलता सुंदरसेन का मत भी पठनीय है– "नागार्जुन के हिंदी साहित्य मे अवतरित होते ही बिशुद्ध ऑचलिक उपन्यासों का स्वरूप देखने में आया। उनका 'बलचनमा' हिंदी का प्रथम स्वाभाविक सफल ऑचलिक उपन्यास होने का गौरव प्राप्त कर सकता है– नागार्जुन की इस अप्रत्याशित सफलता के उपरांत हिंदी–साहित्य में ऑचलिक उपन्यासों की लहर उमड़ी।[२]

यद्यपि फणीश्वरनाथ 'रेणु' के मैलाऑचल को सर्वप्रथम ऑचलिक उपन्यास की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। जबकि नागार्जुन का उपन्यास बलचनमा (१९५२), मैलाआँचल (१९५४) से दो वर्ष पूर्व ही प्रकाशित हो चुका था। कई मायनों में नागार्जुन 'रेणु' की आँचलिकता से बढ़ते हुए दिखाई देते है। जहाँ 'रेणु' के अंचलीय प्रदर्शन के

अतिमोह में गरीब कृषकों की आवाज दब गयी है, वहीं 'बलचनमा' में कृषक संघर्ष पूरी तरह से उभरकर आया है। इनके उपन्यासों में पहली बार आँचलिक प्रवृत्ति का दर्शन होता है। उन्होंने मिथिला क्षेत्रीय जनजीवन, रम्य, प्रकृति–अँचल, पक्षियों की चहचहाहट–परिवेश खान–पान आदि का जो चित्रण प्रस्तुत किया है उससे उपन्यासकार का अपने अँचल के प्रति सहज लगाव प्रतीत होता है। जैसा कि डा० शशि भूषण सिंहल भी कहते हैं– "नागार्जुन की कला भी विशेषता है–कथन का सुनिश्चित क्रम, कथ्य का संक्षिप्त निरूपण, सजीव चित्रण, प्रसंग की मार्मिकता तथा

---

[1] विश्वम्भर 'मानव' हिन्दी साहित्य का सर्वेक्षण (गद्यखण्ड), पृष्ठ ६०

[2] साहित्य संदेश (मासिक), अक्टूबर, दिसम्बर, १९६८, पृ० १८०

प्रगतिशील तत्वों के प्रति आग्रह। वे 'रेणु' की भॉति, चित्रण शिल्प के प्रति सायास चेष्टा नही, किंतु चित्र की पृष्ठभूमि तथा उसके अवयवों को पहचानने में तथा अंकित करने में आँचलिक उपन्यासकारों में अग्रणी है।''[1] इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नागार्जुन आँचलिकता के जनक है।

३. नागार्जुन ने सामाजिक और राजनीतिक उपन्यासों का प्रवचन कर एक प्रमुख एवं प्रखर व्यंग्यकार के रूप में अपना प्रमुख स्थान प्राप्त किया है। उन्हें जो सामाजिक व्यवस्था या स्थिति पसंद नहीं, उसका वर्णन वे ऐसी शैली में करते है कि व्यंग्य अपने आप उभर आता है। उनका व्यंग्य केवल राजनीति तक सीमित नहीं है, उसमे जीवन की समग्रता है। इससे उनके संवेदन की व्यापक भूमि का परिचय मिलता है। जीवन–यथार्थ में उनमें आक्रोश उपजाता है और वे व्यंग्य की ओर आते है। एक ओर उनका आहत सम्बेदन है, दूसरी ओर उनकी ईमानदार प्रतिबद्धताएं।'' वे व्यंग्य लिखते है और उनका व्यंग्य संपूर्ण सामाजिक–राजनीतिक परिवेश से संयुक्त हो, उसके तार–तार अलग कर सत्य का उद्‌घाटन करता है। इस व्यंग्य में विद्रोह तथा परिवर्तन की उद्‌दाम आकांक्षा समाहित है..... नागार्जुन व्यंग्य के माध्यम से सही स्थिति का बोध तो देते ही हे, पर साथ ही कभी करूणा, कभी क्षोभ और कभी आकोश से पाठकों या श्रोताओं को जोड़ देते है।''[2] बाबा बटेसरनाथ का पेड़ बाबा व्यंग्य से विक्टोरिया को 'राज राजेश्वरी महारानी विक्टोरिया' कहता है। वैसे उसकी सही संज्ञा 'बनियों की रानी'[3] भी उसे मालुम है। उनके उपन्यासों का वैशिष्ट्य है 'तीखा व्यंग्य'। जिसका क्षेत्र विस्तृत है। साम्राज्यवादी, पूँजीवादी, सामंती मनोवृत्ति, बहुपत्नी प्रथा, धार्मिक पाखंड, सामाजिक कुरीतियाँ, पाखंडी नेता, कर्मचारी–वर्ग, मंत्री, खोखले राजनीतिज्ञ व समाजसेवी आदि सभी उनके व्यंग्य के पात्र बने हैं। नागार्जुन वैचारिक मार्ग से होकर व्यंग्य के संसार में प्रवेश नहीं करते, इसलिए कई बार

---

[1] डा० शशिभूषण सिंहल, हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, पृ० १३१

[2] आलोचना, (त्रैमासिक), जुलाई–सितंबर १९६१

[3] बाबा बटेसरनाथ, राजकमल प्रकाशन, पृ० ६१

भावावेग प्रधान हो जाता है। नागार्जुन, हरिशंकर परसाई के प्रस्थान–बिन्दु में पार्थक्य है। उनके व्यंगय वाचिक परंपरा से जुडते है। इसीलिए वे एक बेहतर श्रोता, समाज को सम्बोधित करते हैं और अन्ततः इसमें शामिल भी होते है। डा० नामवर सिंह ने नागार्जुन को कबीर के बाद हिन्दी साहित्य का सबसे बड़ा व्यंग्यकार कहा है।

४. उनकी चरित्र–चित्रण कला सशक्त है। गोदान के होरी के बाद बलचनमा का कथानायक 'बलचनमा' एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। जहाँ होरी भारतीय किसान की दुर्बलताओं और अभावों का सूचक है वहीं बलचनमा निम्नवर्गीय शोषित वर्ग में जागती हुई चेतना का वाहक है। यही चेतना ही ग्रामीण मजदूर की नयी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व बना देती है। बलचनमा 'आधा खेत मजदूर और आधा किसान' के जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। वह मानता है कि धरती उसी किसान की है जो उसे जोतता है और बोता है। उसके बारे में एक भ्रांति फैली है कि वह 'पाठक की संवेदना को सजग नहीं करता, वैयक्तिक संस्पार्शता को नहीं जगाता, कारण वह व्यक्ति नहीं, समाज का प्रवक्ता है"[1] यह सही है कि बलचनमा समाज का प्रवक्ता है, किंतु दीन–हीन शोषित सर्वहारा वर्ग के लोगों को उसने सोते से जगाया है और उन्हें वाणी दी है। इसलिए पाठक की संवेदना उसे मिली है। नागार्जुन ने बलचनमा के माध्यम से एक विशेष अंचल के ग्राम्यजीवन की कहानी कही है। जैसा कि बाबा बटेसरनाथ में वे विश्वास व्यक्त भी करते है कि "किसी भी 'आप बीती' 'जगबीती' का ही अंश होती है।[2] वस्तुतः "उपन्यासकार की सफलता इसी में है कि वे 'आपबीती' को 'जगबीती' का रूप देने में समर्थ है। यह वास्तव में बलचनमा का अनुभव नहीं, उसके अपने वर्ग का अनुभव है।"[3]

नवीन युग और उसकी चेतना की अन्तहीन इकाइयों के मध्य, अपने 'स्व' को

---

[1] आलोचना (त्रैमासिक), अप्रैल, जून, १९६०, पृ० १४८
[2] नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ, पृ० २२
[3] उपन्यासकार नागार्जुन : बाबूराम गुप्त, श्याम प्रकाशन, प्रथम संस्करण, १९८५, पृ० २२३

सम्पूर्ण के साथ संपृक्त कर, जीवन को खुली ऑखों से देखकर स्वयं से स्वय का संयोग स्थापित कर, यथार्थ की सपाटता में अपने–आप को सम्मिलित कर अपनी भावनाओं को वाणी देते है। उनके बलचनमा को इस बात की पूरी चेतना है कि उसके शत्रु कौन है और किस मोर्चे पर लड़ाई लड़ी जानी है। अन्याय और शोषण की चक्की में पिसकर वह यह सीख जाता है कि बाबू भैया की उससे कोई सहानुभूति नहीं ।'' सच जानो भैया, उस वक्त मेरे मन में यह बात बैठ गयी जैसे अंग्रेज बहादुर से स्वराज लेने के लिए बाबू भैया लोग एक हो रहे है, हल्ला–मुल्ला और झगडा–झंझट मचा रहे है, उसी तरह जन–बनिहार, कुली–मजूर और बहिया–खवास लोगों को अपने हक के लिस लड़ना पड़ेगा।''[1] गोदान के गोबर से अधिक बलचनमा अपने हकों की लड़ाई के लिए प्रतिबद्ध और क्रांतिकारी चेतना के प्रतीक का स्थान पा लिया। यह सही है कि ''नागार्जुन और प्रेमचंद्र की भावभूमि का पार्थक्य यही स्पष्ट हो सका हैं। प्रेमचंद्र के पात्र क्रांति आकांक्षित स्वप्न को पालते हुए भी टूटे हुए हैं, वे अपने इच्छित फल की प्राप्ति के लिए सर्वहारा है। पर नागार्जुन का बलचनमा निरीह होकर जीना सीख लेता है और अंत में अपनी परंपरागत चेष्टाओं के बीच दीप–शिखा–सी भभक कर जल उठता है।''[2]

इसी प्रकार उनके उपन्यासों के बलचनमा के अतिरिक्त ताराचरण (रतिनाथ की चाची) जैकिसुन (बाबा बटेसरनाथ), दुखमोचन (दुखमोचन) और कामेश्वर (उग्रतारा) आदि बहुत से पात्र है जिन्हें समाज–विरोधी प्रतिक्रियावादी तत्वों की पूरी पहचान है। ये सभी पात्र आम इंसान के हक की लड़ाई के लिए जमीन तैयार करते दिखाई देते हैं। इस प्रकार, चरित्र–विधान के व्यापक आयाम को लेकर नागार्जुन चलते है और सफल भी रहे।

---

[1] नागार्जुन बलचनमा, पृ० ६६

[2] डॉ० सत्यपाल चुघ, प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि, पृ० ६२२–२३

शिल्पगत वैविध्य और प्रयोगशीलता की दृष्टि से भी सम्पूर्ण प्रगतिशील हिन्दी कथा–साहित्य में नागार्जुन की स्थिति थोडी भिन्न है। उनके उपन्यासों में न तो राहुल सांस्कृत्यापन की तरह खण्डचित्रों का अकारण विस्तार है और न ही यशपाल की तरह इतिवृत्तात्मकता का मोह, जो किसी–न–किसी रूप में प्रायः सभी प्रगतिशील लेखकों में मौजूद है। उनके उपन्यास कहानीपन से , कहानी की मूल अवधारणा से बहुत कुछ मुक्त है। उन्होंने 'बाबा बटेसरनाथ' में कथा–शिल्प संबंधी अभिनव प्रयोग किया है। यह बरगद का मानवीकरण है। इस उपन्यास का मानवरूपधारी बट–वृक्ष उपन्यासकार की विचारधारा का संवहन करता है। बरगद बाबा भारत में अग्रेजों के आगमन से लेकर १९५४ तक की कथा जैकिसुन को सुनाता है। डा० सत्यपाल चुध का विचार है कि "कुल मिलाकर नागार्जुन ने 'बाबा बटेसरनाथ' में कथा–शिल्प, संबंधी अपने ढंग का अकेला अभिनव लोक–शिल्पात्मक प्रयोग किया है।"

नागार्जुन के उपन्यासो मे आँचलिकता और व्यापकता के तत्वों का मूल्यांकन करने पर हम डा० बेचन के शब्दों में कह सकते हैं– "नागार्जुन के उपन्यासों में न केवल बिहार, वरन संपूर्ण राष्ट्र बोल रहा है। घटनाओं का यह जमघट आज जीवन की वास्तविकता है, जिसे संपूर्णता में लाने का प्रयास नागार्जुन ने किया है। यही उनकी सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है।"[1] निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि नागार्जुन की रचनाओं में आस्था का स्वर है। वे जीवन के भयंकर यथार्थ का चित्रण करते हुए उस सुख का चित्रण करते है, जो अप्रत्यक्ष रूप से उसमें निहित है। रूढ़िया एवं अंधविश्वासों का खंडन करते हुए प्रगतिशील विचारों का प्रचार–प्रसार कर समाज सुधार करना उनका लक्ष्य है। जैसा कि बरगद बाबा कहते हैं– "मनुष्यों की बलि चाहने वाले यक्ष–गंधर्व, देव–देवियों और व्रह्म अब बाहर नहीं रह गये मोटी जिल्दों वाले पुराने पोथों की बारीक पंक्तियों के अंदर आज वे नजरबंद है।"[2] वे आडंबर के

---

[1] डॉ० बेचन स्वातंत्त्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ० २५५

[2] नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ पृ० ७१–७२

सख्त विरोधी है। उनका दृढ़ विश्वास है कि जब तक हमारे ढोंगी नेता रहेगे, तब तक देश का स्वप्न साकार नहीं होगा।

आज भ्रष्ट नेताओं के कुशासन से हमारा राष्ट्र त्रस्त है। भ्रष्टाचार से अपनी तिजोरी भरना इनका लक्ष्य बन गया है। घोटाले करना इनकी नियति बन चुकी है। कहने का आशय है कि वासना की पूर्ति ही इन नेताओं का चिंतन है। गरीबों का शोषण इनका व्यसन है और खद्दर इनका वसन है। मंत्रियों का एक वर्ग कितना विलासी और अर्थ लोलुप है,इसका खुला चित्र 'हीरक जयंती' उपन्यास में दृष्टव्य है। बाबू नरपति नारायण सिंह जो मंत्री है और अपनी हीरक जयंती के अवसर पर कहते है– "शासन और सत्ता की जरा भी लालसा हमारे अंदर नही है। हॉ, इस बात की लालसा है कि जनता–जनार्दन की सेवा के लिए अंतिम क्षण तक हम अपने–तन–मन का उपयोग कर सकें।"[1] लेकिन वास्तविकता इससे भिन्न है।

नागार्जुन ने तरूणशक्ति को पहचाना है। उनकी क्रांतिकारी भावनाओं अभिव्यक्ति दी है। उन दकियानूसी बुड्ढों में से नहीं, जो तरूणों के सहज उत्साह को उच्छृंखलता का नाम देता है। राय साहब का चंपा से कहना–"सत्तर–पचहत्तर का चीफ मिनिस्टर अठारह–बीस की उम्र के छोकरों पर गोलियाँ चल चुकने के बाद कहता है– हुल्लडबाजों को सबक सिखाया, ठीक किया।"[2] उन्होनें अपने उपन्यासों में जिन नवयुवकों का चित्रण किया है वे उनकी विचारधारा को मनाने वाले आशावादी तरुण है। बलचनमा (बलचनमा), श्याम सुंदर दास एडवोकेट, जैकिसुन, दयानाथ, (बाबा बटेसरनाथ), दुखमोचन, कपिल रामसागर,वेणीसागर, वेणीमाधव, (दुखमोचन), दिगंबर माहे बूलो (नई पौध), सदानंद (कुंभीपाक), मोहन माँझी (बरूण के बेटे), कामेश्वर (उग्रतारा) ऐसे ही पात्र हैं।

---

[1] नागार्जुन, हीरक जयंती पृ० १२६

[2] नागार्जुन– कुंभीपाक पृ० ११५, वाणी प्रकाशन, संस्करण १९९८ पेपरबैक

वे सभी साहित्यिक विधाओं पर समान अधिकार रखते है।" आलोचक उन्हें कई रंग–ढगों से परखते–देखते है, जैसे–अवसरवादी (हंसराज रहबर') अराजकतावादी (प्रभाकर माचवे), बौद्धिक विश्लेषण से भागने वाला (विष्णुचंद्र शर्मा), अपने रचनाकार तथा व्यक्ति के बीच कोई बिसंगति न रखने वाला (भैरव प्रसाद गुप्त), नकली लड़ाई वाला प्रगतिशील के गिरोह से चिपका हुआ (मुद्राराक्षस) मार्क्स का इत्र सुंघाकर, भारत माता की गर्दन पर हँसिया रखने वालों की जमात में गैर–शामिल सच्चा कवि (अनिल कुमार) इत्यादि।"[१] नागार्जुन केवल उसकी पार्टी को समर्थन देते है, जो गरीबों, शोषितो, वंचितों का हित चिंतन करती है। इस प्रकार वे 'साम्यवाद और क्रांति, पुनर्निर्माण और नई सामाजिक व्यवस्था आदि बातों का किताबों की दुनिया से निकालकर अपने उस विशाल उपेक्षित–भू–भाग से जोड़ सकें, जो किसी भी रचना की जड़ों के लिए आवश्यक खुराक–खाद, पानी और हवा की तरह जरूरी ही नही हैं, बल्कि जो रचना धर्मिता की मूलभूत और एकमात्र शर्त है।"[२]

नागार्जुन के प्रायः सभी उपन्यास लघु उपन्यास है, लेकिन फिर भी वे जैनेन्द्र कुमार के अधिकांश उपन्यासों की तरह परिवेश को महज़ ऊपर से छूते हुए नही निकल जाते और न ही उनसे मानवीय सन्दर्भों की क्षीणता की शिकायत की जा सकती है। उनके पीछे एक सुदृढ़ वैचारिक भित्ति विद्यमान है। उन्हीं के शब्दों में" मैं द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में आस्था रखता हूँ, तदनुसार" मर्ज का हद से गुजरना है दवा हो जाना"[3] बावजूद इसके उनकी चिंतनशीलता की भी सीमा है। वे एक विशेष विचारधारा के प्रति आग्रहशील है। उनके उपन्यासों में यौन–विकृतियों का चित्रण हुआ हैं जिससे शोर–शराबे की पूरी गुंजाइश भी बनी है। इमरतिया में "महाराज की जाँघ दिमाग के चकले पर बेलन की तरह फिर रही थी। महाराज का चौड़ा सीना

---

[1] डॉ० रमेश कुंतल 'मेघ', क्योंकि समय एक शब्द है, पृ० ४२६
[2] आलोचना (त्रैमासिक) जुलाई–सितंबर, १९६२, पृ० ५०
[3] साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ४ फरवरी, १९६३, पृ० ६

और पीडा होकर मेरी छाती से सट जायेगा।"[1] अन्यत्र" एक बार मठ का घोडा गर्माया, वह बेचैनी में हिन–हिना रहा था। नथुने फैला–फैलाकर हवा में से जाने कौन–सी गंध खीचता था बार–बार। घोडे को उस बेताबी में देखा तो गौरी मुझसे बोली–मैं इसे ठंडा कर सकती हूँ।"[2] मै डायन हूँ, कच्चा चबाने के लिए मुझे आदमी ही चाहिए और हमेशा चाहिए–दस वर्ष का लडका हो तो भी चलेगा, सत्तर साल का बुड्ढा हो तो भी चलेगा।"[3] इस प्रकार की उक्तियों से स्पष्ट है कि वह यौन विकृतियों की शिकार है।

समलैंगिक रति का चित्रण (रतिनाथ की चाची) से लगता है कि उपन्यासकार सामाजिक यथार्थ के भूल भुलैयों में फँस गये और संयम नही रख सके। इसीलिए उनके उपन्यासों में यौन–विकृतियों का वर्णन पाठक को खटकता है। उपर्युक्त सभी सीमाओं पगडंडियों के बावजूद भी नागार्जुन एक उपन्यासकार के रूप में अप्रतिम स्थान रखत है । डा० मधुरेश के शब्दों में "प्रगतिशील हिन्दी कथा–साहित्य को टुच्चा और बेईमान समझने वाले डा० राम विलास शर्मा भी नागार्जुन को 'हिंदी का यशस्वी उपन्यासकार' मानकर अपनी पुस्तक 'भारतेंदु हरिश्चन्द्र' उन्हें समर्पित करते है, भले ही किन्ही कारणों से वह उन पर कुछ न लिख सके हो।"[4] डा० नामवर सिंह तो 'दूसरी परम्परा की खोज' में 'हजारी प्रसाद द्विवेदी' के नामराशि और समान धर्मा फक्कड़ आधुनिक कबीर नागार्जुन' को सत्तर पार करने पर' समपर्ण ब्यक्त किया हैं।

इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में आँचलिकता और व्यापकता के तत्त्वों का मूल्यांकन से निष्कर्ष निकलता है कि नागार्जुन ने अपनी समूची सर्जना में जितनी केन्द्रीयता मनुष्य और मनुष्य जीवन को दी है, उतनी ही केन्द्रीयता उसमें निरन्तर बाह्य प्रकृति को भी प्राप्त हुई है। "नागार्जुन अधूरी दुनिया के लेखक नही है अतः न

---

[1] इमरतिया पृ० २२
[2] वही पृ० २६
[3] इमरतिया पृ० २२
[4] आलोचना (त्रैमासिक) जुलाई–सितंबर १९६२ पृ० ५०

तो वे कोरेआदर्शवादी (कल्पनावादी) है, न ही कोरे यथार्थवादी। उनके उपन्यास किसी निश्चित राजनीति या सामाजिक चिन्ता से जन्म लेते है और किसी स्पष्ट इशारे के साथ खत्म होते है। गोर्की के शब्दों में उनकी कला साधनापक्ष और प्रतिपक्ष के बीच लडा गया एक धर्मयुद्ध है—'इट इज ए बैटल फॉर एण्ड अगेन्स्ट' "[१]

---

[1] विजय बहादुर सिह—नागार्जुन और उनका रचना ससार, संभावना प्रकाशन प्रथम संस्करण— १९८२, पृ० १२५

सहायक ग्रन्थों की सूची

नागार्जुन के उपन्यास

१. बाबा बटेसरनाथ — नागार्जुन, राजकमल पेपर बैक्स, पाचवॉ संस्करण १९९०नई दिल्ली।

२. रतिनाथ की चाची — नागार्जुन, राजकमल पेपर बैक्स, पहला संस्करण १९९८नई दिल्ली।

३. बलचनमा — नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण २०००।

४. नई पौध — नागार्जुन, राजकमल पेपर बैक्स, दूसरा संस्करण १९९९ नई दिल्ली।

५. कुम्भीपाक — नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पहला संस्करण १९९८

६.इमरतिया (जमनिया के बाबा) — नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली द्वितीय संस्करण १९९१!

७.दुखमोचन — नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पहला संस्करण १९९८।

८.वरूण के बेटे — नागार्जुन, नागार्जुनः चुनी हुई रचनाएँ–१ सं०–शोभाकान्त।

९.हीरक जयन्ती — नागार्जुन, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली पहला संस्करण १९९७।

१०.उग्रतारा — नागार्जुन, राजकमल पेपर बैक्स, दूसरा संस्करण १९८७ नई दिल्ली, पुनर्मुद्रित १९९७, नागार्जुन, नई दिल्ली।

नागार्जुन से सम्बन्धित साहित्य

१.नागार्जुन जीवन और साहित्य — डा० प्रकाश चंद्र भट्ट, सेवा सदन प्रकाशन रामपुरा (म०प्र०) प्रथम संस्करण १९७४

२.उपन्यासकार नागार्जुन–बाबूराम गुप्त — श्याम प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण– १९८५

३.नागार्जुन और उनका रचना संसार–विजय बहादुर सिंह — संभावना प्रकाशन, हापुड़, प्रथम संस्करण– १९८२

४.नागार्जुन के उपन्यासों में सामाजिक चेतना — डा० शिवप्रसाद मिश्र, श्यामा प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण, १९८७

५. नागार्जुन का उपन्यास साहित्य समसामयिक सन्दर्भ — डा० सुरेन्द्र कुमार यादव, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण २००१

६.नागार्जुन रचना प्रसंग और दृष्टि — सं० रामनिहाल गुंजन, नीलाभ प्रकाशन,इलाहाबाद, प्रथम संस्करण– २००२

अन्य ग्रन्थ

१. आज का हिन्दी साहित्य– प्रो० प्रकाश चन्द गुप्ता ।
२. आधुनिक हिन्दी कविता सिद्धान्त और समीक्षा– विश्वम्भर नाथ उपाध्याय।
३. आधुनिक कविता का मूल्यांकन– डा० इन्द्रपाल मदान।
४. आधुनिक हिन्दी कविता का मूल्यांकन– डा० जगदीश चन्द्र त्रिपाठी।
५. आइनें के सामनें – सं०–मोहन राकेश।
६. आधुनिक साहित्य– डा० प्रताप नारायण टंडन।
७. आज का हिन्दी उपन्यास– डा० इन्द्र नाथ मदान।
८. कविता के नये प्रतिमान– डा० नामवर सिंह।
९. गोदान उपन्यास– मुंशी प्रेमचन्द्र।
१०. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास की शिल्पविधि–डा० सत्यपाल चुघ।
११. प्रगतिवाद और हिन्दी उपन्यास– डा० प्रभास चन्द्र मेहता।
१२. बीसवीं शताब्दीः हिन्दी साहित्य नये सन्दर्भ– डा० लक्ष्मीसागर वर्ष्णेय।
१३. मूल्य और उपलब्धि– डा० शम्भूनाथ सिंह।
१३. राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य– रामेश्वर शर्मा।
१५. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त– डा० गोबिन्द त्रिगुणायत।
१६. स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी–साहित्य

और चरित्र विकास— डा० वेचन।
१७. समीक्षा शास्त्र— डा० दशरथ ओझा।
१८. हिन्दी उपन्यासों में वर्ग—भावना— डा० प्रताप नारायण टण्डन।
१९. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद— डा० त्रिभुवन सिंह।
२०. हिन्दी उपन्यासः शोध प्रबन्ध— डा० सुषमा धवन।
२१. हिन्दी साहित्यः कुछ विचार— डा० त्रिलोकी नाथ दीक्षित।
२२. हिन्दी उपन्यासः सिद्धान्त और समीक्षा— डा० मक्खन लाल शर्मा।
२३. हिन्दी उपन्यासः उद्‌भव और विकास— डा० सुरेश सिन्हा।
२४. हिन्दी उपन्यासः समाज शास्त्रीय विवेचना— डा० चण्डीप्रसाद जोशी।
२५. हिन्दी उपन्यास शिल्पः बदते परिप्रेक्ष्य— डा० प्रेम भटनागर।
२६. हिन्दी उपन्यासः एक सर्वेक्षण— महेन्द्र चतुर्वेदी।
२७. हिन्दी उपन्यासः डा० शिवनारायण श्रीवास्तव।
२८. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास— राधेश्याम कौशिक 'अधीर' ।
२९. हिन्दी उपन्यास साहित्य का उद्धभव और विकास— डा० लक्ष्मी कान्त सिन्हा।
३०. हिन्दी का आंचलिक उपन्यास— डा० वंशीधर।
३१. हिन्दी साहित्य का इतिहास— डा० राममूर्ति त्रिपाठी।
३२. हिन्दी गद्य साहित्यः एक सर्वेक्षण— डा० जगदीश चन्द्र जोशी।
३३. हिन्दी उपन्यास : प्रेम और जीवन— डा० शांति भारद्वाज।
३४. हिन्दी उपन्यासः युगचेतना और पाठकीय संवेदना— डा० मुकुल द्विवेदी।
३५. हिन्दी लघुउपन्यास— डा० घनश्याम 'मधुप'।
३६. गोदान का महत्व— डा० सत्यप्रकाश मिश्र।
३७. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष— विपिन चंद्र
३८. भारत का प्राचीन इतिहास— डा० के० सी० श्रीवास्तव
३९. आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास— जे०पी०सूद
४०. हिन्दी उपन्यास— मधुरेश
४१. अलग—अलग वैतरिणी— शिवप्रसाद सिंह
४२. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा— रामदरश मिश्र

४३. आधुनिक कहानी का परिपार्श्व— डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
४४. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास— डा० कलामेहता
४५. पानी के प्राचीर— रामदरशमिश्र
४६. कबतक पुकारूँ— रांगेय—राघव
४७. हिन्दी उपन्यास में आंचलिकता की प्रवृत्ति— डा० कड़वे
४८. हिंदी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन— डा० बज्रभूषण सिंह आदर्श
४६. हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन— डा० महावीर लोढ़ा
५०. हिन्दी के उपन्यास साहित्य का सामाजिक सांस्कृतिक अनुशीलन— विमल शंकर नागर
५१. अधूरे साक्षात्कार— नेमिचन्द जैन
५२. द्वन्द्वात्मक विन्यास की कविता— डा० नामवर सिंह
५३. हिन्दी उपन्यास प्रेम और जीवन— डा० शांति भारद्वाज
५४. हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण— डा० बिन्दु अग्रवाल
५५. क्योंकि समय एक शब्द है— डा० रमेश कुंतल मेघ
५६. हिन्दी उपन्यास और मानववादी चेतना— डा० सच्चिदानंद राय
५७. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन— डा० गणेशन
५८. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तुविन्यास— डा० सरोजिनी त्रिपाठी
५६. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग— डा० मजूलता सिंह
६०. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग— डा० हेमराज 'निर्मम'
६१. भारत में सामाजिक परिवर्तन— एम०एन श्रीनिवास
६२. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास: मूल्य और संक्रमण— डा० हेमेन्द्र कुमार पानेरी

१. साहित्यिक निबंध— राजनाथ शर्मा
२. सारिका, मासिक— अक्टूबर १६६१, आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी का लेख।
३. आलोचना— डा० नामवर सिंह अंक ५६, ५७,५८, ३४, ७१, ७२
४. साहित्य—संदेश—(मासिक) अक्टूबर, दिसम्बर, १६६८
५. साप्ताहिक हिन्दुस्तान ४फरवरी १६६३ ई०
६. नई दुनिया (दैनिक) ४ जनवरी १६६६

विदेशी ग्रंथ

१. दि नावेल एंड दि पीपुल–	राल्फ फाक्स
२. बार्डरलाइन स्टोरी–	डी०एच० लारेंस
३. वेसेक्स–	टॉमस हार्डी
४. फाइव–टाउन्स–	आर्नाल्ड बेनेट